श्री धनमुनि 'प्रथम'

४

• गुरु • अधर्म •
अहिंसा • दया • सत्य •
ईमानदार • मिलावट •
क्षमा • रिश्वत • ब्रह्मचर्य • दूध
• विनय • घृणा • विवाह • पति-पत्नी • दूध
अभिमान • अपमान पतिव्रता • तृष्णा भूगर्भ • भूगोल •
कषाय • प्रमाद • निद्रा • सती-प्रथा • मानव का कर्तव्य
चिन्ता • घृणा • भूल • स्त्री सम्मान • संसार • नरक • भारत
गाँव और शहर • दूध • सज्जन • सत्संग • धूर्त • धैर्य ,
कायर • अद्भुत बली • कुलीन • गुणज्ञ • गुणहीन • दाता
• कृपण • • धन • सिक्का • आत्मज्ञान • संग्रह •
अमरीका का खजाना • गरीबी • • मन •
संग्रह • आत्म-विकास • आत्म विजय •
इन्द्रियां • मन • भाषा • मनोनिग्रह • स्वास्थ्य
दृढ़ संकल्प • शरीर • वाद विवाद • वक्ता
मौन • श्रोता • रोग • विद्या • विद्यार्थी • मन
औषधि • काल • परीक्षा • आदत
अवसर • कुदरत •

वक्तृत्वकला के बीज

४

वक्तृत्व-कला के बीज

श्री धनमुनि "प्रथम"

वक्तृत्वकला के बीज
चौथा भाग

समन्वय प्रकाशन

प्र० सं०

मोतीलाल पारख
ब्रह्मदेवसिंह

प्रकाशक

एस० बी० एण्ड कंपनी
c/o भगवतप्रसाद रणछोड़दास
४४, न्यू क्लोथ मार्केट
अहमदाबाद—२

★

प्रथम आवृति : २०००
बसन्त पंचमी वि० सं० २०२८
जनवरी १९७२

★

मूल्य : पांच रुपये पचास पैसे

संपर्क सूत्र :

संजय साहित्य संगम,
दासबिल्डिग न०—५
बिलोचपुर, आगरा—२

मुद्रक :

रामनारायन मेड़तवाल
श्रीविष्णु प्रिंटिंग प्रेस
राजा की मंडी, आगरा—२

उन जिज्ञासुओं को,

जिनकी उर्वर मनोभूमि में

ये बीज

अंकुरित

पुष्पित

फलित हो,

अपना विराट् रूप प्राप्त कर सकें !

प्राप्तिकेन्द्र

१. **एस० बी० एंड कंपनी**
c/o भगवतप्रसाद रणछोड़दास
४४, न्यूक्लोथ मार्केट
अहमदाबाद–२

२. **श्री सम्पतराय बोरड**
c/o मदनचंद सम्पतराय
४०, धानमंडी,
श्री गंगानगर (राजस्थान)

३. **मोतीलाल पारख**
दि अहमदाबाद लक्ष्मी कॉटनमिल्स कं० लि०
पो० बा० नं० ४२
अहमदाबाद–२२

प्राक्कथन

मानव जीवन में वाचा की उपलब्धि एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। हमारे प्राचीन आचार्यों की दृष्टि में वाचा ही सरस्वती का अधिष्ठान है, **वाचा सरस्वती भिषग्**[1]—वाचा ज्ञान की अधिष्ठात्री होने से स्वयं सरस्वती रूप है, और समाज के विकृत आचार-विचार-रूप रोगों को दूर करने के कारण यह कुशल वैद्य भी है।

अन्तर के भावों को एक दूसरे तक पहुँचाने का एक बहुत बड़ा माध्यम वाचा ही है। यदि मानव के पास वाचा न होती तो, उसकी क्या दशा होती? क्या वह भी मूकपशुओं की तरह भीतर ही भीतर घुटकर समाप्त नहीं हो जाता? मनुष्य, जो गूंगा होता है, वह अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए कितने हाथ-पैर मारता है, कितना छटपटाता है फिर भी अपना सही आशय कहां समझा पाता है दूसरों को?

बोलना वाचा का एक गुण है, किंतु बोलना एक अलग चीज है, और वक्ता होना वस्तुतः एक अलग चीज है। बोलने को हर कोई बोलता है, पर वह कोई कला नहीं है, किंतु वक्तृत्व एक कला है। वक्ता साधारण से विषय को भी कितने सुन्दर और मनोहारी रूप से प्रस्तुत करता है कि श्रोता मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। वक्ता के बोल श्रोता के हृदय में ऐसे उतर जाते हैं कि वह उन्हें जीवन भर नहीं भूलता।

कर्मयोगी श्रीकृष्ण, भगवान्‌महावीर, तथागतबुद्ध, व्यास और भद्रबाहु आदि भारतीय प्रवचन-परम्परा के ऐसे महान् प्रवक्ता थे,

---

१ यजुर्वेद १९।१२

जिनकी वाणी का नाद आज भी हजारों-लाखों लोगों के हृदयों को आप्यायित कर रहा है। महाकाल की तूफानी हवाओं में भी उनकी वाणी की दिव्य ज्योति न बुझी है और न बुझेगी।

हर कोई वाचा का धारक, वाचा का स्वामी नहीं बन सकता। वाचा का स्वामी ही वाग्मी या वक्ता कहलाता है। वक्ता होने के लिए ज्ञान एवं अनुभव का आयाम बहुत ही विस्तृत होना चाहिए। विशाल अध्ययन, मनन-चिंतन एवं अनुभव का परिपाक वाणी को तेजस्वी एवं चिरस्थायी बनाता है। विना अध्ययन एवं विषय की व्यापक जानकारी के भाषण केवल भषण (भोंकना) मात्र रह जाता है, वक्ता कितना ही चीखे-चिल्लाये, उछले-कूदे यदि प्रस्तावित विषय पर उसका सक्षम अधिकार नहीं है, तो वह सभा में हास्यास्पद हो जाता है, उसके व्यक्तित्व की गरिमा लुप्त हो जाती है। इसीलिए बहुत प्राचीनयुग में एक ऋषि ने कहा था—**वक्ता शतसहस्रेषु**, अर्थात् लाखों में कोई एक वक्ता होता है।

शतावधानी मुनि श्री धनराज जी जैनजगत के यशस्वी प्रवक्ता हैं। उनका प्रवचन, वस्तुतः प्रवचन होता है। श्रोताओं को अपने प्रस्तावित विषय पर केन्द्रित एवं मंत्र-मुग्ध कर देना उनका सहज कर्म है। और यह उनका वक्तृत्व—एक बहुत बड़े व्यापक एवं गंभीर अध्ययन पर आधारित है। उनका संस्कृत-प्राकृत आदि प्राचीन भाषाओं का ज्ञान विस्तृत है, साथ ही तलस्पर्शी भी! मालूम होता है, उन्होंने पांडित्य को केवल छुआ भर नहीं है, किंतु समग्रशक्ति के साथ उसे गहराई से अधिग्रहण किया है। उनकी प्रस्तुत पुस्तक **'वक्तृत्वकला के बीज'** में यह स्पष्ट परिलक्षित होता है।

प्रस्तुत कृति में जैन आगम, बौद्धवाङ्मय, वेदों से लेकर उपनिषद ब्राह्मण, पुराण, स्मृति आदि वैदिक साहित्य तथा लोककथानक, कहावतें, रूपक, ऐतिहासिक घटनाएँ, ज्ञान-विज्ञान की उपयोगी चर्चाएँ—

इसप्रकार शृंखलाबद्ध रूप में संकलित है कि किसी भी विषय पर हम बहुत कुछ विचार-सामग्री प्राप्त कर सकते हैं। सचमुच वक्तृत्व-कला के अगणित बीज इसमें सन्निहित हैं। सूक्तियों का तो एक प्रकार से यह रत्नाकर ही है। अंग्रेजी साहित्य व अन्य धर्मग्रंथों के उद्धरण भी काफी महत्वपूर्ण हैं। कुछ प्रसंग और स्थल तो ऐसे हैं, जो केवल सूक्ति और सुभाषित ही नहीं है, उनमें विषय की तलस्पर्शी गहराई भी है और उसपर से कोई भी अध्येता अपने ज्ञान के आयाम को और अधिक व्यापक बना सकता है। लगता है, जैसे मुनि श्री जी वाङ्मय के रूप में विराट् पुरुष हो गए हैं। जहां पर भी दृष्टि पड़ती है, कोई-न-कोई वचन ऐसा मिल ही जाता है जो हृदय को छू जाता है और यदि प्रवक्ता प्रसंगत: अपने भाषण में उपयोग करे, तो अवश्य ही श्रोताओं के मस्तक झूम उठेंगे।

प्रश्न हो सकता है—'वक्तृत्वकला के बीज' में मुनि श्री का अपना क्या है ? यह एक संग्रह है और संग्रह केवल पुरानी निधि होती है; परन्तु मैं कहूँगा - कि फूलों की माला का निर्माता माली जब विभिन्न जाति एवं विभिन्न रंगों के मोहक पुष्पों की माला बनाता है तो उसमें उसका अपना क्या है ? बिखरे फूल, फूल हैं, माली नहीं। माला का अपना एक अलग ही विलक्षण सौन्दर्य है। रंग-बिरंगे फूलों का उपयुक्त चुनाव करना और उनका कलात्मक रूप में संयोजन करना—यही तो मालाकार का कर्म है, जो स्वयं में एक विलक्षण एवं विशिष्ट कलाकर्म है। मुनि श्री जी वक्तृत्वकला के बीज में ऐसे ही विलक्षण मालाकार हैं। विषयों का उपयुक्त चयन एवं तत्सम्बन्धित सूक्तियों आदि का संकलन इतना शानदार हुआ है कि इस प्रकार का संकलन अन्यत्र इस रूप में नहीं देखा गया।

एक बात और—श्री चन्दनमुनि जी की संस्कृत-प्राकृत रचनाओं ने मुझे यथावसर काफी प्रभावित किया है। मैं उनकी विद्वत्ता का प्रशंसक रहा हूँ। श्री धनमुनि जी उनके बड़े भाई हैं—जब यह मुझे

ज्ञात हुआ तो मेरे हर्ष की सीमाओं का और भी अधिक विस्तार हो गया। अब मैं कैसे कहूँ कि इन दोनों में कौन बड़ा है और कौन छोटा ? अच्छा यही होगा कि एक को दूसरे से उपमित कर दूँ। उनकी बहुश्रुतता एवं इनकी संग्रह-कुशलता से मेरा मन मुग्ध हो गया है।

मैं मुनि श्री जी, और उनकी इस महत्वपूर्णकृति का हृदय से अभिनन्दन करता हूँ। विभिन्न भागों में प्रकाशित होने वाली इस विराट् कृति से प्रवचनकार, लेखक एवं स्वाध्यायप्रेमीजन मुनि श्री के प्रति ऋणी रहेंगे। वे जब भी चाहेंगे, वक्तृत्व के बीज में से उन्हें कुछ मिलेगा ही, वे रिक्तहस्त नहीं रहेंगे ऐसा मेरा विश्वास है।

प्रवक्तृ-समाज—मुनि श्री जी का एतदर्थ आभारी है और आभारी रहेगा।

जैन भवन
आश्विन शुक्ला-३
आगरा

—उपाध्याय अमरमुनि

सम्पादकीय

वक्तृत्वगुण एक कला है, और वह बहुत बड़ी साधना की अपेक्षा करता है। आगम का ज्ञान, लोकव्यवहार का ज्ञान, लोकमानस का ज्ञान और समय एवं परिस्थितियों का ज्ञान तथा इन सबके साथ निस्पृहता, निर्भयता, स्वर की मधुरता, ओजस्विता आदि गुणों की साधना एवं विकास से ही वक्तृत्वकला का विकास हो सकता है, और ऐसे वक्ता वस्तुतः हजारों लाखों में कोई एकाध ही मिलते हैं।

तेरापंथ के अधिशास्ता युगप्रधान आचार्य श्रीतुलसी में वक्तृत्वकला के ये विशिष्ट गुण चमत्कारी ढंग से विकसित हुए हैं। उनकी वाणी का जादू श्रोताओं के मन-मस्तिष्क को आन्दोलित कर देता है। भारतवर्ष की सुदीर्घ पदयात्राओं के मध्य लाखों नर-नारियों ने उनकी ओजस्विनी वाणी सुनी है और उसके मधुर प्रभाव को जीवन में अनुभव किया है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक मुनि श्री धनराजजी भी वास्तव में वक्तृत्वकला के महान गुणों के धनी एक कुशल प्रवक्ता संत हैं। वे कवि भी हैं, गायक भी हैं, और तेरापंथ शासन में सर्वप्रथम अवधानकार भी है; इन सबके साथ-साथ बहुत बड़े विद्वान तो हैं ही। उनके प्रवचन जहां भी होते हैं, श्रोताओं की अपार भीड़ उमड़ आती है। आपके विहार करने के बाद भी श्रोता आपकी याद करते रहते हैं।

आपकी भावना है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी वक्तृत्वकला का विकास करें और उसका सदुपयोग करें, अतः जन-समाज के लाभार्थ आपने वक्तृत्व के योग्य विभिन्न सामग्रियों का यह विशाल संग्रह प्रस्तुत किया है।

बहुत समय से जनता की, विद्वानों की और वक्तृत्वकला के अभ्यासियों की माँग थी कि इस दुर्लभ सामग्री का जन-हिताय प्रकाशन किया जाय तो बहुत लोगों को लाभ मिलेगा। जनता की भावना के अनुसार हमने मुनिश्री की इस सामग्री को धारणा प्रारंभ किया। इस कार्य को सम्पन्न करने में श्री डूंगरगढ़, मोमासर, भादरा, हिसार, टोहाना, नरवाना, कैथल, हांसी, भिवानी, तोसाम, ऊमरा, सिसाय, जमालपुर, सिरसा और भटिंडा आदि के विद्यार्थियों एवं युवकों ने अथक परिश्रम किया है। फलस्वरूप लगभग सौ कापियों व १५०० विषयों में यह सामग्री संकलित हुई है। हम इस विशाल संग्रह को विभिन्न भागों में प्रकाशित करने का संकल्प लेकर पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हुए हैं।

वक्तृत्वकला के बीज का यह चौथा भाग पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है। इसके प्रकाशन का समस्त अर्थभार श्री एस० बी० एंड कंपनी, अहमदाबाद ने वहन किया है। इस अनुकरणीय उदारता के लिए हम उनके हृदय से आभारी हैं।

इसके प्रकाशन एवं प्रूफ संशोधन आदि में श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' तथा श्री ब्रह्मदेवसिंह जी आदि का जो हार्दिक सहयोग प्राप्त हुआ है—उसके लिए भी हम हृदय से कृतज्ञता-ज्ञापित करते हैं। आशा है यह पुस्तक जन-जन के लिए, वक्ताओं और लेखकों के लिए एक इनसाईक्लोपीडिया (विश्वकोश) का काम देगी और युग-युग तक इसका लाभ मिलता रहेगा....

●●

आत्म निवेदन

'मनुष्य की प्रकृति का बदलना अत्यन्त कठिन है'—यह सूक्ति मेरे लिए सवा सोलह आना ठीक साबित हुई। बचपन में जब मैं कलकत्ता—श्री जैनेश्वेताम्बर-तेरापंथी-विद्यालय में पढ़ता था, जहाँ तक याद है, मुझे जलपान के लिए प्रायः प्रतिदिन एक आना मिलता था। प्रकृति में संग्रह करने की भावना अधिक थी, अतः मैं खर्च करके भी उसमें से कुछ न कुछ बचा ही लेता था। इस प्रकार मेरे पास कई रुपये इकट्ठे हो गये थे और मैं उनको एक डिब्बी में रखा करता था।

विक्रम संवत् १९७९ में अचानक माताजी की मृत्यु होने से विरक्त होकर हम (पिता श्री केवलचन्द जी, मैं, छोटी बहन दीपांजी और छोटे भाई चन्दनमल जी) परमकृपालु श्री कालुगणीजी के पास दीक्षित हो गए। यद्यपि दीक्षित होकर रुपयों-पैसो का संग्रह छोड़ दिया, फिर भी संग्रहवृत्ति नहीं छूट सकी। वह धनसंग्रह से हटकर ज्ञानसंग्रह की ओर झुक गई। श्री कालुगणी के चरणों में हम अनेक बालक मुनि आगम-व्याकरण-काव्य-कोष आदि पढ़ रहे थे। लेकिन मेरी प्रकृति इस प्रकार की बन गई थी कि जो भी दोहा-छन्द-श्लोक-ढाल-व्याख्यान-कथा आदि सुनने या पढ़ने में अच्छे लगते, मैं तत्काल उन्हें लिख लेता या संसार-पक्षीय पिताजी से लिखवा लेता। फलस्वरूप उपरोक्त सामग्री का काफी अच्छा संग्रह हो गया। उसे देखकर अनेक मुनि विनोद की भाषा में कह दिया करते थे कि "धन्नू तो न्यारा में जाने की (अलग विहार करने की) तैयारी कर रहा है।" उत्तर में मैं कहा करता—"क्या आप गारंटी दे सकते हैं कि इतने (१० या १५) साल तक आचार्य श्री हमें अपने साथ ही रखेंगे? क्या पता, कल ही अलग विहार करने

का फरमान करदें। व्याख्यानादि का संग्रह होगा तो धर्मोपदेश या धर्म-प्रचार करने में सहायता मिलेगी।"

समय-समय पर उपरोक्त साथी मुनियों का हास्य-विनोद चल ही रहा था कि वि० सं० १९८६ में श्री कालुगणी ने अचानक ही श्रीकेवलमुनि को अग्रगण्य बनाकर रतननगर (थेलासर) चातुर्मास करने का हुक्म दे दिया। हम दोनों भाई (मैं और चन्दन मुनि) उनके साथ थे। व्याख्यान आदि का किया हुआ संग्रह उस चातुर्मास में बहुत काम आया एवं भविष्य के लिए उत्तमोत्तम ज्ञानसंग्रह करने की भावना बलवती बनी। हम कुछ वर्ष तक पिताजी के साथ विचरते रहे। उनके दिवंगत होने के पश्चात् दोनों भाई अग्रगण्य के रूप में पृथक्-पृथक् विहार करने लगे।

विशेष प्रेरणा—एक बार मैंने 'वक्ता बनो' नाम की पुस्तक पढ़ी। उसमें वक्ता बनने के विषय में खासी अच्छी बातें बताई हुई थीं। पढ़ते-पढ़ते यह पंक्ति दृष्टिगोचर हुई कि "कोई भी ग्रन्थ या शास्त्र पढ़ो, उसमें जो भी बात अपने काम की लगे, उसे तत्काल लिख लो।" इस पंक्ति ने मेरी संग्रह करने की प्रवृत्ति को पूर्वापेक्षया अत्यधिक तेज बना दिया। मुझे कोई भी नई युक्ति, सूक्ति या कहानी मिलती, उसे तुरंत लिख लेता। फिर जो उनमें विशेष उपयोगी लगती, उसे औपदेशिक भजन, स्तवन या व्याख्यान के रूप में गूंथ लेता। इस प्रवृत्ति के कारण मेरे पास अनेक भाषाओं में निबद्ध स्वरचित सैकड़ों भजन और सैकड़ों व्याख्यान इकट्ठे हो गए। फिर जैन-कथा साहित्य एवं तात्त्विकसाहित्य की ओर रुचि बढ़ी। फलस्वरूप दोनों ही विषयों पर अनेक पुस्तकों की रचना हुई। उनमें छोटी-बड़ी लगभग २९ पुस्तकें तो प्रकाश में आ चुकी, शेष ३०-३२ अप्रकाशित ही हैं।

एक बार संगृहीत-सामग्री के विषय में यह सुझाव आया कि यदि प्राचीन संग्रह को व्यवस्थित करके एक ग्रन्थ का रूप दे दिया जाए, तो यह उत्कृष्ट उपयोगी चीज बन जाए। मैंने इस सुझाव को स्वीकार किया और अपने प्राचीन संग्रह को व्यवस्थित करने में जुट गया। लेकिन पुराने संग्रह में कौन-सी सूक्ति, श्लोक या हेतु किस ग्रन्थ या शास्त्र के है अथवा किस कवि, वक्ता या लेखक के हैं—यह प्रायः लिखा हुआ नहीं था। अतः ग्रन्थों या शास्त्रों आदि की साक्षियां प्राप्त करने के लिए—इन आठ-नौ वर्षों में वेद, उपनिषद्, इतिहास, स्मृति, पुराण, कुरान, बाइबिल, जैनशास्त्र, बौद्धशास्त्र, नीतिशास्त्र, वैद्यकशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, शकुनशास्त्र, दर्शन-शास्त्र, संगीत-शास्त्र तथा अनेक हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, राजस्थानी, गुजराती मराठी एवं पंजाबी सूक्तिसंग्रहों का ध्यानपूर्वक यथासम्भव अध्ययन किया। उससे काफी नया संग्रह बना और प्राचीन संग्रह को साक्षी सम्पन्न बनाने में सहायता मिली। फिर भी खेद है कि अनेक सूक्तियाँ एवं श्लोक आदि बिना साक्षी के ही रह गए। प्रयत्न करने पर भी उनकी साक्षियां नहीं मिल सकीं। जिन-जिन की साक्षियां मिली हैं, उन-उनके आगे वे लगा दी गई हैं। जिनकी साक्षियां उपलब्ध नहीं हो सकीं, उनके आगे स्थान रिक्त छोड़ दिया गया है। कई जगह प्राचीन संग्रह के आधार पर केवल महाभारत, वाल्मीकि रामायण, योग-शास्त्र आदि महान् ग्रन्थों के नाममात्र लगाए हैं; अस्तु!

इस ग्रंथ के संकलन में किसी भी मत या सम्प्रदाय विशेष का खण्डन-मण्डन करने की दृष्टि नहीं है, केवल यही दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि कौन क्या कहता है या क्या मानता है। यद्यपि विश्व के विभिन्न देशनिवासी मनीषियों के मतों का संकलन होने से ग्रन्थ में भाषा की एकरूपता नहीं रह

सकी है। कहीं प्राकृत-संस्कृत, पारसी, उर्दू एवं अंग्रेजी भाषा है तो कहीं हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, पंजाबी और बंगाली भाषा के प्रयोग हैं, फिर भी कठिन भाषाओं के श्लोक, वाक्य आदि का अर्थ हिन्दी भाषा में कर दिया गया है। दूसरे प्रकार से भी इस ग्रन्थ में भाषा की विविधता है। कई ग्रन्थों, कवियों, लेखकों एवं विचारकों ने अपने सिद्धान्त निरवद्यभाषा में व्यक्त किए हैं तो कई साफ-साफ सावद्यभाषा में ही बोले हैं। मुझे जिस रूप में जिसके जो विचार मिले हैं, उन्हें मैंने उसी रूप में अंकित किया है, लेकिन मेरा अनुमोदन केवल निर्वद्य-सिद्धान्तों के साथ है।

ग्रन्थ की सर्वोपयोगिता—इस ग्रन्थ में उच्चस्तरीय विद्वानों के लिए जहाँ जैन-बौद्ध आगमों के गम्भीर पद्य हैं, वेदों, उपनिषदों के अद्‌भुत मंत्र हैं, स्मृति एवं नीति के हृदयग्राही श्लोक हैं वहाँ सर्वसाधारण के लिए सीधी-सादी भाषा के दोहे, छन्द, सूक्तियाँ, लोकोक्तियाँ, हेतु, दृष्टान्त एवं छोटी-छोटी कहानियाँ भी हैं। अतः यह ग्रन्थ निःसंदेह हर एक व्यक्ति के लिए उपयोगी सिद्ध होगा—ऐसी मेरी मान्यता है। वक्ता, कवि और लेखक इस ग्रन्थ से विशेष लाभ उठा सकेंगे, क्योंकि इसके सहारे वे अपने भाषण, काव्य और लेख को ठोस, सजीव, एवं हृदयग्राही बना सकेंगे एवं अद्‌भुत विचारों का विचित्र चित्रण करके उनमें निखार ला सकेंगे, अस्तु!

ग्रन्थ का नामकरण—इस ग्रन्थ का नाम 'वक्तृत्वकला के बीज' रखा गया है। वक्तृत्वकला की उपज के निमित्त यहाँ केवल बीज इकट्ठे किए गए हैं। बीजों का वपन किसलिए, कैसे, कब और कहां करना—यह वप्ता (बीज बोनेवालों) की भावना एवं बुद्धिमत्ता पर निर्भर करेगा। फिर भी मेरी मनोकामना तो यही है कि वप्ता परमात्मपदप्राप्ति रूप फल

के लिए शास्त्रोक्तविधि से अच्छे अवसर पर उत्तम क्षेत्रों में इन बीजों का वपन करेंगे। अस्तु !

यहाँ मैं इस बात को भी कहे बिना नहीं रह सकता कि जिन ग्रन्थों, लेखों, समाचार पत्रों एवं व्यक्तियों से इस ग्रन्थ के संकलन में सहयोग मिला है—वे सभी सहायक रूप से मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेंगे।

यह ग्रंथ कई भागों में विभक्त है एवं उनमें सैकड़ों विषयों का संकलन है। उक्त संग्रह बालोतरा मर्यादा-महोत्सव के समय मैंने आचार्य श्रीतुलसी को भेंट किया। उन्होंने देखकर बहुत प्रसन्नता व्यक्त की एवं फरमाया कि इसमें छोटी-छोटी कहानियाँ एवं घटनाएँ भी लगा देनी चाहिये ताकि विशेष उपयोगी बन जाए। आचार्य श्री का आदेश स्वीकार करके इसे संक्षिप्त कहानियाँ तथा घटनाओं से सम्पन्न किया गया।

मुनिश्री चन्दनमलजी, डूंगरमलजी, नथमलजी, नगराज जी, मधुकरजी, राकेशजी, रूपचन्दजी आदि अनेक साधु एवं साध्वियों ने भी इस ग्रन्थ को विशेष उपयोगी माना। बीदासर-महोत्सव पर कई संतों का यह अनुरोध रहा कि इस संग्रह को अवश्य धरा दिया जाए।

सर्व प्रथम वि० सं० २०२३ में श्री डूँगरगढ़ के श्रावकों ने इसे धारणा शुरू किया। फिर थली, हरियाणा एवं पंजाब के अनेक ग्रामों-नगरों के उत्साही युवकों ने तीन वर्षों के अथक-परिश्रम से धारकर इसे प्रकाशन के योग्य बनाया।

मुझे दृढ़विश्वास है कि पाठकगण इसके अध्ययन, चिन्तन एवं मनन से अपने बुद्धि-वैभव को क्रमशः बढ़ाते जायेंगे—

वि० सं० २०२७ मृगसर बदी ४
मंगलवार, रामामंडी, (पंजाब)

—धनमुनि 'प्रथम'

अनुक्रमणिका

पहला कोष्ठक पृष्ठ १ से ७७

१ विवेक, २ विवेक-महिमा, ३ विवेकी, ४ अविवेकी, ५ विवेक-हीन, ६ चिन्तन-मनन, ७ विचार, ८ सम्मति-सलाह, ९ आवश्यक-सलाह, १० सलाह के विषय में विविध, ११ उपदेश, १२ कला, १३ विविध कलाएँ, १४ कविता, १५ कविता का महत्व, १६ अच्छी कविता, १७ कविता-विरोध, १८ कवि, १९ कवि-प्रशंसा, २० कवियों की प्रकृति, २१ कवियों की शक्ति, २२ कवियों के लिये विचारणीय बातें, २३ निन्दनीय कवि, २४ विभिन्न भाषाओं के महान् कवि, २५ रसिक श्रोताओं के अभाव में कवि, २६ निर्भीक कवि गंग, २७ प्राचीन एवं आधुनिक कवि, २८ महान् कवि, २९ कल्पना, ३० कल्पना के उदाहरण, ३१ कहावतें, ३२ साहित्य, ३३ इतिहास, ३४ संयोजक, ६५ लेखक, ३६ बुरे लेखक, ३७ लेखनी, ३८ अध्ययन, ३९ स्वाध्याय, ४० अनाध्याय, ४१ अधिक अध्ययन ।

दूसरा कोष्ठक पृष्ठ ७८ से १४७

१ पुस्तक शास्त्र, २ पुस्तको का चयन, ३ विभिन्न दर्शनों के धर्मग्रन्थ, ४ प्रामाणिक ग्रन्थ, ५ युक्ति एवं न्याय से ग्रन्थों की प्रामाणिकता, ६ पुस्तक प्रकाशन, ७ विश्व के प्रख्यात पुस्तकालय, ८ अनुभव, ९ अनुभवहीन, १० परीक्षा, ११ परीक्षा आवश्यक, १२ परीक्षा-विधि, १३ परीक्षा का समय, १४ दर्शन, १५ आस्तिक, १६ नास्तिक, १७ नास्तिकों का कथन, १८ सम्यग्दर्शन-सम्यक्त्व, १९ सम्यक्त्व की दुर्लभता, २० सम्यक्त्व से लाभ, २१ सम्यक्त्व का महत्व, २२ सम्यग् दृष्टि, २३ श्रद्धा, २४ श्रद्धावान, २५ अश्रद्धावान् (शंकाशील) २६ संशय (शंका), २७ विश्वास, २८ विश्वास के अयोग्य, २९ विश्वासघात, ३० मिथ्यादर्शन (मिथ्यात्व), ३१ मिथ्यात्व के भेद ३२ मिथ्यादृष्टि ।

तीसरा कोष्ठक पृष्ठ १४८ से २२१

१ तत्व, २ द्रव्य, ३ नय-प्रमाण, ४ निश्चय व्यवहार नय, ५ स्याद्वाद, ६ उत्सर्ग-अपवाद, ७ सिद्धान्त, ८ चारित्र, ९ चारित्र का महत्व, १० ज्ञान के साथ चारित्र आवश्यक, ११ चारित्र की रक्षा, १२ चरित्र से लाभ, १३ त्याग, १४ त्याग के भेद, १५ त्यागी, १६ प्रत्याख्यान, १७ आचार (आचरण), १८ आचरण बिना ज्ञान, १९ आचारवान, २० आचारहीन, २१ कथन के समान आचरण आवश्यक, २२ शील, २३ व्रत, २४ महाव्रत, २५ सभ्यता, २६ योग, २७ योग महिमा, २८ योगी, २९ योगियों के चमत्कार ।

चौथा कोष्ठक पृष्ठ २२२ से ३३६

१ संयम, २ संयम से लाभ, ३ संयम की दुष्करता, ४ संयम में सुख-दुख, ५ संयम दीक्षा का समय आदि, ६ संयम से भ्रष्ट होने के अठारह स्थान, ७ संयम के भेद, ८ साधना, ९ साधु, १० मुनि,

११ अनगार, १२ भिक्षु, १३ श्रमण, १४ निर्ग्रन्थ, १५ स्थविर, १६ तापस, १७ फकीर, १८ संत, १९ कतिपय जगत्प्रसिद्ध संत महात्मा, २० साधुओं के गुण, २१ साधु संगति, २२ संतों का संताप, २३ साधुओं की गोचरी, २४ गोचरी के भेद, २५ गोचरी के नियम, २६ साधु का आहार, २७ आहार किसलिए, २८ साधुओं का निवास स्थान, २९ साधुओं के वस्त्र ३० साधुओं के पात्र ३१ साधुओं का विहार, ३२ साधु की भाषा, ३३ साधुओं के लिए कल्प-अकल्प, ३४ साधुओं के सुख, ३५ साधुओं के बारह संभोग और उनका विच्छेद ३६ साधुओं को शिक्षा, ३७ नामधारी साधु, ३८ पापी साधु, ३९ कंदर्पादि में लीन साधुओं की गति।

चार कोष्ठकों में कुल १४१ विषय तथा दस भागों में लगभग १५०० विषय हैं।

चौथा भाग

वक्तृत्वकला के बीज

पहला कोष्ठक

१ विवेक

१. हेयोपादेयज्ञानं विवेकः।
त्यागने योग्य एवं ग्रहण करने योग्य वस्तु के ज्ञान को **विवेक** कहते हैं।

२. विवेक केवल सत्य में पाया जाता है। —**गेटे**

३. उड़ने की अपेक्षा जब हम झुकते हैं, तब विवेक के अधिक निकट होते हैं। —**वर्डसवर्थ**

४. अपने विवेक को अपना शिक्षक बनाओ! शब्दों का कर्म से और कर्मों का शब्दों से मेल कराओ। —**शेक्सपीयर**

५. विवेक के नियमों को सीखकर, जो उन्हें जीवन में नहीं उतारता, उसने खेत में मेहनत करके भी बीज नहीं डाला। —**शेखसादी**

६. समझा-समझा एक है, अनसमझा सब एक।
समझा सो ही जानिए, जाके हृदय विवेक॥ —**कबीर**

७. ईर्ष्या हि विवेकपरिपन्थिनी। —**कथासरित्सागर**
ईर्ष्या ही विवेक की शत्रु है।

८. मदमूढ-बुद्धिषु विवेकिता कुतः! —**शिशुपालवध**
मद से मोहित बुद्धिवालों में विवेक कहां!

९. यौवन और सौन्दर्य में विवेक कदाचित् ही होता है।
—**होमर**

२ विवेक-महिमा

१. विवेगे धम्ममाहिए।

विवेक में धर्म कहा गया है।

२. विवेको मुक्तिसाधनम्।

विवेक मुक्ति का साधन है।

३. विवेको गुरुवत् सर्वं, कृत्याकृत्यं प्रकाशयेत्।

विवेक गुरु की तरह कृत्य-अकृत्य का मार्ग दिखाता है।

४. निर्वातहृद्-गेहगतः प्रकाशयेत्,

सर्वेप्सितं वस्तुविचारदीपकः। —**ब्रह्मानन्द**

चञ्चलतारूप वायु से रहित हृदयमंदिर में विवेकरूप दीपक समस्त इच्छित वस्तुओं को प्रकाशित करता है।

५. एको हि चक्षुरमलः सहजो विवेकः।

विवेक एक स्वाभाविक निर्मल नेत्र है।

६. कोर्टसी कोस्टस् नथिंग एडवाइज एव्रीथिंग।

—**अंग्रेजी कहावत**

विवेक के लिए एक पाई भी नहीं लगती, किन्तु इससे हरएक चीज खरीदी जा सकती है।

७. न विवेकं विना ज्ञानम्।

विवेक के बिना ज्ञान नहीं होता।

८. अग्नि के अंश बिना फूंक नहीं लगती, श्वास के बिना दवा नहीं लगती और कान आदि के बिना सुनना-देखना आदि कार्य नहीं होता—ऐसे ही विवेक के बिना व्यवहारिक या धार्मिक उन्नति नहीं होती। खाना, पीना, पहनना, ओढ़ना, सोना, उठना, बैठना, बोलना, चलना, पढ़ना, लिखना, हंसना, रोना आदि व्यवहारिक कार्य तथा ज्ञानचर्चा, व्याख्यान, सामायिक, पौषध, गुरुवन्दन, सेवा-भक्ति, तपस्या एवं दान, आदि धार्मिककार्य करना, इन सभी कार्यों में विवेक की जरूरत है। किसी ने कहा भी है—

आलस्य में पशुता, क्रिया में जीवन और विवेक में मनुष्यता है। अविवेकी को उपदेश नहीं लगता।

३ विवेकी

१. कायं परोपकाराय, धारयन्ति विवेकिनः ।

—धर्मकल्पद्रुम

विवेकी पुरुष परोपकार के लिए ही शरीर धारण करता है ।

२. विवेक दृष्ट्या चरतां जनानां,
श्रियो न किंचिद् विपदो न किंचिद् ।

विवेकपूर्वक आचरण करनेवालों के लिए संपत्ति हर्षदायक नहीं होती और विपत्ति दुःखदायक नहीं होती ।

३. विवेकिनमनुप्राप्ता, गुणा यान्ति मनोज्ञताम् ।
सुतरां रत्नमाभाति, चामीकरनियोजितम् ॥

—चाणक्यनीति १६।८

सोने में जड़े हुए रत्नों की तरह गुण विवेकी को पाकर अत्यधिक चमकने लगते हैं ।

४. विवेकिनां विवेकस्य, फलं ह्यौचित्यवर्तनम् ।

—त्रिषष्टिशलाका० ३।१

उचित व्यवहार करना ही विवेकियों के विवेक का फल है ।

४·

अविवेक

१· अविवेकः परमापदां पदम् । —**महाकवि भारवि**

अविवेक आपत्तियों का मुख्य स्थान है ।

२· नास्त्यविवेकात् परः प्राणिनां शत्रुः ।

—**नीतिवाक्यामृत १०।४५**

अविवेक से बढ़कर प्राणियों का कोई शत्रु नहीं है ।

३· जड़ जड़ता के वश पड़े, करते क्रिया अनेक ।
क्रिया विक्रिया हो रही, **चन्दन** बिना विवेक ।।

—**तात्त्विकत्रिशती**

४· धन जोबन अरु ठाकरी, तिण ऊपर अविवेक ।
ऐ च्यारू मेला हुवै, (तो) अनरथ करै अनेक ।।

५ विवेकहीन

१. विवेकान्धो हि जात्यन्धः । —योगवाशिष्ठ १४।४१

जो पुरुष विवेकान्ध (विवेकरूपी नेत्रों से हीन) है, वह जन्मान्ध है ।

२. शिरः शार्वं स्वर्गात् पतति शिरसस्तत्क्षितिधरं ।
माहीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम् ।।
अधो गङ्गा सेयं पदमुपगता स्तोकमथवा ।
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ।।

—भर्तृहरि-नीतिशतक १०

स्वर्ग से च्युत होकर शिवजी के सिर पर, शिवजी के सिर से हिमालय पर, हिमालय से पृथ्वी पर और फिर पृथ्वीतल से समुद्र में गिरती हुई वही गंगा लघुपद को प्राप्त हुई । वास्तव में विवेकभ्रष्ट पुरुषों का पतन सैकड़ों प्रकार से होता है ।

३. पुंसा विवेकहीनानां, सेवया न धनार्जनम् ।

विवेकहीन पुरुषों की सेवा करने से धन नहीं हुआ करता ।

४. फूटी आंख विवेक की, लखै न सन्त-असन्त ।
जाके संग दस-बीस हैं, ताको नाम महन्त ।।

६ चिन्तन–मनन

१. आत्मा का अपने साथ बात-चीत करना ही **मनन है।**

—प्लेटो

२. मनन विचार की परिचारिका है और विचार मनन का भोजन।

—सी० सिमन्स

३. धर्मशास्त्रों का मात्र पाठ करना दूसरों की गायें गिनने के समान है।

—बुद्ध

४. कालेण य अहिज्जित्ता, तओ झाइज्ज एगगो।

—उत्तराध्ययन १।१०

यथासमय अध्ययन करके फिर उसके तत्त्व का ध्यान-चिन्तन-मनन करना चाहिए।

५. चिन्तन की तीन भूमिकाएँ—

१. जो सोच नहीं सकता, वह **मूर्ख** है।

२. जो सोचना नहीं चाहता, वह **अन्धविश्वासी** है।

३. जिसमें सोचने का साहस नहीं, वह **गुलाम** है।

७ विचार

१. कोऽहं कथमयं दोषः, संसाराख्य उपागतः ।
न्यायेनेति परामर्शो, विचार इति कथ्यते ।।

— योगवाशिष्ठ २।५०

मैं कौन हूं ? मेरे में यह संसाररूपी दोष कैसे आया ? शास्त्रिक-न्याय से—ऐसे सोचने को **विचार** कहा जाता है ।

२. श्रोतव्ये च कृतौ कर्णौ, वाग्बुद्धिश्च विचारणे ।
यः श्रुतं न विचारेत, स कार्यं विन्दते कथम् ।।

कान सुनने के लिए किए गये हैं और वाणी एवं बुद्धि विचारने के लिए । जो मनुष्य सुनी हुई बात पर विचार नहीं करता, उसे कार्यरूप फल कैसे मिल सकता है !

३. विचाराद् ज्ञायते तत्त्वं, तत्त्वाद्विश्रान्तिरात्मनि ।

— योगवाशिष्ठ २।१४।५३

विचार से तत्त्वज्ञान होता है और उससे आत्मा को विश्राम मिलता है ।

४. बलं बुद्धिश्च तेजश्च, प्रतिपत्तिः क्रियाफलम् ।
फलन्त्येतानि सर्वाणि, विचारेणैव धीमताम् ।।

—योगवाशिष्ठ २

विद्वानों के बल, बुद्धि, तेज, समय के योग्य स्फूर्ति, क्रिया एवं उसके फल—ये सभी कार्य विचार से ही सफल होते हैं ।

५. महान् विचार जब कार्य के रूप में परिणत होते है तो वे महान् कार्य बन जाते हैं। —हैजलिट

६. संसार न कुछ भला है, न कुछ बुरा है। हमारे विचार ही उसे भला-बुरा बनाते हैं। —शेक्सपियर

७. आत्मा के विचार पानी हैं। उसमें गन्दगी मिलना पाप एवं सुगन्धि मिलना पुण्य है।

८. मनुष्य वैसा ही बन जाता है, जैसे उसके विचार होते हैं। —बाइबिल

९. विचार जब आचार की देहली में प्रविष्ट होते हैं, तब सुरक्षित बन जाते हैं। —जीवनसौरभ

१०. विचार मर्यादापूर्ण, सहानुभूतिमूलक और परिमित होने से ही समादृत होता है। —हरिऔध

११. हमारे सर्वोत्तम विचार दूसरों की देन हैं। —एमर्सन

१२. वह मुझे सुन्दर उपहार देता है, जो मुझे अपूर्व विचार सुनाता है। —बूबी

१३. जैसे आप महान् विचारवान है, वैसे ही करके दिखाने वा ने बनें। —शेक्सपियर

१४. सोचना शान्ति से और करना तेजी से। —जवाहरलाल नेहरू

सद्विचार

१. सद्विचार **नमक** है और आचार **भोजन** है, सद्विचार **सिकोरा** है और दानादि क्रियाएँ उसमें **तेल-बत्ती** हैं।

२. **सद्विचारों** की दृढ़ता से शारीरिक विकारों का नाश, सत्कर्म में प्रेम और दृढ़ विश्वास होता है।

- **सद्विश्वास** की दृढ़ता से मलिनवासनाओं का नाश, क्षमा, दया, धीरज, अनुराग की उत्पत्ति और सन्निदध्यास-प्रभुनाम की स्मृति में दृढ़ प्रयत्न होता है।

- **सन्निदध्यास** की दृढ़ता से अशुभकामनाओं का नाश, निष्कामभाव में वृद्धि, नश्वर-भोगों से पूर्ण वैराग्य और सत्तत्त्वों का अनुभव होता है।

- **सत्तत्त्वानुभव** की दृढ़ता से समर्पणबुद्धि, अहंभाव का सर्वनाश होता है और सत्स्थिति की प्राप्ति होती है व स्थूलसंसार का मोह नष्ट होता है।

- **सत्स्थिति** से तमाम दुर्मति नष्ट होकर आत्मा केवल ज्ञानस्वरूप में लीन हो जाती है। यह अवस्था निर्द्वन्द्व, गुणातीत, अतर्क व अद्वैत कहलाती है।

—**एक वैदिक विद्वान**

असद्विचार—

३. हमें अपने फोड़ों-गिल्टियों से छुटकारा पाने की चिन्ता न करके अपने गलत विचारों से पिंड छुड़ाने की परवाह करनी चाहिए। —**दार्शनिक-एपिक्टेट्स**

४. खुराक की बदहजमी के लिए तो दवा है, पर विचारों की बदहजमी आत्मा को बिगाड़ देती है। —**गांधी**

५. विचारों की शुद्धि तब हो सकती है, जब वे हवा की तरह उड़कर, सबके हृदय लगें, चांदनी की तरह सबकी आँखें ठंडी करदें। —**एकविचारक**

विचारों का परिवर्तन—

६. **अनुभव, ज्ञान, उन्मेष** और **वयस्** मनुष्य के विचारों को बदलते हैं। —**हरिऔध**

७. केवल मूर्ख और मृतक दो ही अपने विचारों को नहीं बदल सकते। —**लावेल**

●

६ सम्मति (सलाह)

१. नेवरगिव एडवाइस अनलेस आस्कड।

—जर्मन-लोकोक्ति

जब तक पूछा न जाय, कभी सलाह मत दो !

२. शुभं वा यदि वा पापं, द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम्।
अपृष्टस्तस्य तद् ब्रूयाद्, यस्य नेच्छेत् पराभवम्॥

—विदुरनीति २।४

मनुष्य को चाहिए कि वह जिसकी पराजय नहीं चाहता, उसको बिना पूछे भी कल्याण करनेवाली या अनिष्ट-करनेवाली प्रिय अथवा अप्रिय जो भी बात हो, बता दे !

३. भीड़ के स्थल पर सलाह मत दो !

—अरबी-लोकोक्ति

४. कोई सलाह ले तो युधिष्ठिर की तरह उसके हित की दो, न कि अपने हित की, क्योंकि वह अपने हित के लिए पूछता है, न कि तुम्हारे हित के लिए।

५. जैसे किसी के हाथ, पैर, कान, नाक, जीभ आदि काटना एवं आंखें फोड़ना महापाप है, उसी प्रकार बुरी सलाह देकर किसी का हिया फोड़ना भी महापाप है।

६. सीख देकर व्यक्ति को सन्मार्ग पर चढ़ाना जितना बड़ा पुण्य है, उन्मार्ग पर चढ़ाना उससे भी बढ़कर पाप है।

७. न तो किसी को युद्ध में जाने की सलाह दो, न विवाह करने को।

—**स्पेनी-लोकोक्ति**

८. जिसे हर कोई देने को तैयार रहता है, पर लेता कोई नहीं—ऐसी चीज है—**उपदेश** और **सलाह**।

—**रामतीर्थ**

१० सलाह लेना जरूरी !

१. एकश्चार्थान्न चिन्तयेत् । —विदुरनीति १।५१

मनुष्य को चाहिए कि अकेला किसी विषय का निश्चय न करे ! अर्थात् दूसरे की सलाह ले ।

२. वन स्वालो डज नॉट मेक ए समर । —अंग्रेजी कहावत

अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ता !

३. एक ही एक सो एकला, बे मिल बावन वीर !
सहु कहै अन्न ऊपर मुदो, पिण न सरै विण नीर !

४. एक पर एक-ग्यारह । —हिन्दी कहावत

५. पुराने जमाने में पगड़ी सूंघने का रिवाज था। तत्त्व यह था—कोई सलाह देनेबाला न हो तो पगड़ी से ही सलाह ले लो अर्थात् काम करने से पहले कुछ समय सोचलो !

६. सलाह तो अनेक लेते हैं, पर उससे लाभ उठाना तो बुद्धिमान ही जानता है । —साइरस

★

११ सलाह के विषय में विविध

१. अनायुक्तो मन्त्रकाले न तिष्ठेत् ।।

—**नीतिवाक्यामृत १०।३२**

कोई भी व्यक्ति मन्त्रणा के समय बिना बुलाया हुआ उस स्थान पर न ठहरे !

२. न तैः सह मन्त्रं कुर्यात्, येषां पक्षीयेष्वपकुर्यात् ।

— **नीतिवाक्यामृत १०।३१**

जिसने जिनके बन्धु आदि कुटुम्बियों का अपकार-अनिष्ट (वध-बंधनादि) किया है, उसे उन विरोधियों के साथ गुप्तसलाह नहीं करनी चाहिए ।

३. आकाशे प्रतिशब्दवति चाश्रये मन्त्रं न कुर्यात् ।

—**नीतिवाक्यामृत १०।२६**

जो स्थान चारों तरफ से खुला हो, ऐसे स्थान पर तथा पर्वत व गुफा आदि में जहाँ प्रतिध्वनि निकलती हो, वहां मन्त्रणा नहीं करनी चाहिए ।

४. दिवा नक्तं वाऽपरीक्ष्य मन्त्रयमाणस्याभिमतः प्रच्छन्नो वा भिनत्ति मन्त्रम् । —**नीतिवाक्यामृत १०।२६**

जो व्यक्ति दिन या रात्रि में योग्य स्थान की परीक्षा किए बिना ही मन्त्रणा करता है, उसका गुप्तमन्त्र प्रकाशित हो जाता है ।

५. इंगितमाकारो मदः प्रमादो निद्रा च मन्त्रभेदकारणानि ।
—**नीतिवाक्यामृत १०।३५**

गुप्तमन्त्र का भेद निम्नप्रकार पांच बातों से होता है, अतएव उनसे सदा सावधान रहना चाहिए यथा—(१) इंगित (गुप्त-मन्त्रणा करनेवाले की मुखचेष्टा), (२) शरीर की सौम्य या रौद्र आकृति (३) शराब पीना, (४) प्रमाद (असावधानियाँ करना) (५) निद्रा ।

६. षटकर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतुष्कर्णः स्थिरो भवेत ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन षट्कर्णं वर्जयेत् सुधीः ।।
—**पञ्चतन्त्र १।१०८**

'छः कन्नी' (तीन व्यक्तियों के सन्मुख की हुई) बात फूट जाती है किंतु 'चौकन्नी' गुप्त रह सकती है । अतः बुद्धिमान लोगों को चाहिए कि वे तीन व्यक्तियों के सामने कोई गुप्तमन्त्रणा न करें !

७. दो व्यक्ति सलाह करते हों तो तीसरे को वहाँ बिना बुलाये नहीं जाना चाहिए ।

◆ **राजा भोज**, एक दिन अचानक महल में चला गया । रानी उस समय दासी से बात कर रही थी । राजा को आता देखकर वह बोली—आओ मूर्ख ! राजा क्रुद्ध एवं विस्मित होकर लौट पड़ा । दरबार में पण्डित आते गए और राजा उन्हें कहता गया—"आओ मूर्ख ! आओ मूर्ख !" अन्त में कालिदास ने निम्नलिखित श्लोक कह कर राजा का समाधान किया ।

खादन्न गच्छामि हसन्न जल्पे,
गतं न शोचामि कृतं न मन्ये।
द्वाभ्यां तृतीयो न भवामि राजन्!
किं कारणं भोज! भवामि मूर्खः॥

—भोजप्रबन्ध

(१) मैं खाता हुआ चलता नहीं, (२) बोलते समय हंसता नहीं, (३) गई बात को सोचता नहीं, (४) किए उपकार को स्मरता नहीं, (५) दो व्यक्तियों की बात के बीच में जाता नहीं, फिर हे राजा भोज! मैं मूर्ख कैसे हुआ? मूर्ख बनने के तो ये ही पांच कारण हैं। वास्तविकता को समझकर राजा प्रसन्न हुआ।

●

१२ उपदेश

१. जो उपदेश आत्मा से निकलता है, वही आत्मा पर सबसे ज्यादा कारगर होता है । —**फुलर**

२. वह उपदेश उत्तम नहीं, जिसे सुनकर श्रोता लोग बातें एवं वक्ता की तारीफ करते जाएं, बल्कि उत्तम तो वह है, जिसे सुनकर विचारपूर्ण एवं गंभीर होकर जाएँ, तथा एकान्तवास की तलाश करें । —**विशप बर्नेट**

३. मेरे उपदेशों में खास बात यह है कि मैं सख्त दिल को तोड़ता हूं, और टूटे हुए को जोड़ता हूं । —**जॉनन्यूटन**

४. मुझे वह उपदेश पसन्द है, जो मेरे लिए बोलता है, न कि अपने लिए । जिसे मेरी मुक्ति वांछनीय है, न कि अपनी थोथी शान । —**मैसीलन**

५. किसी उपदेशक के दोषों पर प्रायः जल्दी ही ध्यान आकर्षित होता है । —**लूथर**

६. कोई अच्छा उपदेश दे, उसका मानो ! लेकिन वह क्या करता है, उसे मत देखो ! जैसे हलवाई की मिठाई लेते हैं, किन्तु यह नहीं देखते ही हलवाई खाता है या नहीं ।

उपदेशदान—

७. उपदेश पापियों और धर्मियों-दोनों को देना चाहिए ।

पापियों को इसलिए कि वे पाप से निवृत्त हों, और धर्मियों को इसलिए कि वे धर्म में सदा सुदृढ़ रहें।

—आचार्य श्रीतुलसी

८. नीति का उपदेश दो तो संक्षेप में दो। —हारेस

९ आधा घंटा से ज्यादा उपदेश देने के लिए आदमी या तो खुद फरिश्ता हो या सुनने के लिए फरिश्ता रखे।

—ह्वाइट फील्ड

१०. हजार टन उपदेश देने की अपेक्षा एक औंस पालन करना श्रेष्ठ है। — विवेकानन्द

११. हम उपदेश देते हैं टन भर, सुनते हैं मन भर, और ग्रहण करते हैं कण भर। —अलजर

१२. जैसा हम कहते हैं, वैसा करना चाहिए; जैसा करते हैं, वैसा नहीं। — वॉक्केशियो

१३. **परोपदेशे पाडित्यं** से ही दरिद्रता आती है। —रामतीर्थ

१४. एक पढ़े-लिखे बाबू नाव द्वारा नदी पार कर रहे थे। उन्होंने नाविक से पूछा—

क्या तुम व्याकरण जानते हो ?

नाविक—नहीं।

बाबू—तुम्हारी चार आने जिन्दगी निकम्मी है।

थोड़ी देर बाद—क्या तुम्हें काव्य करना आता है ?

नाविक—नहीं।

बाबू—फिरतो तुम्हारी जिन्दगा आठ आने बेकार हो गई।

अच्छा तो—तुम्हें गणित आता है ?

नाविक—नहीं।

बाबू—तब तो तुम्हारी बारह आने जिन्दगी व्यर्थ ही है।

संयोग से नदी में तूफान उठा और नाव डगमगाने लगी।

नाविक ने पूछा—बाबू जी ! आप तैरना जानते हैं ?

बाबू—नहीं।

नाविक ने कहा—फिर तो आपकी जिन्दगी इस समय सोलह आने पानी में है !

अन्ततः तूफान की चपेट में बाबूजी को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा।

●

१३ **कला**

१. **कला** वही है जो सौन्दर्य का सबक सिखाती है।

२. **कला** विचार को मूर्तिमान् करती है। **—एमर्सन**

३. सच्ची 'कला' ईश्वर का भक्तिमय अनुसरण है।
—ट्राईन एडवर्डस्

४. जो कला आत्मा के दर्शन की शिक्षा नहीं देती, वह कला कला ही नहीं हैं। **—गान्धी**

५. सर्वोच्च कला हमेशा धर्ममय होती है और महत्तम कलाकार भक्त होता है।

६. कला तो सत्य का केवल शृंगार है। **—हरिभाऊ उपाध्याय**

७. कला—कला के लिए नहीं; बल्कि समाज को उन्नत बनाने के लिये है।

८. कला की परिपूर्णता कला को छिपाने में है।

९. उपयोगी कलाओं की जननी है 'आवश्यकता' और ललित कलाओं की जननी है 'विलासिता'। पहली बुद्धि से उत्पन्न हुई है और दूसरी प्रतिभा से पैदा हुई है।
— शोपेनहोर

१०. सत्य की भूमि पर मायासृजन— यही है ललितकलाओं का रहस्य। निरा सत्य उनका ध्येय नहीं हो सकता।

११. लोगों को खुश करने की कला दुनियां में आगे बढ़ने की कुंजी है।

१४ विविध-कलाएं

(क) **लेखनकला**—

१. ऋषभ प्रभु ने ब्राह्मी के बाएं हाथ पर अपने दाहिने हाथ से अ-आ-इ-ई आदि वर्णमाला के ४४ अक्षर लिखे एवं लेखनकला का प्रारंभ किया। ब्राह्मी के हाथ पर लिखने से ब्राह्मीलिपि कहलाई। सुन्दरी के दाहिने हाथ पर अपने बाँयें हाथ से १, २, ३, आदि अंक लिखे अत: अंकों की वामगति हुई, कहा भी है—**अङ्कानां वामतो गतिः**।

२. बम्बई-निवासी **अनन्त भट्ट** ने एक पोस्टकार्ड में जवाहर-जीवनचरित्र लिखा। उसमें लगभग २ लाख अक्षर हैं।[१]

३. **जेम्स जाहारी** ने १९२९ में दो सेंट (अमेरीका का एक सिक्का) की टिकिट पर २० हजार अक्षर लिखे। १९३५ में एक चावल पर ९००७ अक्षर लिखे। फिर बालों पर उससे भी बारीक अक्षर लिखे। वे चावलों वाले अक्षरों से १/३ सूक्ष्म थे।

---

१ १४ नवम्बर १९४४ (नेहरु जन्म-दिवस) पर प्रधानमंत्री श्रीजवाहरलालजी को यह कार्ड भेंट किया गया।

४. भूतपूर्व **नेममुनि** ने सं० २००२ में ऐनक की सहायता के बिना एवं लकड़ी की कलम से चार इंच चौड़ा और नौ-इंच लम्बा एक पत्र लिखा। उसके दोनों ओर ८० हजार अक्षर थे। उससे भी सूक्ष्मअक्षरों वाले दो पत्र पुनः लिखे। उनके एक वर्ग-इंच में करीब १४०० अक्षर हैं।

—धनमुनि

५. **आशुलिपिकर्ता** हिन्दी में प्रति मिनिट २३० शब्द तक लिख सकते हैं। नई दिल्ली ३० जून केन्द्रीय सचिवालय-हिन्दीपरिषद द्वारा आयोजित हिन्दी-आशुलिपिकर्ताओं की सातवीं प्रतियोगिता में यह प्रमाणित हुआ।

—हिन्दुस्तान २१ जनवरी १९७०

(ख) **वस्त्र बुनने की अद्भुत कला**—

१. ढाके-चन्देरी आदि की, कारीगरी अब है कहां ?
हा ! आज हिन्दुनारियों की, कुशलता सब है कहां ?
थी वह कला या क्या कि, ऐसी सूक्ष्म थी अनमोल थी।
सौ हाथ लम्बे सूत की, बस आध रत्ती तोल थी[1]।
रक्खा नली में बांस की, जो थान कपड़े का नया।

---

१. ढाका जिले के सुनारी गांव में हाथ के कते हुए १७५ हाथ सूत का वज़न एक रत्ती था, तथा आधसेर रुई में २५० मील लम्बा सूत बनाया गया था—

—ढाका रेजिडेन्ट, सन् १८४६ से उद्धृत

आश्चर्य ! अंबारीसहित हाथी उसीसे ढंक गया।[1]
वे वस्त्र कितने सूक्ष्म थे, करलो कई उनकी तहें।
शहजादियों के अंग, फिर भी झलकते उनमें रहे।[2]
—**मैथिलीशरण गुप्त (भारत-भारती)**

२. **वस्त्र बुनने की कला** से राजा अपने घर पहुंचा—
प्रसंग—राजकन्या से मोहित एक राजा ने उसकी मांग की, कन्या ने कुछ कला सीखने की शर्त रखी। राजा ने वस्त्र बुनने की कला सीखी एवं विवाह हुआ। वक्र-शिक्षित अश्व के कारण एक बार राजा भीषण वन में पहुंचा। भीलों ने वहां उसे कैद कर लिया। इधर मन्त्री खोज कर रहे थे, किन्तु पता न चल सका। बुद्धिमान राजा ने कई रुमाल बुने एवं उनमें गुप्तरूप से अपना नाम लिखा। भील बेचने शहर में गये। पता पाकर सेनासहित मन्त्री आया और राजा को छुड़ाकर ले गया।

(ग) गायन कला—

१. नास्ति नादसमो रसः।
संगीत के समान कोई रस नहीं है।

---

१. ढाके की मलमल १० गज लम्बी एवं १ हाथ चौड़ी होती थी, जिसका वजन ८ तोले ४।। माशे होता था। अकबर को एक कारीगर ने बांस की नली में डालकर एक मलमल का थान भेंट किया था, जिससे हौदासहित हाथी ढका जा सकता था।
२. औरंगजेब की लड़की ने मलमल की कई तहें करके उस वस्त्र को ओढ़ा फिर भी उसका बदन दीखता ही रहा।

२. कहा जाता है कि फारस में **मिरजा मुहम्मद** बीन बजाकर बुलबुलों को सचेत तथा अचेत कर देते थे ।

- **बैजूबाबरा** मालकोश राग गाकर हिरणों को आकृष्ट कर लेते थे ।
- **तानसेन** मेघमल्हार गाकर पानी बरसा देते थे एवं दीपकराग से दीपक जला देते थे ।

३. तानसेन के गुरु स्वामी **हरिदासजी** ने प्रभुभक्ति में लीन होकर एक बार ऐसा गीत गाया, जिसे सुनकर शहन्शाह अकबर आनन्दमग्न होकर मूर्च्छित हो गया ।

४. **मदनमोहन चटर्जी** ने तीन वर्ष दो महीने की आयु में ताल-स्वर संयुक्त सर्वप्रथम गाना गाया एवं श्रोता-विस्मित हुए । सात वर्ष की आयु में वे अच्छे गवैये बन गये ।

५. गोगो गायो र गीतां रो छेह आयो ।

—राजस्थानी कहावत

६. **गीत के १८५ अङ्ग—**

सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा, मूर्च्छनाश्चैकविंशतिः ।
तालास्त्वेकानपञ्चाशत्, तिस्रो मात्रा लयास्त्रयः ।।
स्थानत्रयं यतीनां च, षडास्यानि रसा नव ।
रागाः षट्त्रिंशतिर्भावा-श्चत्वारिंशत्ततः स्मृताः ।।
पञ्चाशीत्यधिकं ह्येतद्, गीताङ्गानां शतं स्मृतम् ।
स्वयमेव पुरा प्रोक्तं भरतेन श्रुतेः परम् ।।

—पञ्चतन्त्र ५।५३-५४-५५

गीत के स्वर सात होते हैं—(१) षड्ज (२) ऋषभ (३) गान्धार (४) मध्यम (५) पंचम (६) धैवत (७) निषध।

ग्राम (स्वर समूह) तीन होते हैं—(१) षड्जग्राम (२) मध्यम-ग्राम (३) निषादग्राम।

स्वर का आरोह—अवरोह-द्वारा सम्यक् प्रकार से मूर्छित हो जाना **मूर्छना** कहलाती है। उसके २१ भेद हैं। **ताल** उनचास हैं। **मात्राएँ** तीन हैं—(१) ह्रस्व (२) दीर्घ (३) प्लुत। **लय** तीन होते हैं। (गीत-नृत्य-वाद्य की एकतानता रूप साम्य-भाव का नाम लय है) **यति** (विराम-स्थान) तीन हैं। **आस्य** छः हैं। **रस** श्रृंगार आदि नौ हैं। **राग**: भैरव, कौशिकी, हिण्डोल, दीपक, श्री, और मेघ आदि ३६ हैं। **भाव** ४४ हैं। इस प्रकार **नाटचाचार्य भरत** ने गीत के १८५ अंग कहे हैं।

७. बाह्यार्थालम्बनो यस्तु, विकारो मानसो भवेत्।
स भावः कथ्यते सद्भि-स्तस्योत्कर्षो रसः स्मृतः॥

बाह्यवस्तुओं के सहारे से जो मन में विकार उत्पन्न होते हैं, उन्हें भाव कहते हैं। भाव जब उत्कर्ष को प्राप्त कर लेते हैं तो वे रस कहे जाते हैं।

८. रस नौ हैं—(१) वीर, (२) शृङ्गार, (३) अद्भुत (४) रौद्र, (५) व्रीडा, (६) बीभत्स, (७) हास्य, (८) करुण, (९) प्रशान्त।

अनुयोगद्वार गाथा ६३ से ८१, सूत्र १२९

(घ) **नृत्य-कला**—

- अफ्रीका में आइबरी-कोस्ट की आदिम जाति, **लोबी**, में नर्तक एक हाथ में एक कटार और दूसरे हाथ में एक खंजर लेकर इन तीक्ष्ण हथियारों की नोक पर एक

लड़के को संतुलित कर घंटों तक विद्युतगति से नाचता रहता है।

- गोलकुंडा (भारत) के शासक, अबुलहसन तानाशाह के दरबार में एक अनोखी नर्तकी थी, **तारामती** वह प्रति दिन शाह को अपना नृत्य दिखाती थी। लेकिन यह नृत्य बड़ा अद्भुत होता था। पहाड़ पर बने शाह के महल से नर्तकी का निवास करीब आधा मील दूर नीचे पड़ता था। एक मजबूत रस्सा महलसे नर्तकी के निवास तक तान दिया जाता था। इस रस्से पर नाचती हुई तारामती अपने निवास की छत से महल की छत पर पहुंच जाती थी। यह क्रम सन् १६७२ से १-७७, पाँच वर्षों तक चलता रहा।

—विचित्रा, वर्ष ३, अंक ४, १९७१

(घ) तैरने की कला—

गत रविवार की सायं को सबसे छोटा तैराक साढ़ेचार साल का था, जो एक ऊँचे पत्थर से तेज यमुनाप्रवाह में छलांग लगाता था। नव वर्ष की एक लड़की नदी के पाट को पार कर गई। चार लड़कियां तैरती हुई फूलों के आकार बना रही थीं एवं नृत्य कर रही थीं। एक लड़की के हाथ-पैर रस्सी से बाँधकर उसे पानी में फैंका गया फिर भी वह तैरकर बाहर आ गई। एक लड़की ने खड़ी तारी दिखाई, वह ऐसी लग रही थी, मानो! पानी पर चल रही है। एक उस्ताद ने आधे

दर्जन बच्चों को कंधों पर बिठाकर **खड़ी** तारी का प्रदर्शन किया। तैराकों के उस्ताद ८० वर्षीय **पंडित लल्लु भाई** का कहना है कि तैरना सब रोगों की अचूक दवा है। —**नवभारत टाइम्स १२ अक्टूबर १९६१ से।**

छः मास का एक बच्चा नौ मिनट तक बिना किसी और के सहारे पानी में तैरता रहा। पांच महीने की एक लड़की साढ़े तीन मिनट तक पानी में तैरती रही।

—**मिलाप १६ नवम्बर ७१**

(छ) **बाणकला**—

१. बड़ौदा आर्यकन्या-महाविद्यालय की कन्याओं ने राज्यपाल **मंगलदास पकवासा** के स्वागत में, सोकर पैरों से तीर चलाए। उन तीरों ने सामने रखी हुई पुष्पमाला लेकर राज्यपाल के गले में पहना दी।

२. अमरापुर का लक्ष्यबेधी **चम्पा वणिक** ऊँट पर चढ़ा हुआ परदेश से धन कमाकर आ रहा था। तीन डाकू मिले, धन मांगा। उसने कहा—दानरूप में दे सकता हूं।
डाकू—हो जा लड़ने को तैयार।

वणिक नीचे उतरा एवं दो तीर तोड़ डाले। (उसके पास कुल पांच तीर थे) पूछने पर बोला—तुम पैदल हो और तीन हो, एक बाण से अधिक न मारने की प्रतिज्ञा है।

विस्मित डाकू बोले—पक्षी मारकर परीक्षा दे।
वणिक—व्यर्थ हिंसा कौन करे!

यों कहकर अपनी मोतियों की माला एक डाकू के सिर पर रखी, बाण चलाया, वह माला को ले गया, लेकिन सिर के बाल हिले तक नहीं।

३. **मुहम्मद गोरी** ने कारगरनदी के किनारे भीषण युद्ध में हराकर **पृथ्वीराज चौहान** को पकड़ लिया और हथकड़ी बेड़ी एवं गले में तोक पहनाकर गजनी में कैद कर लिया। इतना ही नहीं उसको दोनों आँखे भी निकलवा दीं। पृथ्वीराज के परमसखा **चन्द्रकवि** भी योगी के रूप में वहां जा पहुंचे। अपने अद्भुत व्यक्तित्व और बुद्धिमत्ता से बादशाह के प्रीतिपात्र बने। मौका लगाकर अपने स्वामी से मिले और दुःख-सुख की बातें कीं।

वैर का बदला लेने की ठानकर एक दिन बादशाह से कहने लगे—कि पृथ्वीराज जैसे बहादुर नरेश को इस प्रकार दुःख देना आप जैसे बादशाह को शोभा नहीं देता। उनसे अनेक अद्वितीय - शस्त्रविद्याएँ सीखनी चाहिए। वे इतने अद्भुत शब्दवेधी हैं कि सौ-सौ मन के सात तवे तलाऊ पर रखकर कंकर मारने के साथ ही उन्हें फोड़ सकते हैं। दुर्भाग्यवश गोरी के जँच गई एवं एक तरफ तलाऊ पर सात तवे रखे गये। तथा एक तरफ ऊंचे मचान पर बादशाह बैठा। पृथ्वीराज आये, हथकड़ी-बेड़ी हटा दी गई। प्रत्यंचा चढ़ाते समय कई धनुष टूट गए। आखिर उन्हें उनका मूल धनुष लाकर

दिया गया। तुरन्त प्रत्यंचा चढ़ाई एवं धनुष-बाण लेकर तैयार हुए। उस समय चन्द्रकवि ने अपनी भाषा में यह दोहा सुनाया—

चार बांस चोईस गज, अंगुल अष्ट प्रमाण।
मार-मार मोटे तवे, मत चूके चौहान !

चौहान सारा मर्म समझ गया। ज्योंहो तवों पर कंकर मारे गये और बादशाह ने उत्साह-वर्धक **शाबाश** शब्द कहा, शब्दबेधी वीर पृथ्वीराज ने उसी **शाबाश** शब्द के आधार पर इतना जोरदार बाण मारा कि बादशाह मरकर ओंधे मुंह गिर पड़ा। रंग में भंग हो गया और हाहाकार मच गया। मुसलमान ज्योंही पृथ्वीराज को मारने दौड़े। चन्द्र-पृथ्वीराज परस्पर एक-दूसरे की तलवार से मर गये।

—राजपूती कथाओं से

(ज) धर्मकला—

१. सव्वा कला धम्मकला जिणाइ।
धर्मकला सब कलाओं को जीतनेवाली है।

२. बावत्तरिकलाकुसला, पंडियपुरिसा अपंडिया चेव।
सव्वकलाणं पवरं, धम्मकला जे न जाणंति॥
बहत्तर कलाओं में निपुण पण्डित पुरुष भी यदि सब कलाओं में श्रेष्ठ धर्मकला को नहीं जानते तो वे वास्तव में अपण्डित ही हैं।

(झ) कलाकार—

१. जीवन सब कलाओं में श्रेष्ठ है। जो अच्छी तरह जीना जानता है, वही सच्चा कलाकार है। **—महात्मा-गांधी**

२. कलाकार बनने के लिए शर्त है—मानव मात्र के प्रति प्रेम, न कि कला-प्रेम। **—टालस्टाय**

३. कलाकार जैसी वस्तुएँ हैं, वैसी नहीं देखता, अपितु वैसी देखता है, जैसा वह स्वयं है। **- अल्फेडटानेल**

४. इस भरतक्षेत्र के आदि कलाकार **श्री आदिनाथ भगवान्** थे। उन्होंने ही पुरुषों की ७२ तथा स्त्रियों की ६४ कलाएँ बतलाई हैं।

(समवायांग ७२ तथा कल्पसूत्र में कलाओं का वर्णन है)

१५ कविता

१. वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ।

—साहित्यदर्पण

रसयुक्त वाक्य को काव्य-कविता कहते हैं ।

२. कविता भावनाओं से मंजी हुई बुद्धि है ।

—प्रो० विल्सन

३. कविता सर्वोत्तम मनस्वियों के सर्वाधिक आनन्द के क्षणों का रिकार्ड है । —शैली

५. कविता केवल कहने का सुन्दर और प्रभावशाली तरीका है । — मेथ्यु आर. नोल्ड

४. कविता थोड़े शब्दों में महान् शक्ति बताती है ।

—एमर्सन

६. चउव्विहे कव्वे पण्णत्ते, तं जहा—गद्दे, पद्दे, कत्थे, गेए ।

—स्थानांग ४।४।३७६

काव्य चार प्रकार का कहा है—(१) गद्य, (२) पद्य, (३) कथामय, (३) गेय—(गाने योग्य) ।

★

१६ कविता का महत्त्व

१. नरत्वं दुर्लभं लोके, विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभ लोके, शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा ।।

जैसे—मनुष्यजंन्म दुर्लभ है, और उसमें विद्याप्राप्ति सुदुर्लभ है—उसी प्रकार कवित्व दुर्लभ है, लेकिन कवित्वशक्ति का मिलना तो बहुत ही दुर्लभ है।

२. कविता सूं संसार में, अमर बणै है नाम,
कवि मरै, पण नहीं मरै, कविवाणी अभिराम।

—सावधानी रो समुद्र १८।८

३. का विद्या कवितां विना !

कविता के बिना विद्या में क्या है !

४. कविता का जामा पहनकर सत्य और भी चमक उठता है। **—पोप**

५. केषां नैषा कथय कविता-कामिनी कौतुकाय ?

बताओ ! यह कवितारूपी कामिनी किसके लिए कौतुक का कारण नहीं बनती ?

★

१७ अच्छी कविता

१. सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् ।

—भर्तृहरि-नीतिशतक २१

यदि श्रेष्ठ कविता है तो फिर राज्य में क्या है ।

२. सरसा सालङ्कारा, सुपदन्यासा सुवर्णमयमूर्तिः ।
आर्या तथैव भार्या, न लभ्यते पुण्यहीनेन ।।

—प्रसंगरत्नावली

सरस, अलङ्कारसहित अर्थात् अच्छे वाक्य को सझानेवाली गुणसहित, अच्छे पदों की रचनावाली एवं अच्छे वर्णों—अक्षरोंवाली ऐसी आर्या (एक प्रकार की पद्यमय कविता) और भार्या पुण्यहीन को नहीं मिलती। भार्या के पक्ष में अलंकार का अर्थ आभूषण है, सुपद का अर्थ अच्छे पग हैं और सुवर्णमयमूर्ति का अर्थ सोने की-सी पुतली है। (यह द्व्यर्थ काव्य है)।

३. सा कविता सा वनिता, यस्याः श्रवणेन दर्शनेनापि ।
कविहृदयं विड्हृदयं, सरलं तरलं च सत्वरं भवति ।।

वही कविता, कविता है, जिसे सुनने से कवियों का हृदय सरल हो जाये। वही वनिता, वनिता है, जिसको देखते ही मनुष्य का हृदय चंचल हो जाय।

४. सहज और सीधी हुवै, ऊंचा भाव यथेष्ट ।
रस बरसै मुख बोलतां, वाही कविता श्रेष्ठ ।

स्वर पूरा बैठे नहीं, तुक्कां मिलण न पाय ॥
भटकै भाव जग्यां बिना, तो फिर कविता नांय ॥

—सावधानी रो समुद्र १८।२१-२२

५. कूर्पासकेनार्धतिरोहितौ कुचौ,
रम्यौ रमण्याः कविताक्षराणि च ।
अर्धं निगूढानि सुशोभितान्यलं,
नात्यन्तगूढानि न वा स्फुटानि ॥

कंचुकी से आधे ढके हुए स्त्री के स्तनवत् कविता के अक्षर भी अर्ध-आच्छादित ही शोभा देते हैं। अत्यन्त-गूढ़ अथवा अत्यन्त-स्पष्ट अच्छे नहीं लगते ।

६. कविता ऐसी चाहिए, ज्यों कांसे का थाल ।
तनिक ठेस से अति सरस, ध्वनि गूंजे चिरकाल ॥

७. वास्तविक हार्दिकता से पैदा हुई कविता हमेशा शरीफ और ऊंची बनती है। —ऐ. ए. हाफकिन्स

८. किसी उत्कृष्ट कवि की कविता भी यदि रामनाम से रहित हो तो नग्न स्त्री की तरह वह शोभा नहीं देती ।

—रामचरितमानस

९. पुराणमित्येव न साधु सर्वं,
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम् ।
सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते,
मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥

—मालविकाग्निमित्र नाटक १।२

पुराना होने से सभी काव्य अच्छा नही होता और नया होने मात्र से खराब नहीं होता। अतः सत्पुरुष दोनों की परीक्षा

करके अच्छे को स्वीकार करते हैं, किन्तु मूर्ख व्यक्ति दूसरों के विश्वास पर चलता है।

१०. कि कवेस्तस्य काव्येन, किंकाण्डेन धनुष्मता।
परस्य हृदये लग्नं, न घूर्णयति यच्छिरः ॥

—शार्ङ्गधर

क्या है उस कवि के काव्य से और क्या हैं उस धनुष्य-बाण से, जो हृदय में लगकर दूसरे का सिर न हिला सके।

११. कविता समझनेवालों की अपेक्षा करनेवाले ज्यादा हैं। एक अच्छा पद्य समझने की अपेक्षा एक रद्दी-सा पद्य लिखना आसान है। —मान्टेन

★

१. काव्यं करोषि किमु ते सुहृदो न सन्ति,
ये त्वामुदीर्णपवनं न निवारयन्ति।
गव्यं घृतं पिब! निवातगृहं प्रविश्य,
वाताधिका हि पुरुषाः कवयो भवन्ति ।।

—सुभाषितरत्नभाण्डागार ३६

क्या बढ़ती हुई वायु को रोकनेवाले तेरे कोई मित्र नहीं हैं, जो तू कविता करने लगा है। जहां हवा न लगती हो, ऐसे मकान में घुसकर गाय का घी पीले! अधिक वायुवाले पुरुष ही कवि होते हैं।

काव्य में दोष देखनेवाले व्यक्ति—

२. अतिरमणीये काव्ये, पिशुनो दूषणमन्वेषयति।
अतिरमणीये वपुषि, व्रणमिव मक्षिकानिकरः ।।

—इन्दुशेश प्रुख

जैसे अति सुन्दर शरीर में भी मक्खियाँ व्रण-घाव को खोजती हैं, उसी प्रकार चाहे काव्य कितना ही मनोहर क्यों न हो, दुष्टव्यक्ति उसमें दोष देखा करता है।

३. अतिरमणीये काव्ये, पिशुनो दूषणमन्वेषयति।
सुन्दरमणिमयभुवने, पश्यति रन्ध्रं पिपीलिका सततम् ।।

जैसे रत्नों के सुन्दर महल में भी चींटिया बिलों को देखती

रहती हैं, उसी प्रकार सुन्दर काव्य में दुष्टव्यक्ति दोष ही देखता है ।

४. कर्णामृतं काम्यरसं विहाय, दोषेषु यत्नो सुमहान् खलस्य ।
अवेक्षते केलिवनं प्रविष्टः, क्रमेलकः कण्टकजालमेव ।।

कानों में अमृततुल्य काव्यरस को न लेकर दुष्टपुरुष दोष देखने का ही महान् प्रयत्न करते हैं । जैसे—केलिवन में घुसकर भी ऊंट कांटोंवाले वृक्ष की ही खोज करता है ।

५. जानाति हि पुनः सम्यक्, कविरेव कवेः श्रमम् ।

कविता करने में कवियों को कितना परिश्रम करना पड़ता है, वह कवि ही जानता है ।

●

१. हमारी अन्तस्थ भावनाओं को जागृत करने की जिनमें शक्ति हो, वे **कवि** हैं। **—गांधी**

२. **कवि वे हैं**—जो फूलों से महकते विचारों को उतने ही रंगीन शब्दों में लिखते हैं। **—श्रीमती क्रूडनर**

३. **वे कवि हैं**—जो प्रेम करते हैं, जो महान् सत्यों की अनुभूति करते हैं और उन्हें कहते हैं। **—बेली**

४. कवि का सबसे बड़ा गुण नई-नई बातों का सूझना है।
—महावीरप्रसाद द्विवेदी

५. कवि बणाया नहि बणै, सहज - स्वभावी होय।
स्वाभाविकता कवि तणीं, अजब चीज जग जोय ॥
—सावधानी रो समुद्र १८।१

६. कोई भी अच्छा आदमी हुए बिना अच्छा कवि नहीं हो, सकता। **—बेनजॉन्सन**

७. ऐसा कोई भी व्यक्ति आज तक महान् कवि नहीं हुआ, जो कवि होने के साथ-साथ दार्शनिक न हुआ हो।
—कोलरिज

८. कवि करोति पद्यानि, लालयत्युत्तमो जनः।
तरुः प्रसूते पुष्पाणि, मरूद्वहति सौरभम् ॥
—प्रसंगरत्नावली

कवि पद्यों को बनाता है और उत्तम व्यक्ति उन्हें लडाता है। जैसे—वृक्ष पुष्पों को उत्पन्न करता है और हवा उनकी सुरभि को फैलाती है।

६. संग्रामेषु भटेन्द्राणां, कवीनां कविमण्डले।
दीप्तिर्वा दीप्तिहानिर्वा, मुहूर्तेनैव जायते ॥

भोजप्रबन्ध १५०

सुभटों का संग्राम में और कवियों की कवि-समूह में शोभा या कुशोभा मुहूर्तमात्र में ही हो जाती है।

२० कवि-प्रशंसा

१. जयन्ति ते सुकृतिनो, रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशः - काये, जरा-मरणजं भयम् ॥
—शार्ङ्गधर १६६ तथा भर्तृहरि-नीतिशतक २४

वे पुण्यशाली एवं रससिद्ध कविराज विश्व में विजयी होते हैं, जिनके यशःरूप शरीर को कभी जरा-मरण का भय नहीं है ।

२. अपारे काव्यसंसारे, कविरेकः प्रजापतिः ।
यथाऽस्मै रोचते विश्वं, तथेदं परिवर्तते ॥
—उत्तर-रामचरित उदाहार; पृ० ६

इस अपारकाव्य-संसार में कवि एक प्रजापति है । इसे जैसा रुचता है, संसार वैसा ही बन जाता है ।

३. कवयो ह्यर्थं विनापीश्वराः ।

कवि लोग धन के बिना भी ईश्वर हैं ।

४. सच्चा कवि बहुत कुछ पैगम्बर के समान है ।

५. कवि आत्मा का चित्रकार है ।
—आइजक डिजराइली

६. रामायण-महाभारत के रचयिता शब्द के चित्रकार नहीं थे, मानव-स्वभाव के चित्रकार थे । —गांधी

७. कवि की अंगुलियों से शब्द चमक उठते हैं । —जोवर्ट

★

२१ कवियों की प्रकृति

१. वर्तमान का आनन्द लेना, भविष्य के प्रति लापरवाही, समझदार की-सी बातें और बेवकूफ की-सी हरकतें, हर देश में कवि का यह एक ही स्वरूप है।

—**गोल्डस्मिथ**

२. चरन धरत चिन्ता करत, चित्त न भावत और।
सुवरण को शोधत फिरै, कवि व्यभिचारी चोर ॥

३. कवयः किं न पश्यन्ति, किं न कुर्वन्ति योषितः।
मद्यपाः किं न भाषन्ते, किं न भक्षन्ति वायसाः ॥

—**चाणक्यनीति १०।४**

कवि क्या नहीं देखते, स्त्रियाँ क्या नहीं करती, शराबी क्या नहीं कहते तथा काक (कौवा) क्या नहीं खाते ?

★

२२ कवियों की शक्ति

१. कवि की आँख स्वर्ग से भूतल और भूतल से स्वर्ग तक को देख लेती है। —**शेक्सपियर**

२. जहाँ न पहुंचे रवि, वहाँ पहुंचे कवि। —**हिन्दी कहावत**

३. स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ।
मुखं श्लेष्मागारं तदपि च शशाङ्केन तुलितम् ॥
स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धि जघन-
महो ! निंद्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरु कृतम् ॥

—**भर्तृहरि-वैराग्यशतक** २०

स्त्रियों के स्तन मांस की गाठें हैं, उन्हें स्वर्ण-कलश के समान कह दिया। मुख थूक-खंखार का घर है, उसे चन्द्रमा तुल्य कह दिया तथा जांघें, जो मूत्र से भींगी रहती हैं, उन्हें हाथी की सूंड से भी बढ़कर बतला दिया। अहो ! कविजनों ने ऐसे निंदनीय रूप को भी कितना बढ़ा-चढ़ाकर बताया है ?

४. लङ्कापतेः संकुचितं यशो यद्,
यत्कीर्ति पात्रं रघुराजपुत्रः।
स सर्वमेवादिकवेः प्रभावो,
न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः ॥

—**बिल्हणकवि**

रावण का यश संकुचित रहा और राम सुयश के पात्र बने। यह सारा आदिकवि श्री वाल्मीकि का ही प्रभाव है। अतः राजाओं को चाहिए कि वे कवियों को कभी नाराज न करें।

५. भीमा तूं भाठोह, मोटा भाखर मांयलो।
कर राखूं कठोह, शंकर ज्यूं सेवा करूं॥

६. राणा तू तो राख, मोटा चूल्हा मांयली।
कुल उजवालण काख, कासी ज्यूं करणो शरां॥

७. घर सूं भूखा नीकल्या, चूक गया सल्ला।
खाटू भाटा नीपजै, अन्न कठै अल्ला॥

—राजस्थानी सोरठे

८. यह काम है केवल कवियों का, पानी में आग लगा देना।
पत्थर को मोम बना देना और आग में बाग लगा देना॥

—पृथ्वीराज नाटक

२३ कवियों के लिए विचारणीय बातें

१. कविता करणी खेल नहिं, खरो खिलाणों साँप ।
भूल कर्‌यां मुख पर लगै, आ चनपट चुपचाप ।।
दग्धाक्षर रो राखणो, पूरो-पूरो ख्याल ।
रतनचन्दजी नी परै हुवै अन्यथा हाल[1] ।।
नहीं करणी ले झ-ह्-र-भ-ख, ग्रन्थां की शुरुआत ।
पण स्तुतियां में खासकर, नहिं राखीजै ख्यांत ।।

—**सावधानी रो समुद्र, १८-४-५-६**

---

१. "रतनचन्द नागोर में रे चेतनियां !"—इस पद्य की रचना के बाद मुनि रतनचन्द जी ने विहार किया एवं जङ्गल में चोरों ने उनके कपड़े छीन लिए । यहाँ **नागोर में** अर्थात् नागोर शहर में—यह अर्थ है, लेकिन 'नागो-रमे' अर्थात् नङ्गा खेल रहा है—यह अर्थ भी निकलता है । इस प्रकार अनिष्ट अर्थ निकल सके—ऐसी पद्यरचना से कवि को बचना चाहिए ।

★

२४ निन्दनीय कवि

१. विद्वत्कवयः कवयः, केवलकवयस्तु केवलं कपयः ।
कुलजा या सा जाया, केवलजाया तु केवलं माया ॥

—प्रसंग-रत्नावली

विद्वान् कवि ही वास्तव में कवि हैं। नाम के कवि तो कपि अर्थात् बन्दर के तुल्य हैं। कुलीन-पत्नी ही पत्नी है, दूसरी तो केवल मायारूप हैं।

२. गणयन्ति नापशब्दं, न वृत्तभङ्गं क्षयं न चार्थस्य ।
रसिकत्वेनाकुलिता, वेश्यापतयः कुकवयश्च ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३९

जो रसिकता से आकुल होकर अपशब्द, वृत्तभङ्ग एवं अर्थक्षय को नहीं गिनते, वे या तो वेश्यापति हैं या कुकवि हैं।

३. कविरनुहरति च्छायां, पदमेकं पादमेकमर्धं वा ।
सकलप्रबन्धहर्त्रे, कविताकर्त्रे नमस्तस्मै ॥

—सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३९

कवि छाया का हरण करता है, समस्यापूर्ति आदि में एक पद अथवा आधा पद भी ग्रहण कर लेता है, किन्तु वह कवि तो नमस्कार करने के ही योग्य है, जो दूसरों के काव्य से समूचा प्रबन्ध ही उठा लेता है।

४. इनैं-बिनैं रा हर्फ ले, अपणो नाम लगाय ।
जे जग में बाजै कवि, ते तो चोर कहाय ।।
दूजारां काव्यां तणीं, नकल करो मत कोय ।
नकल करणवाला कवि, जग में नकली होय ।।

—सावधानी रो समुद्र १८।३-२२

★

२५ रसिकश्रोताओं के अभाव में कवि

१. इतरपापशतानि यदृच्छया,
वितर तानि सहे चतुरानन !
अरसिकेषु कवित्व - निवेदनं,
सिरसि मा लिख ! मा लिख ! मा लिख !!

हे ब्रह्म भगवन् ! दूसरे सैकड़ों पापों की बक्शीस भले ही कर दे, मैं सहन कर लूंगा, लेकिन अरसिकों के आगे कविता सुनाना मेरे भाग्य में कभी मत लिख ! कभी मत लिख ! कभी मत लिख !!

२. कविराजां ! खेती करो, हल स्युं राखो हेत ।
गीत जमीं में गाड द्यो, ऊपर रालो रेत ।।

—राजस्थानी दोहा

★

संसार से विरक्त होने के पश्चात् 'कवि गंग' को एक बार बादशाह अकबर ने एक समस्या "करो मिलि आश अकब्बर की" की पूर्ति के लिए कहा—कवि गंग ने तत्काल उक्त छन्द द्वारा समस्या की पूर्ति कर दी ।

एक कु छोड़ दूजे कु भजे,
रसना जु कटो उस लब्बर की ।
अब के गुनियां दुनियां कु भजे,
सिर बांधत पोट अटब्बर की ।।
कवि **गंग** तो एक गोविन्द भजे,
कछु शंक न मानत जब्बर की ।
जिनको हरि की परतीत नहीं,
सो 'करो मिलि आस अकब्बर की' ।।१।।

अकब्बर बे अकब्बर ! नरांहंदा नर ।
के होजा मेरी स्त्री, के होजा मेरा वर ।
एक हाथ में घोड़ा, और एक हाथ में खर ।
कहना है सो कह दिया, अब करना है सो कर ।।२।।

उक्त छंद को सुनते ही बादशाह क्रोधित हो उठा और उसने कवि 'गंग' को हाथी के पैरों तले कुचलवाकर

मरवा दिया। कवि के पुत्र को जब यह समाचार सुनाया गया तो उसने निम्नलिखित छन्द रचकर लोगों को चकित कर दिया।

देवन को दरबार भयो जब,
पिंगल छन्द बनाय सुनायो।
काहू सों अर्थ दियो न गयो,
तब नारद ने परसंग बतायो॥
मृत्युलोक में गंग गुनी इक,
ताहि को नाम सभा में सुनायो।
चाह भई परमेश्वर के तब,
गंग कुं लेन गणेश पठायो॥३॥

२७ प्राचीन एवं आधुनिक कवि

१. सर्वज्ञकल्पैः कविभिः पुरातनै-
रवीक्षितं वस्तु किमस्ति साम्प्रतम् ।
ऐदंयुगीनस्तु कुशाग्रधीरपि,
प्रवक्ति यत्तत्सदृशं स विस्मयः ॥

सर्वज्ञतुल्य पुराने कवियों ने न देखी हो, ऐसी वस्तु आज है ही क्या ? आज के तुच्छ-बुद्धिवाले व्यक्ति यदि उनके समान भी कुछ कह दें, तो वह आश्चर्य है ।

२. **सूर** सूर **तुलसी** शशी, उडुगण **केशवदास** ।
अब के **कवि** खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकाश ॥

३. आधुनिक कवि स्याही में पानी ज्यादा मिलाते हैं ।

★

२८

महान् कवि

१. अनुसिद्धसेनं कवयः । — **हेमचन्द्राचार्य**

कवियों में सर्वश्रेष्ठ सिद्धसेन दिवाकर हैं ।

२. कविरमरः कविरचलः, कविरभिनन्दनश्च कालिदासश्च ।
अन्ये कवयः कपयः, श्चापलमात्रं परं दधति ।।

—**सुभाषितरत्नभाण्डागार**, पृष्ठ ३६

कवि तो वास्तव में अमर, अचल, अभिनन्दन और कालिदास हैं । दूसरे कवि तो मात्र चपलता धारण करते हैं, अतः बन्दर के समान हैं ।

३. कवयति पण्डितराजे, कवयन्त्यन्येऽपि भूरिविद्वांसः ।
नृत्यति पिनाकपाणौ, नृत्यन्त्यन्येऽपि भूत बेतालाः ।।

—**सुभाषितरत्नभाण्डागार**, पृष्ठ ३६

जब 'पंडितराज-जगन्नाथ' कविता करते हैं, तब अन्य अनेक विद्वान् भी कविता करते हैं, किन्तु वे ऐसे लगते हैं मानो ! शंकर के नाचते समय अन्य भूत-बेताल नाच रहे हैं ।

२६ विभिन्न भाषाओं के महान् कवि

१. संस्कृत—**कालिदास**, हिन्दी—**तुलसीदास**,
उर्दू—**गालिब**, बंगाली—**रवीन्द्रनाथ टैगोर**,
अंग्रेजी—**शेक्सपियर**, फारसी—**शेखसादी**,
जर्मन—**गायथे**, ग्रीक—**होमर**,
इटालियन—**दांते**, फ्रांसीसी—**सुलीप्राद होमें**।

२. **प्राचीनकाल के प्रमुख हिन्दी कवि—**
चन्द्रबरदाई, कबीर, सूरदास, तुलसीदास, जायसी, केशवदास, बिहारी, भूषण आदि।

३. **आधुनिक हिन्दी के प्रमुख कवि—**
भारतेन्दु-हरिश्चन्द्र, जयशंकरप्रसाद, निराला, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी बर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर', बच्चन', नरेन्द्र शर्मा, नीरज आदि।

४. **उर्दू के प्रसिद्ध कवि—**
ग़ालिब, ज़ौक, इक़बाल, हाली, ज़ोश, जिगर आदि।

५. **इंग्लिश के प्रसिद्ध कवि—**
वेन जॉनसन, जोहन ड्राइडन, रोबर्ट ब्रिजिज, विलियम-वर्डजवर्थ, लार्ड अलफर्ड, टेनिसन, शेक्सपियर जोहन मेन्सफोल्ड आदि।

—विश्वदर्पण, पृष्ठ ६२

३० कल्पना

१. 'इतिहास' की अपेक्षा 'कल्पना' का स्थान ऊँचा है। तुलसीदासजी ने कहा है—'राम' की अपेक्षा 'नाम' बड़ा है। —**गांधी**

२. कल्पना ज्ञान से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। —**आईंस्टीन**

३. मानवता अपनी कल्पना से ही शासित होती आ रही है। —**नेपोलियन**

४. कल्पना आत्मा का नेत्र है। —**जुटंब**

५. कवित्व जैसी सुन्दरता न तो अप्सरा में है, न नन्दनवन के पारिजात में है, न पूर्णिमा के चन्द्र में है, न प्रातःकाल के दिग्मण्डल में है और न संध्या के अरुणित आकाश में है। कवित्व अंधकार में दीपक है, दरिद्र का धन है, भूख में अन्न है, प्यास में घन है, अंधे की लाठी है, थके की सवारी है, दुःख में धैर्य है और विरह में मिलन है। बुरे को भला और भले को बुरा करना इसके लिए मामूली बात है। भाषा-अभाव इसका मुख्य शत्रु था। बाद में भाषा प्रकट हुई। उसने अभाव को मारा। पुण्डरीक गणधर ने भाषा से विवाह किया। द्वादश-अङ्ग बनाए। इतने में मिथ्या नाम की कन्या प्रकट

हुई। कवित्व ने उससे विवाह किया, उसका नाम कल्पना रखा। कवि लोग इसका आदर करने लगे। जिस समय यह पति (कवित्व) के साथ बन-ठनकर निकलती है, बड़ों-बड़ों का सिर चक्कर खाने लगता है।

६. जो बिना अध्ययन के केवल कल्पना का आश्रय लेता है, उसके पांखें तो हैं, किन्तु पग नहीं है। —**जुबर्ट**

७. अपवित्र कल्पना उतनी ही बुरी है, जितना बुरा अपवित्र कर्म। —**विवेकानन्द**

३१ कल्पना के उदाहरण

१. **पान और कूंपल—**

पान पड़ंतो देख नैं, हंसी जु कूंपलियाँह।
मो बीती तो बीतसी, धीरी बप्पडियाँह।

—अनुयोगद्वार प्रमाणाधिकार के आधार पर

२. **कली और फूल—**

हंसती हुई कली से फूल ने कहा—कैसे हंस रही हो? कली—फूल जो बनने जारही हूं। फूल—फूल बनने पर माली तोड़ लेगा। कली—खैर! मिट्टी में तो मिलना ही है, किन्तु मरने से पहले किसी को सुवासित तो कर दूँगी।

३. **द्वार और झरोखा—**

मैं बड़ा हूं, मेरा सम्मान है, मेरे द्वारा ही प्रवेश-निर्गम होता है—ऐसे द्वार ने कहा। झरोखा बोला—क्या अभिमान करते हो! बड़े होने पर भी स्वामी को तुम्हारा विश्वास नहीं है। रात पड़ते ही अथवा बाहर जाते ही तुम्हें बन्द कर दिया जाता है, क्योंकि तुम चोर-डाकुओं को भी आने से नहीं रोकते, मैं स्वामिभक्त और विश्वासी

होने के कारण हरवक्त खुला रहता हूं, और स्वामी को धूप-हवा आदि देता हूं।

४. **सुई से चलनी ने कहा—**

तेरे में तो छिद्र है। सुई बोली—मेरे में सिर्फ एक छिद्र है, तेरे में तो सारे छिद्र ही छिद्र हैं, पहले उनको तो देख!

५. **टैगोर की कल्पनाएँ—**

(क) ऊपर से गिरता हुआ पानी गाता है कि जब मैं स्वतन्त्र हुआ तभी तो मधुर गान कर रहा हूं। (ऐसे ही विकार-मुक्त आत्मा आत्मिक संगीत कर सकती है।)

(ख) फूल ने फल से पूछा—तू मेरे से कितना दूर है? फल ने कहा—मैं तेरे दिल में ही छिपा हूं।
(इससे कर्म के पीछे फल निश्चित है—यह समझो!)

(ग) सत्ता ने विश्व से कहा—तू मेरा है। विश्व ने मान लिया; किन्तु प्रेम ने सत्ता को कैद करके फिर विश्व से कहा कि मैं तेरा हूं। नम्रवाणी सुनकर विश्व ने प्रेम को अपना संपूर्ण साम्राज्य सौंप दिया।
(सत्ता प्रजा के शरीर को और प्रेम प्रजा के दिल को—अधीन करता है। नौकर भी सत्ता के बजाय प्रेम से काम ज्यादा देते हैं।)

६. **गलगचिया के गद्य चित्र—**

(क) सिञ्या हूंता ही मिनख उठ्यो' र दीयै रै मूंडै ऊपर तूली मेल दी। दीयो चट्ट-चट्ट कर' र बोल्यो—बड़ा

आदमी इयाँ के करै है ? मिनख हँस' र बोल्यो—अरै तूं हो के ? मनैं अंधेरै में सूझ्यो ही कोनो !

(ख) बायरै कयो—पीपल रा पानड़ाँ, मैं आऊँ जणाँ ही थाँकै हताई हुवै के ? पानड़ा बोल्या-पूठ पाछै बात करणरी म्हांरी आदत कोनी !

(ग) तिरियाँ-मिरियाँ भरी तलाई रै दूबढ़ी आ' र गलबाथ घालली। लेराँ चिड़' र बोली—तनै कुण नूंती ही ? बीच में ही मींडको टर-टर कर' र बोल्यो—गैली, अपणायत हुवै जका नूंतै नै को अड़ीकै नीं !

(घ) मैणबत्ती कयो—डोरा मैं थारैस्यूं कत्तो मोह राखूं हूं ? सीधी ही कालजै में ठौड़ दीन्ही है। डोरो बोल्यो—म्हारी मरवण, जणाँ ही तिल-तिल बलूं हूं।

(च) मिनख कयो—उलझ्योड़ी जेवड़ी, मैं तनैं सुलझा' र थारो कत्तो उपगार करूँ हूं ! जेवड़ी बोली तूं किस्यो' क उपगारी है जको म्हारै स्यूं छानुं कोनी। कोई और नै उलझाणै खातर मन्ने सुलझातो हुसी !

(छ) पानड़ां कयो—डालाँ म्हे नहीं हूंता तो थे कत्ती अपरोगी लागती ? फूल कयो—पानडाँ, म्हे नहीं हूंता तो थे कत्ता अड़ोला लागता ? फल कयो—फूलाँ म्हे नहीं हूंता तो थाँरो जलम ही अकारथ जातो ? फूल में छिप' र बैठ्यो बीज सगलाँ री बात सुण' र बोल्यो—भोलाँ, मैं नहीं हूंतो तो थे कोई कोनी हूंता।

(ज) जगत रो दौष देखताँ-देखताँ आंख अघाईजी ही कोनी। एक दिन एक छोटो सो' क रावलियो आँख ने देखण नै आँख में बड़ग्यो। आँख रीस स्यूं लाल हुगी पण रावलियो क्याँ रो डरै हो ? आखर में आँख रोवण लागगी जद लार छोड़ी।

(झ) दही पूछ्यो—झेरणाँ, रोजीनाँ मथ-मथ' र म्हारो माजनों बिगाड़ो, कीं थारै ही पल्ले पड़ै है' क नीं ? झेरणों बोल्यो—कीड़्याँ तो कालजो रात्यूं चूंटै ही है और' स कीं देख्यो नीं !

(ञ) हँसतो-हँसतो ही फूल अचाणचूको झड़ग्यो, पानड़ां बेली-ताप कर' र पूछ्यो—आचानड़ी मौत कुँनै स्यूँ आई ? रूँख रो' र बोल्यो—कठीनैं स्यूँ बताऊँ ? को आंती रा खोज मँडै न को जाँती रा !

(ट) तूंतड़ा बोल्या—देख्यो रै छाजला थारो न्याय ! म्हांने तो फटक' र परै बगा दिया' र आं सागो छोड़णियाँ दगाबाज दाणाँ नै कालजियै री कोर कर' र राख्या है ? छाजलो कयो—डोफाँ, थाँ नै तो हूं बे कसूर मान' र ही छोड़्या है, आँ (विसवासघात्याँ) ताँईं तो चाकी' र ऊँखली त्यार है।

(ठ) कांटो बोल्यो—मनै काढ़णे तांई तो तूं नागी सुई नै ही ले भाग्यो, कीं मिनखाचारो तो राख्यां कर ? मिनख कयो—म्हारो कांई दोष ? नागै री रग नागै सूं ही दबै। सूरड़ा देव' र गनसूरड़ा पुजारा।

(ड) बाँस कयो—मिनख ! म्हारै फूल लागै न फल फर, मनैं किस्यै लालच जड़ा-मूल स्यूँ काटै है ? मिनख बोल्यो—गुणहीण री थोथी ऊँचाई म्हारै' स्यूँ कोनी देखीजै ।

(ढ) कुम्हार काचै घड़ै ने चाक स्यूं उतार' र न्यावड़ै री उकलती भोभर में ल्या नाख्यो । घड़ो रो' र बोल्यो—विधाता आ कांई करी ? कुम्हार हंस' र कयो—पणिहारी रै सिर पर इयां सीधो ही चढ़णों चावै हो के ?

(ण) नीमड़ै रो रूंख मतीरै री बेल नैं हँस' र कयो—म्हारी टोखी तो आभै नैं नावड़ै है' र तूं धूल पर ही पसर्योड़ी पड़ी है ? मतीरै री बेल बोली, पैली थारै फल कानी देख, पछै म्हारै स्यूँ बात करीजे !

—'गलगचिया' पुस्तक से

१. 'कहावतों' को 'लोकोक्ति एवं किंवदन्ती' भी कहते हैं।

२. हरएक देश में अपनी-अपनी भाषा की कहावतें होती हैं।

३. कहावतों के अन्दर सीधे-सादे शब्दों में गंभीर ज्ञान निहित होता है।

४. कई पुरानी कहावतों के निर्देशों में आज कुछ परिवर्तन भी हुआ है जैसे—(१) दीकरी ने गाय, दोरे त्यां ज़ाय। (२) दरजीनों दीकरो जीवे, त्यांसुधी सींवे। (३) घोटो बाजे घम-घम, विद्या आवे छम-छम, (४) स्पष्टवक्ता सुखी भवेत्।

३३ साहित्य

१. सहितस्य भावः साहित्यम् । —बाबू गुलाबराय

जो हित के साथ हो अथवा जिससे हित का संपादन हो, उसे **साहित्य** कहते हैं ।

२. विचारों का प्रकाशितरूप हो साहित्य है । प्रकाशन हृदय से, स्पर्श से, मुस्कान से, वाणी से एवं मौन से होता है । —**जमनालाल जैन**

३. साहित्य दो प्रकार का होता है—सामयिक और शाश्वत ।

४. वहो काव्य और वही साहित्य चिरंजीवी रहेगा, जिसे लोग सुगमता से पाकर पचा सकेंगे । —**महात्मा गांधी**

५. तात्त्विक-साहित्य को सरस एवं सरल-भाषा में लिखना बहुत कठिन है । —**धनमुनि**

६. साहित्यसंगीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः,
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्,
तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ।
—**भर्तृहरि-नीतिशत १२**

जो मनुष्य साहित्य एवं संगीत की कला से शून्य है, वह बिना सींग-पूंछ का साक्षात् पशु है । जो तृण-घास खाये बिना ही

जीता है, वह पशुओं का सौभाग्य है अन्यथा उन बेचारों को खाने के लिए तृण कहां से मिलते !

७. अंधकार है वहां, जहां आदित्य नहीं है,
मुर्दा है वह देश, जहां साहित्य नहीं है ।

—**मैथिलीशरण गुप्त**

८. साहित्यपाथोनिधिरत्नलब्ध्यै:,
केषां कवीनां न करप्रसार: ।
लभ्येत वा नेति निजस्य भाग्यं,
उद्योगिनो नो जहति प्रयत्नम् ॥

—**सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ ३६**

साहित्य-रत्नाकर के रत्नों की प्राप्ति के लिए कौन कवि हाथ नहीं पसारते ? मिलना न मिलना तो भाग्य की बात है, लेकिन उद्यमी प्रयत्न करना नहीं छोड़ते ।

९. **इंग्लिश के कुछ प्रसिद्ध साहित्यकार**—

शेक्सपियर, मिल्टन, शैले, कीटस्, वर्डसवर्थ, ब्राउनिंग, वर्नार्डशा, कोलरिज, थामसहार्डी, चार्लस डिक्कज, स्काट, आदि ।

—**विश्वदर्पण**

इतिहास

१. इतिहासः पुरावृत्तम् । —हैमकोष० २।१७३
पुराने वृत्तान्त का नाम इतिहास है ।

२. वास्तव में इतिहास क्या है ? परिवर्तन का एक लेखामात्र । —जवाहरलाल नेहरू

३. इतिहास केवल श्रुतकथाओं का लेखामात्र है ।
— कार्लाइल

४. मानव-इतिहास प्रधानरूप से विचारों का इतिहास है ।
— एच० जी० वेल्स

५. इतिहास-पुराणानि वेदानां पञ्चमो वेदः ।
इतिहास-पुराण पाँचवें वेद के तुल्य हैं ।

६. ऐतिहासिक घटनाएँ राष्ट्र की अमूल्यनिधि बनकर भावी-पीढ़ियों को युग-युग तक प्रेरणा और चेतना देती रहती हैं ।

७. जीवनकथाओं के अतिरिक्त और कोई सत्य—इतिहास नहीं है । —एमर्सन

८. संपूर्ण इतिहास असत्य है । —राबर्ट वालपोल

९. इतिहासज्ञ एक ऐसा भविष्यवक्ता है, जो भूत को देखता रहता है । —श्लीग्लैल

३५ संयोजक

१. अमन्त्रमक्षरं नास्ति, नास्ति मूलमनौषधम्।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभः ।।

—**शुक्रनीति**

मन्त्र के बिना कोई अक्षर नहीं, औषधि के बिना कोई जड़ी नहीं और आदमी कोई अयोग्य नहीं, लेकिन उन्हें यथास्थान जोड़नेवाला व्यक्ति दुर्लभ है ।

२. काचं मणिं काञ्चनमेकसूत्रे,
ग्रथ्नासि बाले ! तव को विवेकः ।
महामतिः पाणिनिरेकसूत्रे,
श्वानं युवानं मघवानमेति ।।

हे बाले ! कांच, मणि और कांचन को एक सूत्र में क्यों पिरो रही हो ! ऐसे एक विद्वान के पूछने पर उस स्त्री ने कहा—मुझे क्या टोक रहे हो ? महाबुद्धिमान **पाणिनि** ऋषि ने श्वान, युवान एवं मघवान को भी एक सूत्र में पिरो दिया ।

३. कनकभूषण संग्रहणोचितो,
यदि मणिस्त्रपुणि विनियुज्यते ।
न च विरौति न चाप्यवभाषते,
भवति योजयितुर्वचनीयता ।।

—हितोपदेश २।७२

सोने के आभूषण में जोड़ने योग्य मणि यदि शीशा आदि धातु के आभूषण में लगाया जाय, तो न वह मधुर ध्वनि करता है और न हि सुशोभित होता है, प्रत्युत संयोजक की निन्दा होती है ।

३६ लेखक

१. यदि तुम लेखक बनना चाहते हो तो लिखो !

—इपिक्टेटस

२. विचारो अधिक, बोलो अत्यल्प और लिखो उससे भी थोड़ा ।

—इटालियन लोकोक्ति

३. फालतू चीज़ मत लिखो ! जिसमें पूरा मन लगे, पूरा रस मिले और पूरी डुबकी आये, वही लिखो ! लिखकर सम्पादक की दृष्टि से पढ़ो और कमियाँ सुधार दो ! कुछ दिन बाद फिर पढ़ो और नई बातें सूझें, उन्हें उसमें बढ़ादो ! पढ़ते समय सूझे की यह कुछ नहीं है, तो उसे तुरत फाड़कर फैंक दो !

४. पंचमजार्ज ने २० पृष्ठ का एक भाषण लिखा । सेक्रेटरी उसे पढ़ता गया और जार्ज कम करता गया । शेष पांच पृष्ठ रखे ! जार्ज का वह भाषण सर्वोत्कृष्ट माना गया ।

५. जो लेखक व वक्ता अपने भावों को छोटा करना नहीं जानता वह कभी सफल नहीं होता ।

—एमर्सन

६. लिखते वे लोग हैं, जिनके अंदर कुछ दर्द है, अनुराग है, विचार है । जिन्होंने धन, भोग और विलास को लक्ष्य बना लिया, वे क्या लिखेंगे !

—प्रेमचन्द

७. महान् लेखक अपने पाठक का मित्र व शुभचिन्तक होता है। —**मैकाले**

८. लेखकों की मसी शहीदों के रक्तबिन्दुओं से अधिक पवित्र है। —**हजरत मुहम्मद**

९. लेखक वे चीजें प्रायः कम ही लिखते हैं, जो वे सोचते हैं। वे केवल वे ही चीजें लिखते हैं, जो दूसरे सोचते हैं या सोचते होंगे। —**एल्वर्ट हु गार्ड**

१०. विश्वविख्यात लेखक होमर और सुकरात बिल्कुल अनपढ़ थे। उनकी सभी रचनाएँ सुनकर अन्य लोगों ने लिखी थीं। —**पैबन्द पृष्ठ १९**

११. **ग्रन्थ को संक्षिप्त करनेवाले अनूठे लेखक—**

सुप्रतिष्ठित नगर के राजा जितशत्रु की सभा में चार ऋषि आये (१) अत्रि—आयुर्वेद के ज्ञाता (२) बृहस्पति—नीतिशास्त्र के वेत्ता (३) कपिल—धर्मशास्त्र के विशेषज्ञ (४) पञ्चाल—अध्यात्मज्ञानी।

ये सब अपने अपने विषय के ग्रंथ बनाकर लाये थे। प्रत्येक ग्रंथ में एक-एक लाख श्लोक थे। समयाभाव के कारण राजा ने उन ग्रंथों को छोटे-रूप में बनाने को कहा। ऋषि उन्हें ज्यों-ज्यों संक्षिप्त करते गये, राजा अधिक संक्षिप्त करने की प्रार्थना करता गया। अन्त में वे ग्रंथ चार पद्यों के रूप में प्रस्तुत किये गये। पद्य निम्नलिखित थे—

(१) **जीर्णे भोजनमात्रेयः,**

हज़म हो जाने के बाद भोजन करना—अत्रि ऋषि ने यह आयुर्वेद का सार कहा।

(२) **न्याय्या वृत्तिर्बृहस्पतिः,**

मनुष्य की प्रत्येक प्रवृत्ति न्याययुक्त हो—बृहस्पति ऋषि ने यह नीतिशास्त्र का तत्त्व बतलाया।

(३) **कपिलः प्राणिनां रक्षा,**

प्राणिमात्र की रक्षा करनी चाहिए—कपिल मुनि ने यह धर्मशास्त्र का निचोड़ सुनाया।

(४) **पाञ्चालः साम्यभावना।**

प्राणिमात्र पर समभाव रखना चाहिये—पञ्चाल ऋषि ने यह अध्यात्मवाद का मूल मन्त्र दिखलाया।

(राजा एवं राज्यसभा चकित)

१२. **इंग्लिश के प्रसिद्ध भारतीय लेखक—**

स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टेगोर, सरोजिनी नायडू, चारूदत्त, जवाहरलाल नेहरू, हरीन्द्रनाथ चटर्जी, अरविन्द घोष, मुल्कराज आनन्द, डाक्टर राधाकृष्णन्।

— विश्वदर्पण

१३. **बुरे लेखक—**

(क) बुरे लेखक वे हैं, जो अपने असक्त विचारों की अभिव्यक्ति दूसरों की सुन्दरभाषा के माध्यम से करते हैं।

—जी० सी० लिचटेनवर्ग

(ख) अपनी पुस्तकों की प्रशंसा करनेवाले लेखक अपने बच्चों की प्रशंसा करनेवाली माता के समान है। **—डिजरायली**

३७ लेखनी

१. लेखनी मस्तिष्क की जिह्वा है। — **सर्वेन्टिस**

२. दुनियां में दो तरह की ताकते हैं—तलवार और कलम। आखिर तलवार हमेशा कलम से शिकस्त खाती है।

—**नेपोलियन**

३. रीडिंग मेक्स ए फुल मैन,
स्पीकिंग ए परफेक्ट मैन,
राइटिंग एन एग्जेक्ट मैन ॥ —**बेकन**

अध्ययन मनुष्य को पूर्ण बनाता है, भाषण परिपूर्ण बनाता है और लेखन प्रामाणिक बनाता है।

४. लिखावट को देखकर व्यक्ति का स्वभाव जाना जाता है।

— **आत्मविकास पृष्ठ ३०६**

५. विज्ञान के अनुसार लिखते समय शरीर की पांच सौ नसें संयुक्त होती हैं। — **नेपोलियन**

६. लेखनी पुस्तिका रामा, परहस्ते गता गता।
कदाचित् पुनरायाति, नष्टा भ्रष्टा च चुम्बिता ॥

—**सुभाषितरत्नभाण्डागार, पृष्ठ १६४**

कलम-पुस्तक-स्त्री—ये तीनों चीज़ें, दूसरे के हाथों में जाने के बाद प्रायः चली ही जाती हैं। कदाचित् वापस आती हैं तो क्रमशः नष्ट, भ्रष्ट एवं चुंबित होकर आती हैं।

●

अध्ययन

१. मस्तिष्क के लिए अध्ययन की उतनी ही आवश्यकता है। शरीर को जितनी व्यायाम की। —**जे. एफ. एडीसन**

२. प्रकृति की अपेक्षा अध्ययन द्वारा अधिक व्यक्ति महान् बने हैं। —**सिसरो**

३. इब्राहीमलिंकन, बर्नार्डशा व टैगोर ने स्कूल में विशेष शिक्षा नहीं पाई। चार्ल्सडारविन सर विलियम स्काट, व न्यूटन स्कूलों में नंबरी भोंदू थे। नेपोलियन अपनी कक्षा के छात्रों में ४२ वें नंबर का था। इन सभी ने पुस्तकों के अध्ययन से ही योग्यता प्राप्त की थी।

४. नेपोलियन व सिकंदर लड़ाई में भी पुस्तकें पढ़ते रहते थे।

५. अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति **रूजवेल्ट** ह्वाइटहाउस के आवासकाल में मध्याह्न तक आगंतुकों से पाँच-पाँच मिनट मिला करते थे। लेकिन पढ़ने के इतने प्रेमी थे कि एक व्यक्ति मिलकर जाता एवं जब तक दूसरा व्यक्ति मिलने के लिए नहीं आता, उस अत्यल्प-अन्तरकाल में वे पुस्तक पढ़ने लग जाते। इस प्रकार उन्होंने अनेकानेक पुस्तकें पढ़ डालीं।

६. चीन के अध्येता **संचिग** नींद न आजाय—अतः अपनी चोटी को एक लम्बी रस्सी द्वारा छत से बाँधकर पढ़ा करते थे। **—हिन्दुस्तान, जनवरी ७, १९६८**

७. पढ़ने से सस्ता कोई मनोरञ्जन नहीं और न कोई खुशी उतनी स्थायी। **—लेडी मोंटेग्यू**

८. अध्ययन हमें आनन्द और योग्यता देता है एवं अलंकृत करता है। **—फ्रांसिस बेकन**

९. मनुष्य को प्रतिदिन पढ़ना चाहिए, पढ़े चाहे पंद्रह मिनिट ही। प्रतिदिन १५ मिनट पढ़ा जाय एवं प्रतिमिनिट ३०० शब्द की रफ्तार से पढ़ा जाय तो प्रतिमास १ लाख ३५ हजार शब्दों की एक पुस्तक (लगभग २२५ पृष्ठ की पढ़ी जा सकती है। **—धनमुनि**

१०. तेज पढ़िये ! इसका अभ्यास करानेवाली अमेरिका में ४०० प्रयोगशालायें हैं। विशेषज्ञों का कथन है कि साधारण व्यक्ति प्रतिमिनिट २५० शब्द पढ़ले तो अच्छा ही है, किन्तु ४०० शब्द प्रतिमिनिट पढ़ने से आनन्द आता है। बुद्धिमान को हजार से १८०० तक का अभ्यास करना चाहिए। **—आपका व्यक्तित्व, पृष्ठ १६४**

११. अध्ययनकाले व्यासङ्ग-पारिप्लवमन्यमनस्कतां च न भजेत्। **—नीतिवाक्यामृत ११।१८**

विद्याध्ययन के समय शारीरिक व मानसिक चपलता तथा चित्तवृत्ति को अन्यत्र ले जाना—ऐसे कार्य नहीं करने चाहिए।

स्वाध्याय

१. सुष्ठु आ-मर्यादया अधीयते इति स्वाध्यायः ।

—स्थानांग ५।३।४६५ टीका

सत्‌शास्त्र को मर्यादासहित पढ़ने का नाम स्वाध्याय है ।

२. तपोहि स्वाध्यायः । —तैत्तिरीय आरण्यक २।१४

स्वाध्याय स्वयं एक तप है ।

३. सज्झायं कुव्वंतो, पंचेदियसंवुडो तिगुत्तो य,
हवदि य एगग्गमणो, विणएण समाहिओ भिक्खू ।

—मूलाचार ५।२१३

पञ्चेन्द्रियसंवृत, त्रिगुप्तिगुप्त एवं विनयसमाधियुक्त मुनि स्वाध्याय करता हुआ एकाग्रमन हो जाता है ।

४. सज्झायसज्झाणरयस्स ताइणो,
अपावभावस्स तवे रयस्स ।
विसुज्झइ जंसि मलं पुरे कडं,
समीरियं रुप्पमलं व जोइणो ।।

—दशवैकालिक ८।६३

जैसे अग्नि द्वारा तपाये हुए सोने-चांदी का मैल दूर हो जाता है, वैसे ही स्वाध्याय-सदध्यान में लीन, षट्कायरक्षक, शुद्ध-अन्तःकरण एवं तपस्या में रक्त साधु का पूर्वसंचित कर्म-मैल नष्ट हो जाता हैं ।

५. नवि अत्थि नवि य होई, सज्झाएण समं तवोकम्मं ।

—**चन्द्रप्रज्ञप्ति ८९**

स्वाध्याय के समान न तो कोई तपस्या है और न हीं भविष्य में हो सकती ।

६. बहुभवे संचियं खलु, सज्झाएण खणे खवेई ।

—**चन्द्रप्रज्ञप्ति ९१**

अनेक भावों में संचित दुष्कर्म को स्वाध्याय द्वारा व्यक्ति क्षण भर में खपा देता है ।

७. सज्झाए वा····सव्वदुक्खविमोक्खणे ।

—**उत्तराध्यन २६।१०**

स्वाध्याय सब दुःखों से मुक्त करनेवाला है ।

८. सज्झाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ ।

—**उत्तराध्ययन २९।१८**

स्वाध्याय से व्यक्ति ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करता है ।

९. स्वाध्यायादिष्टदेवता—संप्रयोगः ।

—**पातंजलयोग दर्शन २।४४**

स्वाध्याय से इष्टदेव का साक्षात्कार होता है ।

१०. स्वाध्याय के अभाव में अनेक आगम विच्छिन्न हो गये । और जो विद्यमान हैं, वह स्वाध्याय की ही देन है ।

११. स्वाध्याय के लिए तीन बातें आवश्यक हैं—
एकाग्रता, नियमितता और विषयोपरति—निर्विकारिता ।

१२. सज्झाए पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—वायणा, पडिपुच्छणा, परियट्टणा, अणुप्पेहा, धम्मकहा ।

—**भगवती २५।७।८०२**

स्वाध्याय पाँच प्रकार का है—(१) वाचना, (२) पृच्छना, (३) परिवर्तना (४) अनुप्रेक्षा (५) धर्मकथा ।

१३. सज्झायरए स भिक्खू । **—दशवैकालिक १०।६**

जो स्वाध्याय में अनुरक्त हैं, वह साधु हैं ।

१४. स्वाध्यायान्मा प्रमदः ! **—तैत्तिरीयोपनिषद् १।११।१**

स्वाध्याय करने में प्रमाद मत करो !

४० अनाध्याय

१. शिष्टागमनेऽनाध्यायः ।

शिष्ट पुरुषों के आने पर कुछ समय अध्ययन-अध्यापन बन्द कर देना चाहिए ।

२. पडवा पाटी भांजणी र बीज पाटी सांमणी ।

—राजस्थानी कहावत

३. अस्वाध्याय के समय शास्त्र न पढ़ना चाहिए। जैन-शास्त्रों में ३४ अस्वाध्याय कहे हैं ।

(देखो, ज्ञानप्रकाश पुञ्ज २, प्रश्न ३०)

★

४१ अधिक अध्ययन

१. अत्यधिक अध्ययन भी शरीर की क्लान्ति है।

—बाइबिल

२. किताबें बुद्धि का कैदखाना है। अधिक किताबें पढ़ लेने पर स्वतन्त्र विचार करने की शक्ति गायब हो जाती है।

३. अनन्तशास्त्रं बहुला च विद्या,
अल्पश्चकालो बहुविघ्नता च।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं,
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्॥

—पञ्चतंत्र कथामुख ६

शास्त्र अनन्त हैं, विद्याएं अनेक हैं, समय थोड़ा है और विघ्न बहुत हैं। अतः हंस की तरह पानी से दूधवत् शास्त्रों का सार तत्त्व ग्रहण करके उसकी उपासना में लग जाना चाहिए।

४. ग्रन्थमभ्यस्य मेधावी, ज्ञान-विज्ञानतत्त्वतः।
पलालमिव धान्यार्थी, त्यजेद् ग्रंथमशेषतः॥

—ब्रह्मबिन्दूपनिषद्

ग्रन्थ को पढ़कर बुद्धिमानों को उसके तत्त्व रूप धान्य को ले लेना चाहिए एवं शेष पलालरूप ग्रंथ को छोड़ देना चाहिए।

५. स्थाणुरयं भारहारः किलाभूद्,
अधीत्य वेदं न जानाति योऽर्थम्। —निरुक्त १।१८

जो वेद को पढ़कर उसके अर्थ को नहीं जानता, वह बोझ से लदे हुए स्थाणु-स्तंभ के समान है।

दूसरा कोष्ठक

१ पुस्तक-शास्त्र

१. यस्माद् रागद्वेषोद्धतचित्तान् समनुशास्ति सद्धर्मे।
संत्रायते च दुःखा-च्छास्त्रमिति निरुच्यते सद्भिः॥
—**प्रशमरति १८७**

राग-द्वेष से उद्धत चित्तवालों को धर्म में अनुशासित करता है एवं उन्हें दुःख से बचाता है, अतएव वह सत्पुरुषों द्वारा 'शास्त्र' कहलाता है (शास्त्र शब्द में दो धातुएँ मिली हैं—शाशु और त्रेङ्—इनका अर्थ क्रमशः अनुशासन करना और रक्षा करना है।)

२. श्रोत्रस्य भूषणं शास्त्रम्। —**सुभाषितरत्नमंजूषा**

शास्त्र सुनना ही कान का आभूषण है।

३. आलोचनागोचरे ह्यर्थे शास्त्रं तृतीयं लोचनं पुरुषाणाम्।
—**नीतिवाक्यामृत ५।३५**

आलोचना योग्य पदार्थों को जानने के लिए शास्त्र मनुष्य का तीसरा नेत्र है।

४. अनेकसंशयोच्छेदि, परोक्षार्थस्य दर्शकम्।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं, यस्य नास्त्यन्ध एव सः॥
—**हितोपदेश-प्रास्ताविका १०**

शास्त्र अनेक संशयों का नाश करनेवाला है, छिपे हुए अर्थ को

दिखानेवाला है एवं सारे जगत का नेत्र है, जिसके पास शास्त्र-रूप नेत्र नहीं है, वह अंधा है।

५. बुक्स आर अवर बेस्ट फ्रेन्ड्स। —**टपर**
किताबें हमारे सर्वश्रेष्ठ मित्र हैं।

६. पुस्तकें ज्ञानियों की समाधि हैं—किसी में ऋषभ, अरिष्टनेमि एवं महावीर हैं तो किसी में राम, कृष्ण और युधिष्ठिर। किसी में वाल्मीकि, सूरदास, तुलसीदास एवं कबीर हैं तो किसी में ईसा, मूसा, और हजरतमुहम्मद। उन्हें खोलते ही वे महापुरुष उठकर हमारे से बोलने लग जाते हैं। —**एक विचारक**

७. मनुष्य ने जो कुछ किया, सोचा और पाया, वह सब पुस्तकों के जादूभरे पृष्ठों में सुरक्षित है। —**कार्लाइल**

८. विचारों के युद्ध में पुस्तकें ही अस्त्र हैं। —**बर्नार्डशा**

९. पुस्तक ही एकमात्र अमरत्व है। —**रूपसकोयेट**

१०. पुस्तकों का संकलन ही आज के युग का वास्तविक विद्यालय है। —**कार्लाइल**

११. बिना किताबों का कमरा बिना आत्मा का शरीर है।

१२. पुराना कोट पहनो और नई किताब खरीदो! —**थोरो**

१३. तुम्हारे पास दो रुपये हों तो एक की रोटी खरीदो और दूसरे से अच्छी पुस्तक। रोटी 'जीवन' देती है और अच्छी पुस्तक 'जीवनकला'। —**जीवनसौरभ**

१४. मैं नरक में उन पुस्तकों का स्वागत करूंगा, क्योंकि उनमें वह शक्ति है कि वे जहाँ होंगी, वहाँ अपने आप स्वर्ग बन जायगा। —**महात्मा तिलक**

२ पुस्तकों का चयन

१. आज पढ़ना सब जानते हैं, लेकिन क्या पढ़ना है ? यह कोई नहीं जानता । —बर्नार्डशा

२. कुछ किताबें चखने के लिए हैं, कुछ निगल जाने के लिए हैं और कुछ थोड़ी सी-चबाये जाने एवं हजम किए जाने के लिए हैं । —बेकन

३. बुरी पुस्तकों का पढ़ना जहर के समान है । —टाल्सटाय

४. बुरी किताबों से बढ़कर कोई डाकू नहीं है ।
—इटली कहावत

५. अच्छी किताब वह है, जो आशा से खोली जाय और लाभ से बन्द की जाय । —एमो० ब्रॉसन अल्काट

६. जो पुस्तकें हमें अधिक विचारने को बाध्य करती हैं, वे ही हमारी सच्ची सहायक हैं । —ओडोर पार्कर

३ विभिन्न दर्शनों के धर्मग्रन्थ

जैनों के—मुख्य धर्म-ग्रन्थ आचाराङ्ग - सूत्रकृताङ्ग-समवायाङ्ग-भगवती आदि बारह अङ्ग हैं।

बौद्धों के—विनयपिटक-सुत्तपिटक-अभिधम्मपिटक, ऐसे तीन पिटक-ग्रन्थ हैं। प्रथम में साधुओं के नियम हैं, दूसरे में बौद्धसिद्धान्त हैं—इसके पांच निकाय (दीर्घ-निकाय आदि) हैं। तीसरे में धार्मिक क्रिया-कलापों का वर्णन है।

वैदिकों के—वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, श्रुति स्मृति महाभारत, रामायण एवं पुराण आदि हैं।

यहूदियों के—पुरानी बाइबल, (OLD TESTAMENT) के तोरा, नवी, नविश्ते—ये तीनों भाग एवं तालमुद है।

ईसाइयों का—बाइबल, मरकूस, मत्ती, लूका तथा यूहन्ना के सुसमाचार—इन चार भागों में विभक्त है।

ताओ तथा कन्फ्यूसियस धर्मवाले चीनियों का—ताओ-तेहकिंग (ताओ उपनिषद्) हैं।

मुसलमानों के—कुरानशरीफ एवं हदीसशरीफ-बुखारी-मुस्लिम आदि हैं।

सिखों के—गुरुग्रंथसाहेब, जपुजीसाहेब, एवं सुखमणि-साहेब हैं।

पारसियों के—अवेस्ता हैं। इसके यस्न, वीस्परत्, यस्त, बेंदीदाद आदि अनेक भाग हैं।

आर्यसमाजियों का—मुख्यग्रंथ सत्यार्थप्रकाश है।

—विभिन्न दर्शनों की धार्मिक पुस्तकों से

४ **प्रामाणिक ग्रन्थ**

१ प्रमाणं परमं श्रुतिः। —**मनुस्मृति २।१३**

धर्म को जानने की इच्छा करनेवालों के लिए श्रुति-वेद ही प्रमाण है।

२. तमेव सच्चं निस्संकं, जं जिणेहिं पवेइयं।

—**आचारांग ५।५**

वही बात सत्य एवं निःसंदेह है, जो 'जिन' भगवान् ने कही है।

३. देश-कालानुरूपं धर्मं कथयन्ति तीर्थंकराः।

—**उत्तराध्ययन चूर्णि २३**

तीर्थंकर देश और काल के अनुरूप धर्म का उपदेश करते हैं।

४. अत्थं भासंति अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं।
सासणस्स हियट्ठाए, तओ सुत्तं पवत्तइ॥

—**आवश्यक-निर्युक्ति ९२**

अरिहन्तदेव अर्थरूप वाणी बोलते हैं और निपुण गणधर उस वाणी को सूत्ररूप से गूंथते हैं। तत्पश्चात् शासन के हितार्थ सूत्र का प्रवर्तन होता है।

५. सुत्तं गणहररइयं, तहेव पत्तेयबुद्धरइयं च।
सुयकेवलिणा रइयं अभिन्नदसपुव्विणा रइयं॥

—**दशाश्रुतस्कन्धवृत्ति**

गणधर, प्रत्येकबुद्धि, श्रुतकेवली एवं अभिन्नदशपूर्वधारी का रचा हुआ ग्रन्थ 'सूत्र' कहलाता है ।[1]

६. अत्थधरो तु पमाणं, तित्थगरमुहुग्गतो तु सो जम्हा ।

—**निशीथभाष्य २२**

सूत्रधर (शब्दपाठी) की अपेक्षा अर्थधर (सूत्ररहस्य का ज्ञाता) को प्रमाण मानना चाहिए, क्योंकि अर्थ साक्षात् तीर्थंकरों की वाणी से निःसृत है ।

७. अत्थेण य वंजिज्जइ, सुत्तं तम्हा उ सो बलवं ।

—**व्यवहारभाष्य ४।१०१**

सूत्र (मूल शब्दपाठ) अर्थ (व्याख्या) से ही व्यक्त होता है अतः अर्थ सूत्र से बलवान (महत्त्वपूर्ण) है ।

●

---

१ **सूत्र के तीन अर्थ**—सुत्त-जिससे अर्थ की सूचना की जाए । सूत्र अर्थात् सुप्त-सोए हुए की तरह, इसे टीका-भाष्यादि द्वारा जगाया जाता है । सूत्र अर्थात् धागा जिसमें अर्थरत्न पिरोये जाएँ ।

◆ सूत्र के तीन भेद— संज्ञासूत्र, कारकसूत्र तथा प्रकरणसूत्र । संज्ञासूत्र में अर्थ का सामान्य निर्देश होता है । जैसे "जे छेए से सागारियं (मेहुणं) न सेवेइ" । कारकसूत्र में क्रियाकलाप का वर्णन होता है । जैसे—"अहाकम्मं भुंजमाणे आउवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ बंधति" । प्रकरणसूत्र में नमिप्रव्रज्या एवं केशी-गौतम आदिवत् प्रसंग वर्णित होते हैं ।

५ युक्ति एवं न्याय से ग्रंथों की प्रामाणिकता

१. अपि पौरुषमादेयं, शास्त्रं चेद् युक्तिबोधकम् ।
अन्यत्त्वार्षमपि त्याज्यं, भाव्यं न्याय्येकसेविना ।।

—योगवाशिष्ठ २।१८।२

सामान्यपुरुष द्वारा कहा हुआ शास्त्र भी यदि युक्ति-युक्त सत्य का बोध देनेवाला हो तो वह ग्रहण कर लेना चाहिये । अन्य इसके विरुद्ध चाहे ऋषिप्रोक्त भी क्यों न हो, त्याज्य है ।

२. पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु ।
युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ।।

—हरिभद्र-अन्ययोग० ३८

न तो मुझे महावीर का पक्षपात है और न कपिल आदि मतों से द्वेष है । जिसका वचन युक्तिसंगत है, उसी के वचन को ग्रहण करना चाहिए ।

३. केवलं शास्त्रमाश्रित्य, न कर्तव्यो विनिर्णयः,
युक्तिहीने विचारे तु, धर्महानिः प्रजायते ।

—बृहस्पति

केवल शास्त्र का आश्रय लेकर निर्णय नहीं कर लेना चाहिये,

साथ-साथ युक्ति भी आवश्यक है, क्योंकि युक्तिहीन विचारों से हानि होती है।

४. जुत्तं अजुत्तं जोगं न पमाणमिति बाहुकेण अरहता इसिणा बुइयं। —**ऋषिभाषित १४**

युक्त बात भी यदि अयुक्त विचार के साथ है तो वह प्रमाण-स्वरूप नहीं है—ऐसे बाहुक-आर्हतर्षि ने कहा है।

●

६ पुस्तक-प्रकाशन

१. युनेस्को के अनुसार दुनियां में प्रतिवर्ष लगभग चार लाख पुस्तकें छपती हैं, उसमें तीन-चौथाई पुस्तकें तो १२ देशों में छपती हैं और १७ प्रतिशत जापान को छोड़कर शेष एशियाई देशों में छपती हैं। भारत में १९६४-६५ में सिर्फ २१ हजार २६५ नई पुस्तकें छपीं।

—**नवभारत टाइम्स, २९ नवम्बर, १९६५**

२. विश्व में प्रथम पुस्तक १४४५ में छपी।

३. आकार की दृष्टि से सबसे बड़ी पुस्तक ब्रिटेन की 'एटलस' जो हॉलैण्ड में बनी, ५ फुट साढ़े ९ इंच ऊँची और ३ फुट ढाई इंच चौड़ी है।

४. विश्व में सबसे मोटी पुस्तक चीनी शब्दकोष है, इसके ५०२० भाग हैं। प्रत्येक भाग में १७० पृष्ठ हैं। यह सन् १६०० में छपा था।

—**विश्वदर्पण, पृष्ठ २२-२३**

५. सबसे छोटी पुस्तक एगरगेस्ट का 'कविता संग्रह $\frac{१}{८}$ वर्ग इंच के आकार की। —**पैबन्द, पृष्ठ १९**

६. सबसे मंहगी पुस्तक अमीर अफगानीस्तान को फारस के शाह की दी हुई 'कुरान' की प्रति है, वह सोने के पत्र में

३९८ रत्नों से जड़ी हुई है। उसका मूल्य तीन हजार पौंड है, उसमें १६८ मोती, १३२ लालें, व १०९ हीरे हैं।

—नवभारत टाइम्स १ मई, १९५५

७. **संसार की सबसे बड़ी पुस्तक का प्रकाशन—**

कैम्ब्रिज, १२ मई (१९६८) दुनियां की आज तक की सबसे बड़ी किताब कैम्ब्रिजशायर के विस्बेच स्थित वाल्डिग तथा मैनसैल लिमिटेड छापेखाने में छप रही है।
यह पुस्तक जब छप कर तैयार होगी तब इसका वजन होगा—डेढ़ टन ! यह पुस्तक ६१० जिल्दों में होगी। प्रत्येक जिल्द होगी—७०४ पृष्ठों की। इस पुस्तक की दो हजार प्रतियां छप रही हैं। इन प्रतियों के छपने में दो साल लगेंगे।

यह पुस्तक है अमरीकी कांग्रेस के पुस्तकालयों की सूची। अमरीका के दो हजार पुस्तकालयों की तमाम पुस्तकों की सूची इसमें दी जाएगी।

ब्रिटिश-छापाखाना इस पुस्तक को छापने के लिए ५० लाख पौण्ड ले रहा है।

—नवभारतटाइम्स, १३ मई, ११६८

८. **समाचारपत्र—**

१९६६ के अन्त में भारत में कुल १०९७७ समाचारपत्र और नियतकालिक पत्र-पत्रिकाएँ थीं, जबकि १९६५ के अन्त में इनकी संख्या १००८५ थीं। हिन्दी में सबसे अधिक १९३१ पत्र-पत्रिकाएँ थीं। इसके बाद अंग्रेजी में

१८४३, उर्दू में ७८५, बंगला में ५५० और गुजराती में ५१४ थीं।

दैनिक समाचार पत्र २० भाषाओं में और अन्य नियतकालिक पत्र-पत्रिकाएँ ४६ भाषाओं में प्रकाशित हो रही थीं। दैनिक समाचारपत्र १५ प्रमुख भाषाओं के अलावा चीनी, पुर्तगाली, कोंकणी, लुशाई (मिजो) और मणिपुरी में छप रहे थे। नियतकालिक पत्र-पत्रिकाएँ भारतीय भाषाओं के अलावा आठ विदेशी भाषाओं, (नेपाली, अरबी, फ्रांसीसी, तिब्बती, बर्मी, इन्दोनेशियाई, पश्तो और फारसी) में भी छप रही थीं।

प्रारम्भिक अनुमानों के अनुसार १९६६ में समाचार पत्रों और पत्रिकाओं की कुल प्रचार-संख्या २ करोड़ १६ लाख ९० हजार थीं। दैनिक समाचारपत्रों में सबसे पुराना गुजराती का 'बम्बईसमाचार' है, जो १८२२ में स्थापित हुआ एवं हिन्दी का सबसे पुराना समाचार-पत्र कलकत्ते का 'विश्वमित्र' है जो १९१७ में स्थापित हुआ था। **—नवभारत टाइम्स, ६ अगस्त १९६७**

प्रेसरजिस्ट्रार की रिपोर्ट के आधार पर

९. भारत में सर्वप्रथम समाचारपत्र २९ जनवरी सन् १७३१ को कलकत्ता में छपा था।

—विश्वदर्पण, पृष्ठ-३८

७ विश्व के प्रख्यात पुस्तकालय

१. क्षेत्र नाम एवं संख्या—

क्षेत्र	नाम	संख्या
१ मास्को (रूस)	—लेनिन लायब्रेरी	—१,१०,००,०००
२ लेनिनग्राड (रूस)	—साल्टिकोवश्चेड्रिन-पब्लिक लाइब्रेरी	—६०,००,०००
३ लन्दन (इंगलैड)	—ब्रिटिश म्युजियम	—५०,००,०००
४ पेरिस (फ्रांस)	—निविलियो थेक नेशनल	—५०,००,०००
५ न्यूयार्क-(संयुक्तराज्य अमरीका)	—न्यूयार्क पब्लिक लाइब्रेरी	—५०,००,०००
६ फ्लोरेस (संयुक्तराज्य अमरीका)	—बिबलियोटे का नेजिओनेल सेन्ट्रल	—३४,००,०००
७ नेपुल्स (इटली),	—बिबालियोटेक नेजिओनेल सेन्ट्रल	—१३,३०,०००
८ लिपजिग (जर्मनी)	—बुचेरी ड्यूसे	—२०,००,०००
९ वियेना (आस्ट्रिया)	—नेशनल बिबलियोथेक	—१६,००,०००

१० मैड्रिड (स्पेन)	—बिबिलयोरेका-नेशनल	—१५,००,०००
११ एम्सटरडस (नीदरलैण्ड)	—युनिवर्सिटी लाइब्रेरी	—१५,००,०००
१२ टोकियो (जापान)	—इम्पीरियल युर्निवर्सिटी-लाइब्रेरी	—१०,००,०००

—**हिन्दुस्तान, २१ जुलाई, १९६३ (रामरतनशर्मा)**

●

८ अनुभव

१. पढ़ाई की अपेक्षा अनुभव का विशेष महत्त्व है। डॉक्टर-वैद्य, न्यायाधीश, वकील, ज्योतिषी, अध्यापक आदि वे ही अच्छा काम कर सकते हैं, जो अधिक अनुभवी होते हैं।

२. अनुभव की पाठशाला का अभ्यास किताब पढ़ने की अपेक्षा ज्यादा उपयोगी होता है। —**महात्मा गांधी**

३. ज्ञान अनुभव से अलग है, अनुभव के लिए चारित्र चाहिए। —**समर्थगुरु-रामदास**

४. जो मनुष्य न तो अपने अनुभव का लाभ उठाता और न दूसरों के अनुभव का, वह मूर्ख है।

—**जवाहरलाल नेहरू**

५. यदि दो घटनाओं की अनुभूति एक ही साथ हो तो जब भी एक प्रकार के संस्कार उत्तेजित होते हैं। दूसरे भी होने लगते हैं।—बचपन में एक कुमारी के कन्धों पर चोट लगी। दाई ने उससे सांत्वना के साथ कामजागृति की बातें भी कीं। फिर जब भी काम जागृत होता, कंधों में दर्द होने लग जाता।

- एक मनुष्य के पेट में रात को तीन बजे मरणान्त दर्द

हुआ। भय के संस्कारों से रात को तीन बजे नींद उड़ने लगी। —सरलमनोविज्ञान

अनुभवी वैद्य-डॉक्टर-वकील आदि—

१. एक स्त्री के प्रसव-समय बच्चे का हाथ बाहर निकल आया। सारे चिन्तित हो गये। एक अनुभवी वैद्य ने उसके हाथ से बत्ती का स्पर्श किया, बस, बच्चे ने अपना हाथ वापस खींच लिया।

२. **युरोप** में एक लड़की नींद के समय भयभीत हुआ करती थी। अनुभवीडाक्टर ने पूछा—क्या दीखता है? लड़की ने कहा—सिंह। हंसकर डाक्टर ने समझाया कि वह तो मुझसे भी मिलने रोज आया करता है। तुम डरा मत करो, उसके साथ प्रेम किया करो! लड़की रात को ज्योंही सोई, उसे सिंह दीखने लगा। वह उससे बाहें पसारकर प्रेम की चेष्टा करने लगी। फिर सदा के लिए उसका डरना बन्द हो गया।

३. सेठ का पेशाब बन्द हो गया। वैद्य ने तरबूज के छिलके घोटकर पिलाए, ठीक हो गया। पुनः बन्द हुआ। वही प्रयोग किया, लेकिन लाभ नहीं हुआ। अनुभवी ने गर्म करके पिलाने को कहा कारण सर्दी का मौसम था।

४. **मावली** (उदयपुर) में **प्रभुलालजी वैद्य** की पुत्री के पेट में असह्य दर्द था अतः खिला-पिलाकर उसे दवा से बेहोश करके सुलाना पड़ता था। वैद्यजी ने अन्त में वमन द्वारा उसके पेट से लाल सर्प-सर्पिणी निकाले।

५. दिल्ली में डॉक्टर **जोशी** ने तीन लाख रुपये लेकर अजमेर निवासी एक धनिक के मस्तक से जीवित मेढक निकाला। रोगी विलायतों तक भटक आया था।

६. **कोटले के नबाब** ने पर्दे के अन्दर बिल्ली के पैर के डोरी बाँधकर उसका एक किनारा यति जी को पकड़ाकर पूछा—देखिये बेगम साहिबा की नाड़ी क्या कहती है ? यतिजी ने कहा—चूहा खाऊँ ! चूहा खाऊँ !

७. **सरपुरा** गाँव में **हरजीमलजी गोलछा** के यहां देशनोक-निवासी रमजॉन तेली ने चाँदों की बाती से घी का दीप जलाकर उसके काजल से संग्रहणी तथा लाल मकोड़ों के रावलियों को उबालकर उस पानी से पेट का दर्द मिटा दिया। (रमजान छः मास पूर्व का खाया हुआ बता देता था।)

८. **अषाढ़ा गाँव** में एक **स्वामी आनन्दपुरी** हैं। वह रोगी के हाथ में तिनका पकड़ा कर नाड़ी देखते हैं तथा उससे रोग का निदान करते हैं।

९. सिरसा-निवासी श्रावक **श्री भगवानदासजी पारख** नाड़ी के आधार पर कितना दिन जीएगा—यह बता देते थे। **श्री केवल मुनि** की नाड़ी देखकर उन्होंने यह कहा था कि इनकी उत्कृष्ट स्थिति सोलह प्रहर है—बात बिल्कुल ठीक निकली।

१०. एक मुसाफिर के हाथ पर रेल की खिड़की गिर पड़ी।

साधारण चोट आयी। उसने रेल्वे कंपनी पर मुकदमा किया, कंपनी के वकील "फिरोजशाह मेहता" थे। मुसाफिर ने हाथ को पट्टा लगा रखा था एवं कहता था कि मेरा हाथ ऊँचा नहीं उठ रहा है। वकील ने मजिस्ट्रेट के सामने बहस करते हुए उसको धीरे से पूछा—भाई! चोट लगने से पहले तुम्हारा हाथ कैसे रहता था? मुसाफिर ने बातों में भूलकर कह दिया कि ऐसे रहता था! कहते-कहते हाथ भी उठा कर दिखा दिया। बस, केस हार गया।

११. एक व्यापारी कपड़े की भारी गठड़ी टाँड पर रख रहा था। भावीवश उसके हाथ ऊपर के ऊपर ही रह गये। अनेक उपचार किये गये, सब निष्फल हुये। विवाह के प्रसंग में स्त्रियों के बीच एक अनुभवी ने उसकी धोती की लांग खींची। बस, खींचते ही हाथ ठिकाने आ गये।

११. **एक बहन** उठ नहीं सकती थी, एक अनुभवी ने उसके पास अचानक एक सांप छोड़ा, भयभीत बहन तत्काल उठ खड़ी हुई।

१३. एक धनिकपुत्र ने कहीं रुई का बहुत बड़ा ढेर देखा। पागल होकर कहने लगा—कौन धुनेगा? कौन कातेगा? कौन बुनेगा? अनुभवी योगी ने कहा—वह तो जल गई। दिमाग ठीक हो गया।

९ अनुभवहीन

१. सावण रै जायोड़े (गधै) नें हर्यो ही हर्यो दीसै तथा
सावण रै आंधै नें हर्यो ही हर्यो दीसै।

२. पढ्यांहां पण कढ्या कोनी, भण्याहां पण गुण्या कोनी !

—राजस्थानी कहावतें

३. सन् १८८६ में जब बम्बई के अन्दर मरी का रोग चला था, तब बहुत से लोग भागकर गाँवों में चले गए थे। उस वक्त बड़ी-बड़ी सेठानियां भी पंखा हिलाती हुई सिघड़ियों के पास बैठती थीं और उनके जेंटिलमैन पति पाकशास्त्र का सहारा लेकर उनकी मदद करते थे। मूँग की दाल के बड़े बनाने की विधि में लिखा था कि आधा सेर मूँग की दाल को चार घंटा पानी में भिगो कर शिला पर पीसना। फिर उसमें नमक दो तोला, हींग दो बाल, धनिया-जीरा आदि का संभार चार तोला, इमली दो तोला, हल्दी आधा तोला, गुड़ दो तोला, कोथमीर-अदरख-हरी मिर्च आदि चार तोला, नारियल

का खमन एक तोला, गर्म मसाला एक तोला, मोण तीन तोला—इन सबमें एक पाव पानी मिलाकर फिर तेल उबलने पर दाल का बड़ा उसमें डालना।

सेठानी को विधि का पूरा ज्ञान न होने से सेठजी किताब देखकर बोल रहे थे एवं सेठानी डिब्बों में से सामान निकाल रही थीं। लेकिन तराजू न होने के कारण अनुमान से काम लिया गया।

नमक दो तोले के बदले चार तोला, हींग दो बाल की जगह सवा पाँच तोला एवं पानी पाव के बदले डेढ़ छटांक ही लिया गया। कोथमीर-मिर्च आदि मिले नहीं और मोण डालना भूल से रह गया। इधर तेल पूरा गर्म हो ही नहीं पाया था, सेठानी ने उतावल करके ज्योंही उसमें बड़े डाले, तेल को कड़ाही फेन से भर गई। अब बड़े तले गये या नहीं—यह जानना कठिन हो गया। नौकर ने कहा—इसमें नींबू का रस डालिये। सेठजी ने जल्दी से उठकर नींबू निचोए तो तेल के छींटे उछलकर सेठानी के मुंह पर लगे और "हाय रे जल गई-जल गई" पुकारती हुई वह दूर भाग गई। अब सेठ ने खुद बैठकर बड़े उतारे लेकिन किसकी ताकत कि वह उन्हें खा सके।

(यह सब अनुभवहीनता का ही परिणाम है।)

४. जाके पाँव न फटी विवाई, सो क्या जाने पीर पराई।
—**हिन्दी कहावत**

५. मैं पियां कूं ऐसी प्यारी,
पिया मैंनुं देखे दिन च सौ-सौ बारो,
मैं हंसा पिया मुख मोड़े,
गया सियाला आया हाड़, पिया मैंनुं भुल्या बारंबार।
—**पंजाबी कहावत**

६. **अद्भुत अनुभवी**—

एक आदमी इलाज करवाता-करवाता हार गया लेकिन सिर दर्द नहीं मिटा। एक भील ने जड़ी घिसकर दो-दो तीन-तीन बूंदें उसके कानों में डालीं। थोड़ी देर बाद जोर से छींकें आई और कई गोल-गोल कोड़े उसके नाक में से निकले। उसी दिन से सिर-दर्द मिट गया।
—**मेवाड़ की घटना**

◆ एक गर्भवती स्त्री को छींक आई और गर्भस्थित बच्चे की मुट्ठी खुली। वापस बन्द होते समय माता की एक खास नाड़ी मुट्ठी के बीच में आगई। माता को भयंकर पीड़ा होने लगी। एवं थोड़ी देर में वह बेहोश होगई। मृत समझकर घरवाले रोने-पीटने लगे। एक अनुभवी पड़ौसी ने सारा हाल सुना और उस स्त्री के कान के पास जाकर बंदूक का धड़ाका किया। बस डर से बच्चे की मुट्ठी पुनः खुली एवं नाड़ी मूलरूप में आ गई और स्त्री बच गई। —**हाड़ोतीप्रदेश की घटना**

★

१० परीक्षा

१. विरुद्धनानायुक्तिप्राबल्यदौर्बल्यावधारणाय प्रवर्तमानो-विचारः परीक्षा । —न्यायदीपिका, पृष्ठ ८

स्वविरुद्ध विविधयुक्तियों की प्रबलता की दुर्बलता का निर्णय करने के लिये जो विचार की प्रवृत्ति होती है उसका नाम परीक्षा है ।

२. परीक्षा मनुष्य को मापने का एक थर्मामीटर है ।

—धनमुनि

३. परीक्षा गुणों को अवगुण और सुन्दर को असुन्दर बनानेवाली वस्तु है । प्रेम इससे उल्टा है । —प्रेमचन्द

४. व्यक्ति के अन्दर भी उतना ही झांकना चाहिए, जितना उसके ऊपर । —चेस्टर फील्ड

५. रत्न बिना रगड़ा खाये नहीं चमकता, मनुष्य बिना परीक्षा के पूर्ण नहीं होता । —चीनी कहावत

●

११ परीक्षा आवश्यक

१. न लोगेस्सेसणं चरे। —आचारांग ४।१

गड्डरी-प्रवाह दुनियां के अनुसार आचरण मत करो !

२ कोई कितना भी महान् क्यों न हो, अंधों की तरह उसके पीछे मत चलो। —विवेकानन्द

३. दमड़ीरी हांडी भी बजा र लेणी।

—राजस्थानी कहावत

४. जौहरशनास देखलें, जौहर कमाल के।
कागज पर रख दिया, कलेजा निकाल के। —उर्दू शेर

५. हरदरख शिन्द तिला नेस्त। —पारसी कहावत

६. ऑल दैट गिल्टर्स इज नॉट गोल्ड। —अंग्रेजी कहावत

चमकनेवाला सब सोना नहीं होता। (अर्थ—५-६)

७. पीलुं एटलुं सोनुं नहिं, ऊजलुं एटलुं दूध नहिं,
काला एटला भूत नहिं, जनोई एटला ब्राह्मण नहिं।

—गुजराती कहावत

८. काला-काला सब जामुन नहीं,
धोला - धोला सब दूध नहीं।

—हिन्दी कहावत

परीक्षाविधि

१. यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते,
निर्घर्षण - च्छेदन - ताप-ताड़नैः ।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते,
त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा ।।

—चाणक्यनीति ५।२

घसना, कटना, तपाना, पीटना— इन चारों प्रकार से जैसे सोने की परीक्षा की जाती है, वैसे ही दान, शील, गुण और कर्म (आचारण)—इन चारों से पुरुष की परीक्षा की जाती है ।

२. बालः पश्यति लिङ्गं, मध्यमबुद्धिर्विचारयति वृत्तम् ।
आगमतत्त्वं तु बुधः, परीक्षते सर्वयत्नेन ।।

– हरिभद्रसूरि

अज्ञानी मात्र बाह्यचिन्ह देखता है । मध्यमबुद्धिवाला आचरण पर विचार करता है और ज्ञानी व्यक्ति प्रयत्नों द्वारा सैद्धान्तिक तत्त्वों की परीक्षा करता है ।

३. राह पया जानीए जां बाह पया ।

४. लाल गोदड़ियां बिच ही पछानें जाँदे हन् ।

—पंजाबी कहावतें

◆ पूतां रा पग पालणैं पिछाणी जै ।

—राजस्थानी कहावत

५. ज्ञानीपुरुष महात्माओं की पहचान आँख से ही कर लेते हैं, क्योंकि रुपयों की तरह हीरों-पन्नों को बजाने की जरूरत नहीं पड़ती, उनकी परीक्षा नज़र से ही होती है।

६. सित्थेण दोणपागं, कविं च एक्काए गाहाए।

—**अनुयोगद्वार ११६**

एक कण से द्रोणभर पाक की और एक गाथा से कवि की परीक्षा हो जाती है।

७ संत शबद्दां परखिए, विपत पड़े घर-नार।
शूरा तबही जाणिये, रण बाजे तलवार॥

—**राजस्थानी दोहा**

८. जानीयात् प्रेषणे भृत्यान्, बान्धवान् व्यसनागमे।
मित्रं चापत्तिकाले तु, भार्यां च विभव-क्षये॥

—**चाणक्यनीति** १।११

काम के लिए भेजते समय सेवकों की, दुःख आने पर स्वजनों की, आपत्ति के समय मित्रों की और धन-क्षय होने पर स्त्री की परीक्षा करनी चाहिये।

९. शस्त्र की पहचान धार से होती है, वस्त्र की पहचान तार से होती है। इन्सान का धैर्य कैसा है? इसकी पहचान जीत से नहीं, हार से होती है।

—**स्वरसाधना से**

१०. प्राचीनकाल में सत्य-शील की जाँच के लिये कई प्रकार की परीक्षाएँ की जाती थीं। जैसे—(१) शीशी उबालकर

पिलाना, (२) अग्नि में तपाकर लोह का फाला या गोला हाथ या जीभ पर रखना, (३) खाली तुला पर चढ़ाना, (४) प्रज्वलित अग्निकुंड में डालना आदि-आदि। (इसको धीज भी कहा जाता था।)

- राज्य किसे दिया जाय—इस निर्णय के लिये पांच दिव्य (हथनी-घोड़ा-छत्र-चामर-कृष्णा गौ) प्रकट किये जाते थे। आजकल विधानसभा-लोकसभा आदि में शक्ति-परीक्षार्थ सदस्यों के मत लिये जाते हैं।

१३ परीक्षा का समय

१. हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ, विशुद्धिः श्यामिकापि वा।

—रघुवंश १।१०

सोने की विशुद्धि एवं मिलावट का पता अग्नि में लगता है, ऐसे ही सत्पुरुषों की परीक्षा भी विपत्ति में ही होती है।

२. अत्यधिक विरोधी परिस्थितियों में ही मनुष्य की परीक्षा होती है। —गांधी

३. मन्त्रिणां भिन्नसंधाने, भिषजां सन्निपातके।
कर्मणि व्यज्यते प्रज्ञा, सुस्थे को वा न पण्डितः॥

—हितोपदेश ३।१२१

संधि-भंग होने के समय मन्त्रियों की एवं सन्निपात के समय वैद्यों की बुद्धि का पता लगता है। स्वास्थ दशा में तो हरएक बुद्धिमान बन बैठता है।

४. काकः कृष्णः पिकः कृष्णः, को भेदः पिक-काकयोः।
वसन्तसमये प्राप्ते, काकः, काकः पिकः पिकः॥

काक और कोकिल दोनों काले हैं। उनके भेद की परीक्षा वसन्त ऋतु आने पर हो जाती है।

५. मणिर्लुठति पादाग्रे, काचः शिरसि धार्यते ।
क्रय-विक्रयवेलायां, काचः काचो, मणिः मणिः ।।

—**चाणक्यनीति १५।६**

चाहे मणि पैरों की जूतियों में और कांच मुकुट में लगा लिया जाय, किन्तु क्रय-विक्रय के समय परीक्षक की नज़रों में कांच-कांच और मणि-मणि के रूप में प्रकट हो जाता है ।

६. फूटी हांडी आवाज स्यूं पिछाणीजै ।

—**राजस्थानी कहावत**

१४ दर्शन

१. दर्शन का अर्थ ज्ञान, मनन, चिन्तन, विचार, कल्पना या गंभीरविषय हो सकता है, किन्तु वास्तविक अर्थ तत्त्व-ज्ञान है।

—**वैदिक विचार-विमर्शन-प्रकरण-५**

२. दर्शन का सीधा अर्थ है देखना या दृष्टि। उसका तात्त्विक अर्थ है—सत्य का साक्षात्कार या सत्य का सामीप्य।

—**आचार्य तुलसी**

३. दर्शन दृष्टि है, धर्म उसको देखने का प्रयास। दर्शन साध्य का निश्चय है, धर्म उसको पाने का प्रयास। पर आज दर्शन का अर्थ आग्रह और धर्म का अर्थ रूढ़ि हो रहा है।

—**आचार्य तुलसी**

४. सारा दर्शन दो शब्दों में है—जीवित रहने के लिए खाओ और अनावश्यक वस्तु से बचो।

—**इपिक्टेट्स**

५. कहां से? किधर? कैसे? और क्यों?—ये प्रश्न संपूर्ण दर्शन को आत्मसात् कर लेते हैं।

—**जूबर्ट**

६. जो कुछ सत्य है, उसका अन्वेषण और जो उचित है, उसकी कार्य में परिणति—दर्शन के ये दो महान् ध्येय हैं।

—**वाल्टेयर**

७. एक शताब्दी का दर्शन ही दूसरी शताब्दी का सामान्य-ज्ञान होता है। —**हेनरीबार्ड बीचर**

८. दर्शन के अभाव में धर्म केवल अंधविश्वास मात्र रह जाता है और धर्म का बहिष्कार करने पर दर्शन केवल शुष्क नास्तिकवाद बना रहता है। —**विवेकानन्द**

दर्शन से लाभ—

१. दंसणेण य सद्दहे। —**उत्तराध्ययन २८-३५**

जीव दर्शन से तत्त्वों की श्रद्धा करता है।

२. दर्शन जीवन के सभी भागों में उपयोगी है—कहीं वह उत्तेजक है, कहीं अवरोधक है और कहीं व्यापक है। वह सत्प्रवृत्ति का उत्तेजक है, असत्प्रवृत्ति का अवरोधक है। और सदाचार की दिशा में व्यापक है।

—**आचार्य तुलसी**

३. थोड़ी दार्शनिकता मनुष्य को नास्तिकता की ओर झुकाती है, किन्तु उसकी गहनता मुक्ति की ओर ले जाती है। —**बेकन**

दर्शन के भेद—

१. दुविहे दंसणे पण्णत्ते, तं जहा—सम्मदंसणे चेव, मिच्छा-दंसणे चेव। —**स्थानांग-२।१**

दर्शन दो प्रकार का कहा है—सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन।

२. बौद्धं नैयायिकं सांख्यं, जैनं वैशेषिकं तथा।
जैमनीयं च नामानि, दर्शनानामिमान्यऽहो !

—**षड्दर्शनसमुच्चय ३**

भारतीय आस्तिकदर्शन मुख्यतया छः हैं—(१) बौद्ध, (२)नैयायिक, (३)सांख्य, (४)जैन, (५)वैशेषिक, (६)जैमनीय (नास्तिकदर्शन इनमें नहीं गिना गया है)

दर्शनों का उद्‌भव—

१. बौद्धानामृजुसूत्रतो मतमभूद् वेदान्तिनां संग्रहात्,
सांख्यानां तत एव नैगमनयाद् योगश्च वैशेषिकः।
शब्दं ब्रह्मविदोऽपि शब्दनयतः सर्वैर्नयैर्गुम्फिता,
जैनी दृष्टिरितीह सारतरता प्रत्यक्षमुद्वीक्ष्यते।

ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा से बौद्ध, संग्रहनय से वेदान्त-सांख्य, नैगमनय से नैयायिक—वैशेषिक और शब्दनय की अपेक्षा से ब्रह्मविदों का शब्द-दर्शन उत्पन्न हुआ, किन्तु जैन-दर्शन सभी नयों से गुम्फित है अतः इसकी श्रेष्ठता प्रत्यक्ष देखी जारही है।

दर्शनों के प्रमाण—

१. चार्वाकोऽध्यक्षमेकं सुगतकणभुजौ सानुमानं सशाब्दं,
तद्द्वैतं पारमर्षः सहितमुपमया तत्त्रयं चाक्षपादः।
अर्थापत्त्या प्रभाकृद् वदति तदखिलं मन्यते भट्ट एतत्,
साभावं द्वे प्रमाणे जिनपतिसमये स्पष्टतोऽस्पष्टतश्च॥

चार्वाक एक प्रत्यक्ष प्रमाण को मानते हैं। बौद्ध और सांख्य तीन प्रमाणों को स्वीकार करते हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द (आगम)। पारमर्षः—वैशेषिक दो प्रमाणों को ग्रहण करते हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान। नैयायिकों ने पांच प्रमाण मान्य किये हैं—प्रत्यक्ष- अनुमान, शब्द, उपमा और अर्थापत्ति। भट्टानुयायि-जैमनीयों के पांच तो पूर्ववत् एवं एक अभाव प्रमाण—ऐसे छः प्रमाण हैं तथा जैनों के दो प्रमाण हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष।

दर्शनकार—

१. भारतीय दर्शनकारों में मुख्य जैसे—महावीर, बुद्ध, कपिल, गौतम, कणाद एवं जैमनीय आदि हुए हैं। वैसे ही चीन में लाओत्से और कन्फ्यूसियस, मिश्र में प्रोफिरी, रेमिसस, इंगलैंड में बेकन-जान, स्टुअर्ट, स्पेन्सर, वर्कले, ग्रीस में साक्रेटोस-प्लेटो-पीथागोरस; जर्मनी में कान्ट और फ्रांस में कामट् आदि माने गये हैं।

—**वैदिकविचार-विमर्शन, प्रकरण ५**

२. दाढ़ी रखने मात्र से कोई दार्शनिक नहीं हो सकता।

—**एक विचारक**

१५ आस्तिक

१. अस्ति पुण्यं पापमिति मतिर्यस्य स आस्तिकः।

—सिद्धान्तकौमुदी

पुन्य है, पाप है—ऐसी जिसकी मान्यता हो, वह आस्तिक है।

२. अत्थि मे आया उववाइए.......

से आयावादी, लोयावादी, कम्मवादी, किरियादी।

—आचारांग १।१।१

यह मेरी आत्मा औपपातिक है, कर्मानुसार पुनर्जन्म ग्रहण करती है—आत्मा के पुर्नजन्म-सम्बन्धी सिद्धान्त को स्वीकार करनेवाला ही वस्तुतः आत्मवादी, लोकवादी एवं क्रियावादी है अर्थात् आस्तिक है।

१६ नास्तिक

१. नास्तित पुण्यं पापमिति मतिर्यस्य स नास्तिकः ।

—सिद्धान्तकौमुदी

न पुण्य है, न पाप है—ऐसी जिसकी मान्यता हो, वह नास्तिक है ।

२. नास्तिको वेदनिन्दकः । —मनुस्मृति २।११

वेद की निन्दा करनेवाला नास्तिक होता है । (यहाँ वेद का अर्थ ज्ञान समझना चाहिए ।)

३. पुराने जमाने में ईश्वर पर विश्वास नहीं करनेवाला नास्तिक होता था और नये धर्म में स्वयं पर विश्वास न करनेवाला नास्तिक कहलाता है ।

—विवेकानन्द

४. परमात्मा को न माने वह नास्तिक है, पर जो श्रद्धाहीन है, वह महानास्तिक है । —आचार्य तुलसी

५. वेदना और भय के समय कोई प्रकृति नास्तिक नहीं रहती । —एच० मोर

६. रात्रि के समय एक नास्तिक ईश्वर में आधा विश्वास करने लग जाता है । —यंग

७. सर्व प्रथम मैं ईश्वर से भय मानता हूं और फिर नास्तिक से । —शेखसादी

८. नास्तिकता का मूल कारण आज की पढ़ाई—

पुरानी पढ़ाई में तीनों दशाओं का विचार होता था, आज केवल जागृतदशा का होता है। पुरानी पढ़ाई में दृश्यद्रष्टा दोनों का विचार था, आज मात्र दृश्य का है। पुरानी पढ़ाई में आत्मा और शरीर दोनों भिन्न समझाये जाते थे, आज आत्मा का लक्ष्य प्रायः नहीं है तथा पुरानी पढ़ाई में विनय की मुख्यता थी आज विनय की कमी होती जा रही है—इन सभी कारणों से नास्तिकता बढ़ रही है।

●

१७ नास्तिकों का कथन

१. नत्थि पुण्णे व पावे वा, नत्थि लोए इओवरे।
सरीरस्स विणासेणं, विणासो होइ देहिणो ॥

— सूत्रकृतांग-१।१२

न पुण्य है, न पाप है और न इस दृश्यमान-लोक के अतिरिक्त कोई संसार है। शरीर का नाश होते ही जीव का नाश हो जाता है।

२. लोकयिता वदन्त्येवं, नास्ति जीवो न निर्वृतिः।
धर्माधर्मौ न विद्येते, न फलं पुण्यपापयोः।

—षड्दर्शन ८०

नास्तिक लोग कहते हैं कि न जीव है, न मोक्ष है, न धर्म है, न अधर्म है और न ही पुण्य-पाप का कुछ फल मिलता है।

४. यावज्जीवेत् सुखं जीवेद्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः।

नास्तिकों का कहना है कि जहाँ तक जीना हो, सुख से जीना चाहिये। ऋण करके भी घी पीते रहना चाहिए, क्योंकि भस्मीभूत यह शरीर दुबारा नहीं मिलता।

१. तहियाणं तु भावाणं, सब्भावे उवएसणं ।
भावेण सद्दहंतस्स सम्मत्तं तु वियाहियं ॥

— **उत्तराध्ययन २८।१५**

स्वयं या उपदेश से जीव-अजीव आदि सद्भावों में आन्तरिक हार्दिक श्रद्धा का होना **सम्यक्त्व-सम्यग्दर्शन** है ।

२. यथार्थतत्त्वश्रद्धा सम्यक्त्वम् ।

— **जैनसिद्धान्तदीपिका ५।३**

जीवादि तत्त्वों की यथार्थश्रद्धा करना **सम्यग्दर्शन** है ।

३. या देवे देवताबुद्धि गुरौ च गुरुतामतिः ।
धर्मे च धर्मधी : शुद्धा, सम्यक्श्रद्धानमुच्यते ॥

—**योगशास्त्र** २।२

वीतरागदेव में देव-बुद्धि का होना, सद्गुरु में गुरु-बुद्धि का होना और सच्चे धर्म में धर्म-बुद्धि का होना **सच्ची श्रद्धा** कहलाती है ।

४. अरिहंतो महदेवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ।
जिणपन्नत्तं तत्तं, इय सम्मत्तं मए गहियं ॥

—**आवश्यक ४**

अरिहन्त भगवान मेरे देव हैं, यावज्जीवन शुद्धसाधु मेरे गुरु हैं, जिनेश्वर देव का बताया हुआ तत्त्व मेरा धर्म है—यह सम्यक्त्वं मैंने ग्रहण किया है ।

५. मिथ्यात्वत्यागतः शुद्धं, सम्यक्त्वं जायतेऽङ्गिनाम् ।

—अध्यात्मसार

मिथ्यात्व का त्याग करने से प्राणियों को शुद्ध सम्यक्त्व मिलता है ।

सम्यकत्व के भेद—

६. दुविहे सम्मदंसणे पण्णत्ते, तं जहा—निस्सगसम्मदंसणे चेव, अभिगमसम्मदंसणे चेव । —स्थानांग २।१।७०

सम्यग्दर्शन दो प्रकार का कहा है—स्वाभाविक-अपने-आप उत्पन्न होनेवाला और उपदेश से उत्पन्न होनेवाला ।

७. तच्च स्यादौपशमिकं, सास्वादनमथापरम् ।
क्षायोपशमिकं वेद्यं, क्षायिकं चेति पञ्चधा ॥

सम्यक्त्व पांच प्रकार का है—(१) औपशमिक, (२) सास्वादन, (३) क्षायोपशमिक, (४) वेदक, (५) क्षायिक ।

८. निसग्गुवएसरुई, अणारुई सुत्त—बीयरुईमेव ।
अभिगम-वित्थाररुई, किरिया-संखेव-धम्मरुई ॥

—उत्तराध्ययन २८।१६

सम्यक्त्व के दश भेद भी हैं—(१) निसर्गरुचि, (२) उपदेशरुचि (२) आज्ञारुचि, (४) सूत्ररुचि, (५) बीजरुचि, (६) अभिगम-रुचि, (७) विस्ताररुचि, (८) क्रियारुचि, (९) संक्षेपरुचि, (१०) धर्मरुचि ।[1]

---

१ सम्यक्त्व के अन्य भेदों का वर्णन देखिए **'मोक्ष प्रकाश पुंज ८'** में ।

९. समकत्व के लक्षण, भूषण, दूषण और विशुद्धि—

शमसंवेगनिर्वेदानुऽकम्पास्तिक्यलक्षणैः,
लक्षणैः पञ्चभिः सम्यक्, सम्यक्त्वमुपलक्ष्यते ।

—योगशास्त्र २।१५

(१) शम—क्रोध आदि कषाय की शान्ति, (२) संवेग—मोक्ष कीअभिलाषा, (३)निर्वेद—संसार से विरक्ति, (४)अनुकम्पा—दया, (५) आस्तिकता—आत्मा - कर्म - परलोक आदि पर विश्वास—ये पांच सम्यक्त्व के लक्षण हैं।

१०. परमत्थसंथवो वा, सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि ।
वावन्नकुदंसणवज्जणा य, सम्मत्तसद्दहणा ।।

—उत्तराध्ययन २८।२८

(१) जीवादि पदार्थों का सही ज्ञान, (२) तत्त्वज्ञानी गुरुओं की सेवा, (३) शिथिलाचारी एवं (४) कुदर्शनियों से बचते रहना—ये ४ सम्यक्त्व के श्रद्धान हैं।

११. स्थैर्यं प्रभावना[1] भक्तिः कौशलं जिनशासने ।
तीर्थसेवा च पञ्चापि, भूषणानि प्रचक्षते ।।

—योगशास्त्र २।१६

(१) धर्म में स्थिरता, (२) धर्म की प्रभावना—व्याख्यानादि द्वारा, (३) जिनशासन की भक्ति, (४)कुशलता—अज्ञानियों को धर्म समझाने में निपुणता, (५) चार तीर्थ की निर्वद्य सेवा—ये पांच सम्यक्त्व के भूषण हैं।

---

१. पावयणी धम्मकही, वाई निमित्तओ तवस्सी य ।
विज्जा सिद्धो य कवी, अट्ठेव पभावगा भणिया ।।

—योगशास्त्र १२।१६ टीका

१२. शङ्का काङ्क्षा विचिकित्सा मिथ्यादृष्टिप्रशंसनम् ।
तत्संस्तवश्च पञ्चापि, सम्यक्त्वं दूषयन्त्यमी ॥

—योगशास्त्र २।१७

(१) शङ्का-तत्त्वों में संदेह, (२) कांक्षा-अन्यमत की अभिलाषा, (३) विचिकित्सा-धर्मफल में संदेह, (४) मिथ्यादृष्टि एवं व्रतभ्रष्टों की प्रशंसा, (५) उन का संस्तव, प्रेम अथवा संसर्ग—(ये पांच सम्यक्त्व को दूषित करनेवाले हैं— सम्यक्त्व के अतिचार-दोष हैं ।)

१३. चउवीसत्थएणं दंसणविसोहिं जणयई ।

—उत्तराध्ययन २९।९

चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति करने से आत्मा सम्यक्त्व को विशेषरूप से शुद्ध करता है ।

१६ सम्यक्त्व की दुर्लभता

१. संबुज्झह किं न बुज्झह, संबोहि खलु पेच्च दुल्लहा ।
णो हु वणंमति राइओ, णो सुलभं पुणरावि जीवियं ।।
— सूत्रकृतांग २।१।१

समझो ! तुम क्यों नहीं समझते, आगे सद्बोधि सम्यक्त्व का मिलना कठिन है । बीती हुई रातें वापस नहीं आतीं । मनुष्य जन्म बार-बार सुलभ नहीं है ।

२. ईओ विद्धंसमाणस्स, पुणो संबोहि दुल्लहा ।
—सूत्रकृतांग १५।१८

यहां से भ्रष्ट हो जाने के बाद पुनः सम्यग्दर्शन का मिलना कठिन है ।

३. णो सुलभं बोहियं च आहियं । **—सूत्रकृतांग २।३।१९**

सम्यग् ज्ञान-दर्शनरूप बोधि का मिलना सुलभ नहीं है ।

४. मिच्छादंसणरत्ता, सनियाणा कण्हलेसमोगाढा ।
इय जे मरंति जीवा, तेसिं पुण दुल्लहा बोही ।।
—उत्तराध्ययन ३६।२५२

जो जीव मिथ्यादर्शन में अनुरक्त हैं, निदानसहित कर्म करनेवाले हैं और कृष्णलेश्या से युक्त हैं, उनको मृत्यु के पश्चात् अन्य जन्म में बोधि-सम्यक्त्व की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है ।

●

२० सम्यक्त्व से लाभ

१. दंसणसंपन्नयाएणं भवमिच्छत्तछेयणं करेई।

—उत्तराध्ययन २९।६०

सम्यग्दर्शन की संपन्नता से आत्मा भवभ्रमण के हेतुभूत मिथ्यात्व का छेदन करता है।

२. सम्यक्त्वेन हि युक्तस्य, ध्रुवं निर्वाणसंगमः।

—तत्त्वामृत

सम्यक्त्वयुक्त आत्मा को अवश्य मुक्ति प्राप्त होती है।

३. अंतोमुहुत्तमित्तंपि, फासियं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं
तेसिं अवड्ढपुग्गल-परियट्टो चेव संसारो।

—धर्मसंग्रह अधिकार २।२१ टीका

जो जीव अन्तर्मुहूर्त मात्र भी सम्यक्त्व का स्पर्श कर लेते हैं, उन के केवल अर्द्ध पुद्गल—परावर्तन संसार शेष रह जाता है।

२१ सम्यक्त्व का महत्त्व

१. दंसणमूलो धम्मो । —दर्शनपाहुड, २।२

धर्म का मूल दर्शन (सम्यक् श्रद्धा) है ।

२. मूलं धर्मस्य सम्यक्त्वम् । —हिंगुल प्रकरण

सम्यक्त्व ही धर्म का मूल है ।

३. कनीनिकेव नेत्रस्य, कुसुमस्येव सौरभम् ।
सम्यक्त्वमुच्यते सारं, सर्वेषां धर्मकर्मणाम् ॥

आँख की कीकी एवं फूलों की सुरभिवत् सभी धर्मकर्मों का सार सम्यक्त्व हैं ।

४. सम्यक्त्व मूलानि महाफलानि । —धर्मपरीक्षा

यथाख्यातचारित्र - केवलज्ञानप्राप्ति आदि महाफलों का मूल सम्यक्त्व ही है ।

५. सम्यक्त्वसहिता एव, शुद्धा दानादिका क्रिया: ।
—अध्यात्मसार

दानादि क्रियाएँ सम्यक्त्व होने से ही पूर्णतया शुद्ध होती है ।

पात्रं चारित्रवित्तस्य, सम्यक्त्वं श्लाघ्यते न कै: ।
—सूक्तमुक्तावलि

चारित्ररूप धन को रखने के लिये सम्यक्त्व ही एक पात्र है । उसकी प्रशंसा कौन नहीं करता !

६. नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं, दंसणे उ भइयव्वं।
सम्मत्तचरित्ताइं, जुगवं पुव्वं तु सम्मत्तं।
नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विना न हुंति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं।

—उत्तराध्ययन २८।२९-३०

सम्यक्त्व के विना चारित्र न तो कभी था, न वर्तमान में है और न कभी होगा। सम्यक्त्व में चारित्र की भजना है। सम्यक्त्व चारित्र कदाचित् साथ उत्पन्न हों तो भी पहले सम्यक्त्व होगा और बाद में चारित्र होगा। ॥२९॥

सम्यक्त्व के विना ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के विना पाँच महाव्रत रूप चारित्र के (करण-चरण सप्ततिरूप—पिण्डविशुद्धि आदि) गुण प्राप्त नहीं होते। चारित्रगुणों के बिना कर्मों का मोक्ष नहीं होता और अमुक्त को निर्वाण—शाश्वतमुक्तिसुख नहीं मिलता। ॥३०॥

७. दंसणभट्ठा भट्ठो, दंसण भट्ठस्स नत्थि निव्वाणं।
सिज्झंति चरणरहिया, दंसणरहिया न सिज्झंति॥

—भक्तिपरिज्ञा गाथा ६६

सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट व्यक्ति वस्तुतः भ्रष्ट है, उसको मोक्ष नहीं मिलता। द्रव्यचारित्र-रहित सिद्ध हो जाते है, किन्तु दर्शनरहित नहीं होते।

८. नाणभट्ठा दंसणलूसिणो। **—आचारांग ६।४**

सम्यग्दर्शन से पतित सम्यग्ज्ञान से भी भ्रष्ट हो जाता है।

९. जीवविमुक्को सवओ, दंसणमुक्को य होइ चलसवओ।
सवओ लोयअपुज्जो, लोउत्तरयम्मि चलसवओ॥

—भावपाहुड १४३

जीव से रहित शरीर शव [मुर्दा-लाश] है, इसी प्रकार सम्यग्-दर्शन से रहित व्यक्ति चलता-फिरता शव है। शव लोक में अनादरणीय (त्याज्य) होता है और वह चल-शव लोकोत्तर अर्थात् धर्मसाधना के क्षेत्र में अनादरणीय रहता है।

१०. दंसणहीणो ण वंदिव्वो। —**दर्शनपाहुड २**

जो दर्शन से हीन (सम्यक्श्रद्धा से रहित या पतित) है वह, वन्दनीय नहीं है।

२२ सम्यग्दृष्टि

१. भूयत्थमस्सिदो खलु, सम्माइट्ठी हवइ जीवो ।

—समयसार ११

जो भूतार्थ अर्थात् सत्यार्थ—शुद्धदृष्टि का अवलम्बन करता है, वही सम्यग्दृष्टि है ।

२. हेयाहेयं च तहा, जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी ।

—सुत्तपाहुड, ५

जो हेय और उपादेय को जानता है, वही वास्तव में सम्यग्-दृष्टिवाला है ।

३. सम्मत्तदंसी न करेइ पावं । —आचारांग ३।२

सम्यग्दृष्टि परमार्थ को जानकर (आत्मध्यान में रमण करता हुआ) पाप नहीं करता ।

४. सम्यग्दर्शनसंपन्नः, कर्म भिर्न निबद्धयते ।
दर्शनेन विहीनस्तु, संसारं प्रतिपद्यते ।।

—मनुस्मृति ६।७४

सम्यग्दर्शन के बिना प्राणी संसार में भटकता है, किन्तु सम्यग्-दृष्टि अज्ञान के कर्मों से लिप्त नहीं होता ।

५. सम्मदिट्ठी सया अमूढे । —दशवैकालिक १०।७

सम्यग्दृष्टि सदा अमूढ़ है, वह बाह्यवस्तु में मूर्छित नहीं होता ।

६. जे अणन्नदंसी से अणन्नारामे,
जे अणन्नारामे से अणन्नदंसी । —आचारांग २।६

जो अनन्यदर्शी-सम्यग्दृष्टि है, वह अनन्यआराम-परमार्थ में रमण करनेवाला है। जो अनन्यआरामवाला है, वह अनन्यदर्शी है। तत्त्व यह है कि सम्यग्दृष्टि जीव अद्वितीय आनन्द में रमण करता है।

७. जं कुणदि सम्मदिट्ठी तं सव्वं णिज्जरणिमित्तं।

—**समयसार १९३**

सम्यग्दृष्टि आत्मा जो कुछ भी करता है, वह उसके कर्मों की निर्जरा के लिए ही होता है।

८. खवेंति अप्पाणममोहदंसिणो। — **दशवैकालिक ६।६२**

तत्त्वदर्शी पुरुष अपने पूर्व कर्मों का क्षय कर डालते हैं।

९. सम्मदिट्ठी जीवो, गच्छई नियमं विमाणवासिसु।
जइ न विगयसम्मत्तो, अह नवि बद्धाउयपुव्वं॥

सम्यग्दृष्टिजीव निश्चित रूप से वैमानिकदेवों में जाता है, लेकिन शर्त यह है कि मरने के वक्त सम्यक्त्व विद्यमान हो और सम्यक्त्व के पूर्व आयुष्य का बंध न पडा हो!

१०. सम्यग्दृष्टि जीव तैरते हुए जहाज के समान समुद्र में नहीं डूबता। वह नटों के समान जय-पराजय में सुख-दुःख नहीं मानता। वह संसार को जेल समझता है न कि राजमहल। वह काली कोठरी में न होकर काँच की कोठरी में है, जिससे स्व-पर को देख सकता है। वह खुद को घर का मालिक न मान कर मैनेजर मानता है। वह वस्तु को यथावस्थितरूप में देखता है, रोगी नेत्रवत् विकृतरूप में नहीं।

११. सम्यग्दृष्टि को इन १२ बोलों का चिन्तन करते रहना चाहिए—
मैं भव्य हूं या अभव्य, सयम्ग्दृष्टि हूं या मिथ्यादृष्टि, परित्त हूं या अपरित्त, सुलभबोधि हूं या दुर्लभबोधि, चरम हूं या अचरम, आराधक हूं या विराधक।

—**राजप्रश्नीय-सूर्याभाधिकार**

१२. सम्यग्दृष्टि जीवों को ऐसा विश्वास कभी न करना चाहिए कि लोक-आलोक, जोव-अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव-संवर, वेदना-निर्जरा, बन्ध-मोक्ष, धर्म-अधर्म, क्रिया-अक्रिया, क्रोधादि-कषाय, राग-द्वेष, चतुर्गति-रूपसंसार, मोक्ष-अमोक्ष, एवं सिद्धस्थान नहीं हैं, किन्तु निश्चितरूप से मानना चाहिए कि उक्त वस्तुएँ विद्य-मान हैं। —**सूत्रकृतांग श्रुत २, अ० ५, गाथा १२ से आगे**

१३. निस्संकिय-निक्कंखिय-निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य।
उवबूह-थिरीकरणे, वच्छल्ल-पभावणे अट्ठ॥

—**उत्तराध्ययन २८।३१**

(१) सर्वज्ञ भगवान् की वाणी में संदेह नहीं करना, (२) असत्य मतों का चमत्कार देखकर उनकी अभिलाषा नहीं करना, (३) धर्मफल की प्राप्ति के विषय में शंका नहीं करना, (४) अनेक मत-मतान्तरों के विचार सुनकर दिग्मूढ़ न बनना अर्थात् अपनी सच्ची श्रद्धा से न डोलना, (५) गुणिजनों के गुणों की प्रशंसा करना और गुणी बनने का प्रयत्न करना, (६) धर्म से विचलित होते हुए प्राणी को समझाकर पुनः धर्म में स्थापित करना, (७) वीतरागभाषित धर्म का हित करना,

और स्वधर्मि-बन्धुओं के साथ धार्मिकप्रेम रखना एवं उन्हें धार्मिक सहायता देना, (८) सद्धर्म की प्रभावना करना ये आठ सम्यग्दृष्टि जीवों के अचारने योग्य कार्य हैं अर्थात् सम्यक्त्व के आठ आचार हैं।

१४. मिच्छत्तं परियाणामि, सम्मतं उवसंपज्जामि।

—**आवश्यकनिर्युक्ति ४**

मैं मिथ्यात्व का त्याग करता हूं एवं सम्यक्त्व को अंगीकार करता हूँ।

१५. दिट्ठिमं दिट्ठि न लूसएज्जा। —**सूत्रकृतांग १४।९५**

सम्यग्दृष्टि को चाहिए कि वह अपनी दृष्टि को दूषित न करे।

१६. अवच्छलत्ते य दंसणे हाणी। —**बृहत्कल्पभाष्य २७११**

धार्मिकजनों में परस्पर वात्सल्यभाव की कमी होने पर सम्यग्दर्शन की हानि होती है।

१७. ते धन्ना सुकयत्था, ते सूरा तेवि पंडिया मणुया।
सम्मत्तं सिद्धियरं, सुविणे वि ण मइलियं जेहिं॥

जिन्होंने समस्त अर्थ को सिद्ध करनेवाले सम्यक्त्व को स्वप्न में भी मैला नहीं किया—वे मनुष्य धन्य है, कृतार्थ हैं, शूर हैं एवं वे ही पण्डित हैं।

१८. जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणं जे करेंति भावेणं।
अमला असंकिलिट्ठा, ते होंति परित्तसंसारी॥

—**उत्तराध्ययन ३६।२६१**

जो व्यक्ति जिनवाणी में अनुरक्त हैं एवं उसके अनुसार सद्भावों से क्रिया करते हैं तथा जो मिथ्यात्वादि मल और रागादि क्लेश से रहित है, वे परित्तसंसारी होते हैं।

२३ श्रद्धा

१. सद्धा परमदुल्लहा। —**उत्तराध्ययन** ३।६
सच्ची श्रद्धा का मिलना अत्यन्त कठिन है।

२. धर्म के मूल में श्रद्धा रही है! जहाँ श्रद्धा नहीं है, वहां धर्म भी नहीं है। —**गांधी**

३. बिना श्रद्धा की क्रिया मृतशरीर पर श्रृंगार के समान है।

४. बिना श्रद्धा के व्यक्ति काली विंदियों से शून्य-आँखों के समान हैं।

◆ यूरोप में "माइकल एंजिलो" नामक चित्रकार था। दूसरे चित्रकार ने ईर्ष्यावश एक चित्र बनाया, किन्तु उसकी कमी न समझ सका! एंजिलो आया एवं चित्र की आँखों में दो काली बिंदियाँ लगा दीं। अब तो चित्र अद्भुत ही हो गया।

५. श्रद्धा और विश्वास न रहे तो क्षण भर में प्रलय हो जाये। —**गांधी**

६. ज्ञान और श्रद्धा बिना, अंधतुल्य इन्सान!
घड़ी निकम्मी हो, न यदि सूई और निसान ॥ ४३ ॥

पढ़े लिखे वक्ता बने, काव्यों के कर्तार !
संयम में श्रद्धा न यदि, तो सब कुछ बेकार ॥ ४५ ॥
संयम की श्रद्धा बिना, धरा वेष में क्या ?
तेल न दीपक में रहा, समझो शीघ्र बुझा ॥ ४६ ॥

—दोहा-संदोह

७. श्रद्धा किसी के सलाह की राह नहीं देखती ।

—गांधी

८. श्रद्धा परमात्मा में होनी चाहिये, अपने नेता में होनी चाहिये, अपने लक्ष्य के प्रति होनी चाहिये, अपने कार्य के प्रति होनी चाहिये और फिर अपने प्रति होनी चाहिये ।

—आचार्य तुलसी

श्रद्धावान्

१. जं सक्कइ तं कीरइ, जं न सक्कइ तयम्मि सद्दहणा ।
सद्दहमाणो जीवो, वच्चइ अयरामरं ठाणं ।।
—धर्मसंग्रह २।२१

जिसका आचरण हो सके, उसका आचरण करना चाहिये एवं जिसका आचरण न हो सके, उस पर श्रद्धा रखनी चाहिये । श्रद्धा रखता हुआ जीव जरा एवं मरणरहित मुक्ति का अधिकारी होता है ।

२. अदक्खु व दक्खुवाहियं सद्दहंसु । —सूत्रकृतांग २।३।११

नहीं देखनेवालों ! तुम देखनेवालों की बात पर विश्वास करके चलो !

३. श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं, तत्तपः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्ति-मचिरेणाधिगच्छति ।।
—गीता अ० ४।३१

श्रद्धावान् व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त होता है और इन्द्रियों का संयम करता हुआ तपयुक्त बनता है । सद्ज्ञानप्राप्ति के बाद उसे शीघ्र ही उत्कृष्ट शान्ति (मुक्ति) मिल जाती है !

४. अश्रद्धा परमं पापं, श्रद्धा पापविमोचनी ।
जहाति पापं श्रद्धावान्, सर्पो जीर्णामिव त्वचम् ।।

अश्रद्धा उत्कृष्ट पाप है और श्रद्धा पाप को नष्ट करनेवाली है । श्रद्धावान व्यक्ति पाप को उसी प्रकार छोड़ देता है, जैसे जीर्ण कंचुकी को साँप ।

●

२५ अश्रद्धावान् (शंकाशील)

१. कहं-कहं वा वितिगिच्छतिन्ने । —सूत्रकृतांग १४।६

साधक को चाहिए कि वह किसी न किसी तरह शंका से दूर हो जाए ।

२. वितिगिच्छासमावन्नेणं नो लहई समाहिं ।

—आचारांग ५।५

धर्मफल में संदेह रखनेवाला समाधि नहीं पा सकता !

३. अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च, संशयात्मा विनश्यति ।

—गीता अ० ४।४०

जो अज्ञानी है, श्रद्धाहीन है, और जो शंकाशील है, वह नष्ट हो जाता है !

४. अश्रद्दधानाः पुरुषा, धर्मस्यास्य परंतप !
अप्राप्य मां निवर्तन्ते, मृत्युसंसारवर्त्मनि ।।

—गीता अ० ९।३

हे अर्जुन ! इस धर्म पर अश्रद्धा करनेवाले पुरुष मुझे न पाकर संसार में भटकते रहते हैं ।

५. **मोर-अण्डे का दृष्टान्त**—

चम्पानगर-निवासी दो बालमित्रों को मोर के अण्डे

मिले ।एक इसमें से **मोर बनेगा या नहीं** ! ऐसे शङ्काशील होकर अण्डे को बार-बार हिलाकर देखने लगा एवं अण्डा नष्ट हो गया । दूसरा मित्र विश्वस्त होकर अण्डे की विधिवत् सार-संभाल करने लगा । फलस्वरूप उसमें से अद्‌भुत मोर उत्पन्न हुआ । मयूरपालक से नृत्यकला सीखकर वह ऐसा नाचने लगा कि दर्शकलोग ताज्जुब होकर वाह-वाह करने लगे ।

—ज्ञातासूत्र अध्ययन ३ के आधार पर

६. शंका से कील ढीली रह गई—

इन्द्रप्रस्थ नगर में राजा अनंगपाल राज्य करते थे । एक दिन उनकी अध्यक्षता में नया गढ़ स्थापित करने के लिए ज्योतिषी ने पृथ्वी में एक मन्त्रित कील डाली एवं कहा—यह कील शेषनाग के फन पर लगी है अतः राज्य सुस्थिर होगा । राजा आदि को विश्वास न होने से वह कील निकाली गई तो खून से भरी हुई निकली ! राजा ने उसे पुनः लगाने के लिये कहा । कील लगाकर ज्योतिषी बोला—अब यह पूर्ववत् सुदृढ़ नहीं बनेगी—ढीली रहेगी एवं यहां किसी का राज्य स्थिर न हो सकेगा ! उस दिन से शहर का नाम (जो इन्द्रप्रस्थ था) ढीली हुआ और अपभ्रंश होकर ढीली का दिल्ली बन गया ।

—पुरानी कथाओं के आधार पर

७. आचार्य आर्याषाढ़ शिष्यों को अनुयोग तप करवा रहे थे। बीच में स्वर्गवासी बने, मूल शरीर में प्रविष्ट होकर तप पूरा करवाया, फिर प्रकट होकर भेद खोला। शिष्यों के मन में शंका हुई। परस्पर वन्दना-व्यवहार छोड़ा। राजा बलभद्र ने समझाने के लिए उन्हें मारने का हुक्म दिया—यह कहकर कि क्या पता आप साधु हैं या चौर! (साधु समझ गए)।

(विशेषावश्यकभाष्य के आधार पर)

२६ संशय (शङ्का)

१. न हि संशयमनारूह्य, नरो भद्राणि पश्यति !

जिज्ञासारूप संशय के बिना मनुष्य कल्याण का मार्ग नहीं देख सकता !

२. आशिक्षायै प्रश्निनम्, उपशिक्षाया अभिप्रश्निनम् ।

यह समझ लो कि जो प्रश्न करता है, वही उस विषय को जानता है। समीक्षक ही किसी पदार्थ को ठीक-ठीक समझ सकता है।

३. शंका दो प्रकार की होती है—जिज्ञासारूप और संदेह-रूप। **गौतम** की शंकायें जिज्ञासारूप थीं। उनके प्रश्न संशयप्रश्न माने गये हैं।

४. छः प्रकार के प्रश्न—

(१) **संशयप्रश्न**—गौतमस्वामीवत् पूछना, वह।

(२) **व्युद्ग्रहप्रश्न**—कलहार्थ,जो प्रतिवादी पूछता है, वह।

(३) **अनुयोगीप्रश्न**—अपने भाव को स्पष्ट करने के लिए जो वक्ता पूछा करता है, वह।

(४) **अनुलोमप्रश्न**—आप कुशल तो हैं—इत्यादि अनुकूल करने के लिए जो पूछा जाता है, वह।

(५) **ज्ञानप्रश्न**—केशी-गौतमवत् जो ज्ञानी से ज्ञानी पूछता है, वह।

(६) **अतथाज्ञानप्रश्न**—जो अज्ञानी-अज्ञानी से पूछता है, वह। (ऊटपटांग प्रश्न।)

(स्थानांग ६।५३४ के आधार पर)

२७ विश्वास

१. **विश्वास** ही जीवन की प्रेरक शक्ति है।

—**टालस्टाय**

२. विश्वास से बढ़कर कोई **दवा** नहीं, इलाज तो बहाना है—

३. हम विश्वास के आधार पर चलते हैं। दृष्टि के आधार पर नहीं। —**बाइबिल**

४. जो कुछ मैंने देखा है, वह मुझे यही शिक्षा देता है कि जो कुछ मैंने नहीं देखा, उसके लिए प्रभु पर विश्वास करूँ। —**इमर्सन**

५. आस्था कहते हैं उन वस्तुओं में विश्वास करने को, जिन्हें हम देख नहीं सकते। इसका पुरस्कार होता है उस वस्तु का दर्शन, जिसमें हम विश्वास करते हैं।

—**संत अगस्तीन**

६. विश्वास से **साक्षात्कार**, विनय से **उन्नति**, सत्य से **समता**, प्रेम से **आनन्द**, धैर्य से **शान्ति**, वैराग्य से **ज्ञान**, समर्पण से **भक्ति**, और निर्भरता से **मुक्ति** प्राप्त होती है।

७. सिपाही की तरह ईश्वर आदि का भी विश्वास रखो !

८. कवनहुं सिद्धि कि विनु विश्वासा। —**रामचरितमानस**

९. सुना जाता है कि ईश्वर के विश्वास से गौतम—मुनि के पैरों में आंखें हो गईं एवं बालक के घर चीनी आ गई। गुरु के विश्वास से शिष्य का रोग मिट गया। धर्म के विश्वास से जिनदास श्रावक को वचनसिद्धि का वर मिला और प्रभुवाणी के विश्वास ने रोहणिया चोर स्वर्गगामी बना। **—धनमुनि**

१०. विश्वास एक ऐसी चीज़ है कि इसके बिना किसी का काम नहीं चल सकता। संसार में यदि पुत्र माता का, सास बहू का, पति स्त्री का, सेठ मुनीम का, राजा दीवान का एवं रोगी वैद्य का विश्वास न करे तो क्या दशा हो? अन्न, जल, फूल, शाक आदि का विश्वास न करे तो दुनियां भूखा-प्यासी मर जाये। तो फिर आत्मा-परमात्मा एवं धर्म आदि पर विश्वास न रखनेवालों का क्या हाल होगा? **—एक विचारक**

११. विश्वास के बल पर ही वकीलों को लाखों—करोड़ों का केश, डॉक्टरों को शरीर एवं नाइयों को शरीर का सर्वोत्कृष्ट-अंग-मुँह सौंपा जाता है।

१२. मास्टर के विश्वास से ए-बी-सी-डी आती है, पारस्परिक विश्वास से लाखों-करोड़ों का लेन-देन व व्यापार होता है, और तो क्या? रेल, मोटर, स्टीमर एवं विमानों की यात्राएँ भी विश्वास के आधार पर ही होती हैं।

१३. महापुरुषों का विश्वास इतना प्रबल और अनन्य होता है कि वे पानी का घी और बालु की चीनी तक बना सकते हैं। —**स्वामी शिवानन्द**

१४. **सदाचरण** के अतिरिक्त विश्वास को दृढ़ बनानेवाली दूसरी वस्तु नहीं है। —**एडीसन**

१५. जैसे-फल के पहले फूल, वैसे ही सत्कार्य के पहले विश्वास। —**ह्वं वेंटली**

जब बहुत आदमियों से काम लेना हो तो अविश्वास रख कर चलना गलत नीति है। —**गांधी**

१६. तीन पर अवश्य विश्वास करो—(१) भगवान की भक्ति पर (२) आत्मा की शक्ति पर, (३) शुद्ध आचरण पर।

१७. न सर्वत्रविश्रम्भी न सर्वाभिशङ्की।

—**चरकसंहिता सूत्र स्थान ८।२६**

न तो सब का विश्वास करना चाहिए और न सब में शंका करनी चाहिए।

१८. प्रेम सबसे करो! विश्वास कुछ पर करो। किसी का बुरा न करो। —**शेक्शपियर**

★

२८ विश्वास के अयोग्य

१. अविश्वस्तेषु विश्वासो न कर्तव्यः ।

—कौटलीय-अर्थशास्त्र

विश्वास के अयोग्य व्यक्तियों का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये ।

२. न विश्वासस्तु कर्तव्यः, कृतवैरैः कथंचन ।

जिससे वैर हो, उसका विश्वास कभी नहीं करना चाहिए ।

३. तदजाकृपाणीयं यः परेषु विश्वासः ।

—नीतिवाक्यामृत ६।५६

शत्रुओं पर विश्वास करना बकरी की गर्दन पर तलवार धरने के समान है ।

४. नदीनां नखिनां चैव, शृङ्गिणां शस्त्रपाणिनाम् ।
विश्वासो नैव कर्तव्यः, स्त्रीषु राजकुलेषु च ।।

—चाणक्यनीति १।१५

नदियों का, नखवाले सिंह-बाघ आदि हिंसक जन्तुओं का, सींगवाले गाय-भैंस आदि पशुओं का, खड्ग आदि शस्त्रधारी पुरुषो का, स्त्रियों का और राजाओं का— इन सबका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये ।

५. मार्जारो महिषो मेषः, काकाः कापुरुषास्तथा ।
विश्वासात्प्रभवन्त्येते, विश्वासस्तत्र नोचितः ।।

—हितोपदेश १।८८

मार्जार, महिष, मेष, काक और कापुरुष (कायर)—ये विश्वास करने से प्रत्युत्त आक्रमण करते हैं अतः इन पर विश्वास करना अनुचित है ।

६. वह्निर्वारि वणिग् विषं विषधरो वैद्यश्च वेश्या वसु,
वक्री वानर-वारणश्च विषयान्धो वैरिको वञ्चकः ।
व्याघ्रो वै वसुधाधिपश्च वनिता वाजी वृको वेसरो,
विश्वास्या न कदाप्य हो ! बुधजनैरेते वकाराः किल ।

बह्नि-अग्नि, वारि-पानी, वणिक, विष, विषधर-सांप, वैद्य, वेश्या, वसु-धन, वक्री-टेढ़ा, वानर, वारण-हाथी, विषयान्ध, वैरी, वंचक-ठग, व्याघ्र, वसुधाधिप-राजा, वनिता-स्त्री, वाजी-घोड़ा, वृक-भेड़िया, वेसर-खच्चर, इतने 'वकार' आदि वालों का विद्वज्जनों को कभी विश्वास न करना चाहिए ।

७. न विश्वसेत् कुमित्रे तु, मित्रे चापि न विश्वसेत् ।
कदाचित् कुपितं मित्रं, सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत् ॥

—चाणक्यनीति २।६

कुमित्र पर तो विश्वास करना ही नहीं चाहिये, किन्तु मित्र पर भी न करना चाहिये । कदाचित् मित्र भी रुष्ट होकर सारा गुप्त भेद खोल दे ।

८. चार पर कभी भरोसा मत करो—

(१) शत्रु के प्रेम पर, (२) स्वार्थी की प्रशंसा पर, (३) ज्योतिषी की भविष्यवाणी पर, (४) धूर्त के सदाचार पर ।

९. **बछावतजी**—राजा रायसिंहजी का अविश्वास देखकर

दीवान कर्मचन्दजी बछावत सपरिवार बीकानेर से दिल्ली चले गये। अकबर ने उन्हें कुछ ओहदा दे दिया। आखिर बीमार सुनकर महाराज उनसे मिलने गये एवं रोये। कर्मचन्दजी ने अपने पुत्रों से कहा—आँसू दुःख के न होकर मैं सुख से मर रहा हूं, इस बात के थे। भूलकर भी तुम इनका विश्वास न करना। उनकी मृत्यु के बाद पुत्रादि राजा के आग्रहवश बीकानेर आये, दीवान बने एवं फिर सब कुमृत्यु से मारे गये।

२६ विश्वासघात

१. न विश्वासघातात् परं पातकमस्ति ।

—**नीतिवाक्यामृत** २१।२२

विश्वासघात से बढ़कर कोई पाप नहीं ।

२. विश्वासप्रतिपन्नानां, वञ्चने का विदग्धता ।
अङ्कमारुह्य सुप्तं हि, हत्वा किं नाम पौरुषम् ?

—**हितोपदेश ४।५१**

विश्वास में आये हुये व्यक्तियों को ठगना कौनसी बुद्धिमत्ता है और गोद में सोये हुए को मारना कौनसी बहादुरी है ?

३० मिथ्यादर्शन-मिथ्यात्व

१. विपरीततत्त्वश्रद्धा मिथ्यात्वम् ।

—**जैनसिद्धान्तदीपिका** ४।१६

जीवादि तत्त्वों को विपरीत समझना मिथ्यात्व है ।

२. अदेवे देवबुद्धिर्या, गुरुधीरगुरावपि ।
अधर्मे धर्मबुद्धिश्च, मिथ्यात्वं तद्विपर्ययात् ।।

—**योगशास्त्र** २।३

राग-द्वेषयुक्त देव में भगवद्बुद्धि का होना, महाव्रतहीन गुरु में सद्गुरुबुद्धि का होना और अधर्म में धर्मबुद्धि का होना मिथ्यात्व, है क्योंकि यह विपरीत धारणा है ।

३. मिथ्यात्वं परमो रोगो, मिथ्यात्वं परमं तमः ।
मिथ्यात्वं परमः शत्रु-र्मिथ्यात्वं परमं विषम् ।।

—**योगशास्त्र**

मिथ्यात्व बड़ा भारी रोग है, घोर अन्धकार है, उत्कृष्ट शत्रु है और हलाहल जहर है ।

४. मिच्छादिट्ठि न सेवेय्य । —**धम्मपद** १६७

मनुष्य को मिथ्याधारणा से बचना चाहिए ।

५. नइरस्य मिथ्यात्वयुतं न जीवितम् ।

मिथ्यात्वयुक्त जीना मनुष्य के लिए उचित नहीं है ।

★

३१ मिथ्यात्व के भेद

१. मिच्छादंसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अभिग्गहिय-मिच्छादंसणे चेव, अणभिग्गहियमिच्छादंसणे चेव।

—**स्थानांग** २।१

मिथ्यादर्शन दो प्रकार का कहा है – आभिग्रहिक और अनाभि-ग्रहिक।

२. अभिग्गहियमणभिग्गहियं, तह अभिनिवेसियं चेव।
संसइयमणाभोगं, मिच्छत्तं पंचहा होई॥

—**योगशास्त्र २ श्लोक ३ के अन्तर में तथा धर्मसंग्रह अधि० २**

मिथ्यात्व पाँच प्रकार का होता है—

(१) आभिग्रहिक, (२) अनाभिग्रहिक, (३) आभिनिवेसिक, (४) सांशयिक, (५) अनाभोगिक।

(१) हमारे शास्त्रों में जो कुछ कहा हे, वही सच्चा है बाकी सब झूठ है—ऐसा मानना **आभिग्रहिकमिथ्यात्व** है।

(२) सब देव, सब गुरु और सभी धर्म सच्चे हैं। विवेकशून्यता से ऐसा मानना **अनाभिग्रहिकमिथ्यात्व** है।

(३) अभिमानवश जान लेने पर भी जमालि की तरह झूठा आग्रह करना **अनाभिनिवेसिकमिथ्यात्व** है।

(४) देव-गुरु-धर्म में 'यह सच्चा है या वह सच्चा है' ऐसे शंकाशील रहना **सांशयिकमिथ्यात्व है** ।

(५) एकेन्द्रियादि जीवों की तरह विशेषज्ञानरहित जीवों की अज्ञानदशा **अनाभोगिकमिथ्यात्व** है ।

३. दसविहे मिच्छत्ते पण्णत्ते, तं जहा—

(१) अधम्मे धम्मसन्ना, (२) धम्मे अधम्मसन्ना,
(३) उमग्गे मग्गसन्ना, (४) मग्गे उम्मग्गसन्ना,
(५) अजीवेसु जीवसन्ना, (६) जीवेसु अजीवसन्ना,
(७) असाहुसु साहुसन्ना, (८) साहुसु असाहुसन्ना,
(९) अमुत्तेसु मुत्तसन्ना, (१०) मुत्तेसु अमुत्तसन्ना ।

—**स्थानांग १०।७३४**

दस प्रकार का मिथ्यात्व कहा है—

(१) अधर्म को धर्म समझना, (२) धर्म को अधर्म समझना (३) अमुक्तिमार्ग को मुक्तिमार्ग समझना, (४) मुक्तिमार्ग को अमुक्ति मार्ग समझना, (५) आकाश-परमाणु आदि अजीवों को जीव समझना, (६) पृथ्वी-पानी आदि जीवों को अजीव समझना, (७) असाधुओं को साधु समझना, (८) साधुओं को असाधु समझना, (९) अमुक्तों को मुक्त समझना, (१०) मुक्तों को अमुक्त समझना ।

४. दुविहं लोइयमिच्छं, देवगयं गुरुगयं मुणेयव्वं ।
लोउत्तरं पि दुविहं, देवगयं गुरुगयं चेव ।

—**दर्शनशुद्धि-प्रकरण ३५**

दो प्रकार का मिथ्यात्व है—लौकिक मिथ्यात्व और लोकोत्तर मिथ्यात्व।

५. **लौकिकमिथ्यात्व दो तरह का है**—देवसम्बन्धी और गुरुसम्बन्धी।

◆ **लोकोत्तरमिथ्यात्व भी दो प्रकार का है**—देवसम्बन्धी और गुरुसम्बन्धी।

●

३२ मिथ्यादृष्टि-मिथ्यात्वी

१. मिच्छादिट्ठि समादाना, सत्ता गच्छंति दुग्गतिं ।

—धम्मपद ३।६

मिथ्यादृष्टि को धारण करनेवाले जीव दुर्गति में जाते हैं ।

२. मिच्छादिट्ठी अणारिया,… संसारमणुयरियट्टंति ।

—सूत्रकृतांग २।३२

मिथ्यादृष्टि अनार्य संसार में चक्र लगाते रहते हैं ।

३. मिच्छादंसणरत्ता, सनियाणा हु हिंसगा ।
इय जे मरंति जीवा, तेसिं पुण दुल्लहा बोही ।।

— उत्तराध्ययन ३६।२५५

जो जीव मिथ्यादर्शन में रक्त है, निदानसहित है एवं हिंसा में प्रवृत्त है—ऐसी स्थिति में मरनेवालों को अग्रिम जन्म में सम्यक्त्व का मिलना कठिन है ।

४. कुप्पवयणपासंडी, सव्वे उम्मग्गपट्ठिया ।

—उत्तराध्ययन २३।६३

'कु' अर्थात् असत्य प्ररूपणा करनेवाले सभी पाखण्डी उन्मार्ग-गामी हैं ।

★

तीसरा कोष्ठक

१ तत्त्व

१. तत्त्वं पारमार्थिकं वस्तु । —जैनसिद्धान्तदीपिका २।१

पारमार्थिक वस्तु का नाम तत्त्व है ।

२. जिणपन्नत्तं तत्तं । —आवश्यक ४

जिनेश्वर देव प्ररूपित संवर-निर्जरारूप धर्म ही तत्त्व है ।

३. जीवाऽजीवा य बंधो य, पुण्णं पावासवो तहा ।
संवरो निज्जरा मोक्खो, संतेए तहिया नव ।
—उत्तराध्ययन २८।१४

(१) जीव, (२) अजीव, (३) बंध, (४) पुण्य, (५) पाप, (६) आस्रव (७) संवर, (८) निर्जरा, (९) मोक्ष—ये नव-तत्त्व सत् पदार्थ हैं ।

(स्थानांग ९।६६५ में भी नव सद्भाव पदार्थ कहे हैं)

४. अंतरतच्चं जीवो, बाहिरतच्चं हवंति सेसाणि ।
—कार्तिकेयानुप्रेक्षा ३३४

जीव (आत्मा) अन्तस्तत्त्व है, बाकी सब द्रव्य बहिस्तत्त्व है ।

५. एकाग्रो हि बहिर्वृत्ति-निवृत्तस्तत्त्वमीप्यते ।

एकाग्र होकर बाह्यवृत्तियों से निवृत्त होनेवाला व्यक्ति ही तत्त्व (वस्तु के रहस्य) को पाता है ।

६. यथा-यथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम् ।
तथा-तथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि ।
यथा-तथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि ।
तथा-तथा समायाति, संवित्तो तत्वमुत्तमम् ।

—**इष्टोपदेश ३७-३८**

बुद्धि में ज्यों-ज्यों उत्तमतत्त्व प्रवेश करता है त्यों-त्यों सुलभ होने पर भी इन्द्रियों के शब्दादि विषयों में रुचि नहीं रहती एवं ज्यों-ज्यों वह रुचि हटती है, त्यों-त्यों आत्मतत्त्व बुद्धि में प्रविष्ट होता है ।

७. गहे तत्त्व ज्ञानी पुरुष, बात विचारि-विचारि ।
मथनहारि तजि छाछ को, माखन लेत निकारि ।

८. समियंति मन्नमाणस्स समिया वा असमिया वा समिया होइ ।

—**आचारांग ५।५**

आत्मार्थिता से जिस तत्त्व को सत्य माना जाए, उसके लिए वह तत्त्व सत्य ही है, फिर चाहे वह सत्य हो या असत्य ।

२ द्रव्य

१. दव्वं सल्लक्खणयं, उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं ।

—पञ्चास्तिकाय १०

द्रव्य का लक्षण सत् है और वह सदा उत्पाद, व्यय एवं ध्रुवत्व-भाव से युक्त होता है ।

२. सव्वं चिय पइसमयं, उपज्जइ नासए य निच्चं च ।

—विशेषावश्यकभाष्य ५४४

विश्व का प्रत्येक पदार्थ प्रतिक्षण उत्पन्न भी होता है, नष्ट भी होता है और साथ ही नित्य भी रहता है ।

३. नो य उप्पज्जए असं । —सूत्रकृतांग १।१।१६

असत् कभी सत् नहीं होता ।

४. अत्थित्तं अत्थित्ते परिणमइ,
नत्थित्तं नत्थित्ते परिणमइ ।

—भगवती १।३

अस्तित्व अस्तित्व में परिणत होता है और नास्तित्व नास्तित्व में परिणत होता है अर्थात् सत् सदा सत् ही रहता है और असत् सदा असत् ।

५. ण एवं भूतं वा भव्वं वा भविस्सति वा,
जं जीवा अजीवा भविस्संति ।
अजीवा वा जीवा भविस्संति ।। —स्थानाङ्ग १०

न ऐसा कभी हुआ है, न होता है और न कभी होगा ही कि जो चेतन हैं, वे कभी अचेतन (जड़) हो जाएँ, और जो जड़ अचेतन हैं, वे चेतन हो जाएँ !

६. गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा ।
लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे ॥

—उत्तराध्ययन २८।६

पुद्गल में वर्ण-गंध आदि की तरह जिसमें गुण अवश्य रहे, वह द्रव्य है । जीव में चेतनता की तरह जो सदा द्रव्य के साथ ही रहे, वे गुण हैं तथा जो एकत्व, पृथक्त्व, संख्या, आकार व संयोग-विभाग की तरह द्रव्य-गुण दोनों में रहे, वह पर्याय है ।

७. धर्माधर्माकाश-पुद्गुल-जीवास्तिकाया द्रव्याणि,कालश्च ।

—जैनसिद्धान्तदीपिका १।१-२

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय—ये द्रव्य हैं, और काल भी द्रव्य है ।

८. द्रव्यं पर्यायवियुतं, पर्याया द्रव्यवर्जिताः ।
क्व कदा केन किं रूपा, दृष्टा मानेन केन च ॥

पर्याय के बिना द्रव्य और द्रव्यरहित पर्यायें कहाँ, कब, किसने, किस स्वरूप एवं प्रमाण से देखीं ? अर्थात् किसी भी तरह नहीं मिलतीं ।

९. निर्विशेषं हि सामान्यं, भवेत् खरविषाणवत् ।
सामान्यरहितत्वेन, विशेषास्तद्वदेव हि ॥

विशेष के बिना सामान्य गदहे के सींगवत् है और सामान्य-रहित विशेष भी वैसा ही है ।

८. गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो।
भायणं सव्वदव्वाणं, नहं ओगाहलक्खणं ।।९।।
वत्तणालक्खणो कालो, जीवो उवओगलक्खणो।
नाणेणं दंसणेणं च, सुहेण य दुहेण य ।।१०।।
सद्दन्धयार-उज्जोओ, पभा छायातवो वि य।
वन्न-रस-गन्ध-फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ।।१२।।

—उत्तराध्ययन २८

गति में अपेक्षित सहायता करना धर्मद्रव्य का लक्षण है। ठहरने में अपेक्षित सहायता करना अधर्मद्रव्य का लक्षण है। आकाश सभी द्रव्यों का भाजन है। अवगाहन करना एवं दूसरे द्रव्यों को अवकाश देना उसका लक्षण है ।।९।।

पदार्थों के परिवर्तन में सहायक होना कालद्रव्य का लक्षण है। जीवद्रव्य का लक्षण उपयोग है तथा ज्ञान, दर्शन, सुख और दुःख से भी जीव पहचाना जाता है ।।१०।।

शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श—ये पुग्गलद्रव्य के लक्षण हैं ।।१२।।

९. **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य—**

घटमौलिसुवर्णार्थी, नाशोत्पादस्थितिष्वलम्।
शोक-प्रमोद-माध्यस्थ्यं, जनो याति सहेतुकम् ।।५९।।
पयोव्रतो न दध्यत्ति, न पयोत्ति दधिव्रतः।
अगोरसव्रतो नोभे, तस्माद्वस्तु त्रयात्मकम् ।।६०।।

—आप्तमीमांसा

तीन मनुष्य सुनार की दूकान पर गए। एक को स्वर्णघट लेना था, दूसरे को स्वर्णमुकुट की आवश्यकता थी एवं तीसरा केवल

स्वर्ण का इच्छुक था। सुनार स्वर्णघट को तोड़कर स्वर्णमुकुट बना रहा था। उसे देखकर पहला शोकातुर हुआ, दूसरा खुश हुआ और तीसरा मध्यस्थ भाव में रहा। इनका कारण क्रमशः घट का नाश, मुकुट की उत्पत्ति और स्वर्ण की ध्रुवता थी ॥५६॥

दूध मात्र के व्रतवाला दही नहीं खाता, दही के व्रतवाला दूध नहीं पीता और गोरस के व्रतवाला दूध-दही दोनों नहीं खा सकता—इसलिए वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनों गुणों से युक्त है ॥६०॥

३ नय-प्रमाण

१. अर्थस्यानेकरूपस्य, धीः प्रमाणं तदंशधीः।
नयो धर्मान्तरापेक्षी, दुर्णयोस्तन्निराकृतिः ।।

प्रमाण वस्तु के अनेक धर्मों का ग्रहण करता है और नय अन्य धर्मों की अपेक्षा रखता हुआ वस्तु के एक धर्म का ग्रहण करता है तथा दुर्नय एक धर्म का मण्डन करके दूसरे धर्मों का खण्डन करता है।

२. सप्तभङ्ग्यात्मकं वाक्यं, प्रमाणं पूर्णबोध कृत्।
स्यात्पदादपरोल्लेखि, वचोयच्चैकधर्मगम् ।।

—उपाध्याय यशोविजयजी

सप्तभंगीरूप वाक्य स्यात्पद से युक्त होने के कारण पूर्णबोध अर्थात् वस्तु के सब धर्मों का ज्ञान करता है अतः वह **प्रमाण** है और जो एक धर्म विशेष का उल्लेख करता है, वह **नय** है।

३. सत्त नया पण्णत्ता, तं जहा—नैगमे, संगहे, ववहारे, उजुसुत्ते, सद्दे, समभिरूढे, एवंभूते। — **स्थानांग ७।५५२**

सात नय कहे हैं—(१) नैगम, (२) संग्रह, (३) व्यवहार, (४) ऋजुसूत्र, (५) शब्द, (६) समभिरूढ़, (७) एवंभूत।

★

४ निश्चय-व्यवहार नय

१. जइ जिणमयं पवज्जह, ता मा ववहार-णिच्छए मुयह !
एकेण विणा छिज्जई, तित्थं अण्णेण उ ण तच्चं ।।
— समयसारवृत्ति, आगमसार

यदि तुम जिनमत स्वीकार करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय दोनों में से एक का भी त्याग न करो । व्यवहार के बिना तीर्थ एवं आचार का उच्छेद हो जाता है और निश्चय के बिना तत्त्व का ही नाश हो जाता है ।

२. ववहारणयो भासदि, जीवो देहो य हवदि खलु इक्को ।
ण दु णिच्छयस्स जीवो, देहो य कदापि एकट्ठो ।।
—समयसारवृत्ति २७

व्यवहार नय से जीव (आत्मा) और देह एक प्रतीत होते है, किन्तु निश्चयदृष्टि से दोनों भिन्न हैं, कदापि एक नहीं हैं ।

३. तह ववहारेण विणा, परमत्थुवएसणमसक्कं ।
— समयसारवृत्ति ८

व्यवहार (नय) के बिना परमार्थ (शुद्ध आत्मतत्त्व) का उपदेश करना अशक्य है ।

४. कत्ता भोत्ता आदा, पोग्गलकम्मस्स होदि ववहारो ।
—नियमसार १८

आत्मा पुद्गल-कर्मों का कर्ता और भोक्ता है, यह मात्र व्यवहार-दृष्टि है ।

★

स्याद्वाद

१. जेण विणा लोगस्स वि, ववहारो सव्वहा ण णिघडइ ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो, णमो अणेगंत वायस्स ।।
—सन्मतितर्कप्रकरण ३।७०

जिसके बिना विश्व का कोई भी व्यवहार सम्यग्रूप से घटित नहीं होता अतएव जो त्रिभुवन का एक मात्र गुरु (सत्यार्थ का उपदेशक है)—उस अनेकान्तवाद को मेरा नमस्कार है ।

२. जैनों का स्याद्वाद, वेदों में दृष्टि-सृष्टिवाद एवं पाश्चात्य विद्वानों के मत में थिओरी ऑफ रिलेटीविटी कहलाता है ।

३. न याऽसियावाय विआगरेज्जा । **—सूत्रकृतांग१४।१६**
साधक स्याद्वाद से रहित (निश्चयकारी) वचन न बोले ।

४. विभज्जवायं च वियागरेज्जा,
संकेज्ज याऽसंकितभावभिक्खू । **—सूत्रकृतांग १४।२२**
यदि साधु किसी विषय में संदेहरहित हो तो भी उस विषय में अनाग्रही रहे तथा अनेकान्तवाद (भङ्गवाद-नयवाद) का अवलंबन लेकर कथन करे !

५. भागे सिंहो नरो भागे, योऽर्थो भागद्वयात्मकः ।
तमभागं विभागेन, नरसिंहः प्रचक्षते ।।
—शास्त्रवार्तासमुच्चय

नृसिंहावतार शरीर के एक भाग में सिंह के समान है और दूसरे भाग में पुरुष के समान है। परस्पर दो विरुद्ध आकृतियों के धारण करने से यद्यपि वह भागरहित है, फिर भी विभाग करके लोग उसे "नरसिंह" कहते हैं।

६. उत्पन्नं दधिभावेन, नष्टं दुग्धतया पयः।
गोरसत्वात् स्थिरं जानन्, स्याद्वादद्विड् जनोपि कः॥

—अध्यात्मोपनिषद्

गोरस में दही के भाव की उत्पत्ति है, दूध के भाव का नाश है और गोरसत्व की स्थिरता है, इस तत्त्व को समझनेवाला कोई भी व्यक्ति स्याद्वाद का विरोधी नहीं हो सकता।

देखिए—

- इच्छन् प्रधानं सत्त्वाद्य - विरुद्धैर्गुम्फितं गुणैः।
सांख्यः संख्यावतां मुख्यो, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्॥१॥

— वीतरागस्तोत्र

सांख्यदर्शन प्रधान-प्रकृति को सत्त्व आदि अनेक विरुद्ध गुणों से गुंफित मानता है। वह अनेकान्त (स्याद्वाद)-सिद्धान्त का खण्डन नहीं कर सकता।

- चित्रमेकमनेकं च, रूपं, प्रामाणिकं वदन्।
योगो विशेषिको वापि, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्॥१॥
विज्ञानस्यैकमाकारं, नानाकारकरम्बितम्।
इच्छँस्तथागतः प्राज्ञो, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्॥२॥
जातिवाक्यात्मकं वस्तु, वदन्ननुभवोचितम्।
भट्टो वापि मुरारिर्वा, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्॥३॥

अबद्धं परमार्थेन, बद्धं च व्यवहारतः।
ब्रुवाणो ब्रह्मवेदान्ती, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् ॥४॥
ब्रुवाणा भिन्न-भिन्नार्थान्, नयभेदव्यपेक्षया।
प्रतिक्षिपेयुर्नो वेदाः, स्याद्वादं सार्वतन्त्रिकम् ॥५॥

—**अध्यात्मोपनिषद्**

न्याय-वैशेषिक एक चित्र को अनेक रूपों मे परिणत मानते हैं, वे 'अनेकान्त सिद्धान्त' का खण्डन नहीं कर सकते ।१॥

विज्ञानवादि-बौद्ध एक आकार को अनेक आकारों से करंबित (युक्त) मानते हैं, वे 'अनेकान्त सिद्धान्त' का खण्डन नही कर सकते ॥२॥

भट्ट और मुरारी के अनुयायी प्रत्येक वस्तु को सामान्य-विशेषात्मक मानते हैं, वे 'अनेकान्त सिद्धान्त का' खण्डन नहीं कर सकते ॥३॥

ब्रह्म वेदान्ती परमार्थ से ईश्वर को बद्ध और व्यवहार से उसको अबद्ध मानते हैं, वे अनेकान्त सिद्धान्त का खण्डन नहीं कर सकते ॥४॥

वेद भी स्याद्‌वाद का खण्डन नहीं कर सकते क्योंकि वे प्रत्येक अर्थ (विषय) को नयकी अपेक्षा से भिन्न और अभिन्न दोनों मानते हैं। इस प्रकार प्रायः सभी मतावलम्बी स्याद्‌वाद को स्वीकार करते हैं ।|५॥

७. प्रश्नवशादेकस्मिन् वस्तुन्यविरोधेन स्याल्लाञ्छिता विधिनिषेधकल्पना सप्तभङ्गी।

—**जैनसिद्धान्तदीपिका ६।१६**

प्रश्नकर्ता के अनुरोध के एक वस्तु में अविरोधरूप से 'स्यात्' शब्दयुक्त जो विधि-निषेध की कल्पना की जाती है, उसे सप्तभंगी कहते हैं। सप्तभंगी के सात भांगे इस प्रकार हैं—

१ कथञ्चित् घट है, २ कथञ्चित् घट नहीं है, ३ कथंचित् घट है और कथंचित् घट नहीं है, ४ कथंचित् घट अवक्तव्य है, ५ घट कथंचित् है और कथंचित् अवक्तव्य है, ६ घट कथंचित् नहीं है और कथंचित् अवक्तव्य है, ७ घट कथंचित् है, कथंचित् नहीं है और कथंचित् अक्तव्य है।

८. तुंगिया नगरी में ५०० शिष्यों युक्त स्थविर पधारे। श्रावक दर्शनार्थ गए एवं प्रश्न किया—

संजमेणं भंते किं फले ? तवे किं फले ? (भगवन् ! संयम का क्या फल है एवं तप का क्या फल है ?)

स्थविर 'संजमेणं अणण्हफले, तवेणं वोदाणफले।

(संयम का फल अनास्रव होना है और तप का फल कर्मशुद्धि है।)

श्रावक—यदि ऐसा ही है तो साधु देवलोक में किससे उत्पन्न होते हैं ?

कालियपुत्त ने कहा—पूर्वतप से,

महिल ने कहा—पूर्वसंयम से,

आनन्द ने कहा—पूर्वकर्म शेष रह जाने से,

काश्यप ने कहा—द्रव्यादि विषय के संग से।

भिन्न-भिन्न उत्तर सुनकर श्रावक कुछ सोच ही रहे थे कि ज्येष्ठस्थविर ने कहा—पूर्वसंयम, पूर्वतप, पूर्वकर्म और संग, स्वर्ग में उत्पन्न होने के ये चारों ही कारण है, अतः चारों मुनियों का उत्तर सत्य है। मात्र अपेक्षा-भेद है। सुनकर श्रावक संतुष्ट हुए।

उपरोक्त चर्चा सुनकर गौतम ने महावीर प्रभु से पूछा, उन्होंने भी यही उत्तर दिया।

(आज यदि भिन्न-भिन्न संप्रदाय एक-दूसरे का खण्डन न करके स्याद्वाददृष्टि से चिन्तन करने लग जायें तो वैर-विरोध नष्ट होकर एकता हो जाय।)

—**भगवती सूत्र २।५ के आधार पर**

◆ तीन देवों के नामांकित द्वारों से तीन मनुष्य मंदिर में गए—ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश का पृथक्-पृथक् पक्ष लेकर वाद-विवाद करने लगे। अन्त में पुजारी द्वारा (शिल्पी की कारीगरी से ही तीन रूप दीखते हैं, वस्तुतः एक ही मूर्ति है।) समझाये जाने पर शान्त हुए।

◆ रेल में भिन्न-भिन्न देशों के यात्री अंगूरखाना चाहते थे, लेकिन भाषा भिन्न होने से अरबी उसे **एनब**, तुर्की **उजम**, अंग्रेजी **ग्रेप्स** और हिन्दुस्तानी अंगूर नाम से पुकार रहा था। स्टेशन आया और सबने एक ही वस्तु (अंगूर) खाई। वास्तव में भाषा की अपेक्षा से भिन्नता थी।

●

उत्सर्ग-अपवाद

१. जावइया उस्सग्गा, तावइया चेव हुंति अववाया।
जावइया अववाया, उस्सग्गा तत्तिया चेव ॥

—बृहत्कल्पभाष्य ३२२

जितने उत्सर्ग (निषेधवचन) हैं, उतने ही उनके अपवाद (विधि-वचन) भी हैं। और जितने अपवाद हैं, उतने उत्सर्ग भी हैं।

२. उस्सग्गेण णिसिद्धाणि, जाणि दव्वाणि संथरे मुणिणो।
कारणजाए जाते, सव्वाणि वि ताणि कप्पंति ॥

—निशीथभाष्य ५२४५ तथा बृहत्कल्पभाष्य ३३२७

उत्सर्गमार्ग में समर्थ मुनि को जिन बातों का निषेध किया गया है, विशेष कारण होने पर अपवादमार्ग में वे सब कर्तव्यरूप से विहित हैं।

३. णवि किंचि अणुण्णायं, पडिसिद्धं वावि जिणवरिंदेहिं।
एसा तेसिं आणा, कज्जे सच्चेण होयव्वं ॥

—निशीथभाष्य ५२४८ तथा बृहत्कल्पभाष्य ३३३०

जिनेश्वरदेव ने न किसी कार्य की एकान्त अनुज्ञा दी है और न एकान्त निषेध ही किया है। उनकी आज्ञा यही है कि साधक जो भी करे, वह सच्चाई, प्रामाणिकता के साथ करे।

४. निक्कारणम्मि दोसा, पडिबंधे कारणम्मि णिद्दोसा।

—निशीथभाष्य ५२८४

बिना विशिष्ट प्रयोजन के अपवाद दोषरूप है, किन्तु विशिष्ट प्रयोजन की सिद्धि के लिए वही निर्दोष है।

५. एगंतेण निसेहो, जोगेसु न देसिओ विही वाऽपि।
दलिअं पप्प निसेहो, होज्ज विही वा जहा रोगे॥

—ओघनिर्युक्ति ५५

जिनशासन में एकान्तरूप से किसी भी क्रिया का न तो निषेध है, और न विधान ही है। परिस्थिति को देखकर ही उनका निषेध या विधान किया जाता है, जैसा कि रोग में में चिकित्सा के लिए।

●

७

सिद्धान्त

१. अनुभव के आधार पर ही सिद्धान्त बनते हैं।

—नाथजी

२. सिद्धान्त सड़क है, व्यक्ति उस पर चलनेवाला है। सिद्धान्त बड़ा क्यों? रास्ता है। व्यक्ति बड़ा क्यों? बतानेवाला है। हीरा बड़ा क्यों? रत्न है! जौहरी बड़ा क्यों? परीक्षक है। ऐसे ही गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र और राजा-प्रजा के विषय में भी समझना चाहिये।

३. जं मयं सव्वसाहूणं, तं मयं सल्लकत्तणं।

—सूत्रकृतांग १५।२४

जो सिद्धान्त सभी साधुओं द्वारा मान्य है—वही माया, निदान एवं मिथ्यादर्शनरूप शल्य को छेदनेवाला है।

४. महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त लचीले होने आवश्यक हैं।

—लिंकन

५. वास्तविकता के द्वारा ही सिद्धांत कार्यरूप में परिणत हो पाते हैं। —कूपर

६. मनुष्य की सच्चाई का एकमात्र प्रमाण यह है कि वह अपने सिद्धान्त पर अपना सब कुछ स्वाहा करने को तत्पर रहे। —लावेल

७. कोई भी मनुष्य सत्रहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में एक साथ नहीं रह सकता। —कर्लाइल

८. भुङ्क्ते न केवली न स्त्री-मोक्षमाहु दिगम्बराः।

—विवेक-विलास

दिगम्बर जैन कहते हैं कि केवलज्ञानी भोजन नहीं करते और स्त्री को मोक्ष नहीं मिलता।

९. मैं मानता हूं धर्मशास्त्रों में,
ऊंचे-ऊंचे और अच्छे विचार हैं।
धार्मिक लोग पूजा-पाठ और-
क्रियाकाण्डों में वैसे बरकरार हैं।
लेकिन बात तो सारी-
इसी सवाल पर आकर अटक जाती है,
कि उन सिद्धान्तों पर कुर्बान-
होने के लिए कौन-कौन तैयार हैं?

—'खुले आकाश' से

१०. **वेद पौरुषय—**

ताल्वादिजन्मा ननु वर्णवर्गो,
वर्णात्मको वेद इति स्फुटं च।
पुंसश्च ताल्वादि ततः कथंस्या-
दपौरुषेयोऽयमिति प्रतीतिः॥

वर्णों का समूह तालु आदि से उत्पन्न होता है। वेद वर्णात्मक है—यह स्पष्ट है। तालु आदि पुरुष के होते हैं फिर वेद अपौरुषेय (पुरुष के वगैर उत्पन्न होनेवाले) कैसे कहे जा सकते हैं?

★

चारित्र

१. चयरित्तकरं चारित्तं होइ। —**उत्तराध्ययन २८।३३**

कर्मों के चय-राशि को रिक्त करने के कारण **चारित्र** कहलाता है!

२. चर्यते-प्राप्यते मोक्षोऽने नेति चारित्रम्।

—**उत्तराध्ययन २८।२ टीका**

इसके द्वारा मोक्ष प्राप्त किया जाता है अतः यह **चारित्र** कहलाता है।

३. चरिताऽऽज्ञैव चारित्रम्। —**योगसार**

ग्रहण की हुई प्रतिज्ञा को शुद्ध पालना ही **चारित्र** है।

४. चारित्तं समभावो। —**पञ्चास्तिकाय १०७**

समभाव ही **चारित्र** है।

५. सद्धाविरियसाधनं चारित्तं। —**विसुद्धिमग्ग-१।२६**

श्रद्धा और वीर्य (शक्ति) का साधन (स्रोत) **चारित्र** है।

६. तत्त्वरुचिः सम्यक्त्वं, तत्त्वप्रख्यापकं भवेज् ज्ञानम्।
पापक्रियानिवृत्ति - श्चारित्रमुक्तं जिनेन्द्रेण ॥

—**ज्ञानार्णव, पृष्ठ ६१**

जिनेन्द्र भगवान ने तत्त्वविषयक रुचि को **सम्यग्दर्शन**, तत्त्वविषयक विशेषज्ञान को **सम्यग्ज्ञान** और पापमय क्रिया से निवृत्ति को **सम्यक्चारित्र** कहा है।

७. सर्वसावद्ययोगानां, त्यागश्चारित्रमिष्यते।

—योगशास्त्र

सब प्रकार के सावद्ययोगों का त्याग करना ही **चारित्र** है।

८. चारित्र दो प्रकार से बनता है—आपकी विचारधारा से और आपके अपने समय बिताने के ढंग से।

—जो० हावेज

९. चारित्रनिर्माण उससे होता है, जिसके लिए आप दृढ़तापूर्वक खड़े होते हैं। सम्मान उससे मिलता है, जिसके लिए आप गिर पड़ते हैं। **—बूलकोट**

१०. चारित्र सम्बन्धी उन्नति का अर्थ है खुदी से खुदी को मिटाने की तरफ बढ़ना ! **—हार्टले**

११. चारित्र संग (साथ) में विकसित होता है और बुद्धि एकान्त में। **—गेटे**

१२. प्रत्येक मनुष्य के चरित्र के तीनरूप होते हैं—एक तो जैसा कि वह स्वयं समझता है, दूसरा जैसा कि उसे दूसरे व्यक्ति समझते हैं और तीसरा जैसा कि वह वास्तव में है। **—अल्फान्सीकर**

१३. चारित्र के लिए उतनी कोई घातक चीज नहीं, जितने अपूर्ण कार्य। **—ड० ला० जार्ज**

१४. चारित्र एक श्वेत कागज है जो एक बार कलंकित होने पर पूर्ववत् उज्ज्वल होना कठिन है।

६ चारित्र का महत्त्व

१. कि मुत्तमं ? सच्चरितं यदस्ति । —शंकर-प्रश्नोत्तरी

क्या वस्तु उत्तम है ? जो सच्चरित्र है, वही ।

२. बुद्धि से चारित्र बढ़कर है । —इमर्सन

३. चारित्र एक ऐसा हीरा है जो अन्य सभी पाषाणखंडों को काट डालता है । —बारटल

४. जिनेश्वरैस्तद् गदितं चरित्रं, समस्तकर्मक्षयहेतुभूतम् ।

—सुभाषितरत्नसन्दोह

चारित्र समस्त कर्मों का क्षय करनेवाला है—ऐसा जिनेश्वर देवों ने कहा है ।

५. चारित्र वृक्ष है और प्रतिष्ठा छाया ।

—इब्राहिम लिंकन

६. जीवन का लक्ष्य सुख नहीं, चारित्र है । —बीचर

७. चरित्तं खलु धम्मो, धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो ।
मोहक्खोहविहीणो, परिणामो अप्पणो हु समो ।।

—प्रवचनसार १।७

चारित्र ही वास्तव में धर्म है, और जो धर्म है, वह समत्व है । मोह और क्षोभ से रहित आत्मा का अपना शुद्ध परिणमन ही समत्व है ।

८. मनुष्य की सफलता-असफलता का द्योतक चारित्र ही है यदि वह सफल है तो जीवन सफल है अन्यथा असफल ।

—**रोमो**

९. कुलीनमकुलीनं वा, वीरं पुरुषमानिनम्,
चारित्रमेव व्याख्याति, शुचिं वा यदि वा शुचिम् ।

—**वाल्मीकिरामायण** २।१०९।४

मनुष्य के चारित्र (आचरण) से ही पता चलता है कि यह कुलीन है या कुलहीन, सच्चा वीर है या यों ही डींगे मारनेवाला तथा पवित्र है या अपवित्र ।

१०. सम्यक्चारित्र के बिना इन्सान बिना छत का मकान है ।

११. चारित्र के बिना जीवन रोगन की हुई खोखली लट्ठी है ।

१२. धर्म, उपदेश, कविता, चित्र, नाटक आदि किसी भी चीज का बिना चारित्र के मूल्यांकन नहीं होता ।

—**जे० जी० हालेण्ड**

१३. शिक्षा नहीं अपितु चारित्र ही मनुष्य की सर्वोच्च आवश्यकता है । —**स्पेन्सर**

१४. स पुमान् पटावृतोऽपि नग्न एव,
यस्य नास्तिसच्चारित्रमावरणम् ।
स नग्नोऽप्यनग्न एव,
यो भूषितः सच्चारित्रेण ।।

—**नीतिवाक्यामृत** २६।५१-५२

जो सदाचाररूप वस्त्र से अलंकृत नहीं है, वह सुन्दर वस्त्रों से वेष्टित होने पर भी नग्न ही है। सदाचार से विभूषित शिष्ट-पुरुष नग्न होने पर भी नग्न नहीं गिना जाता।

१५. चारित्र शुद्धिस्तु मता दुरापा।

चारित्र की शुद्धि दुष्प्राप्य है।

★

१० ज्ञान के साथ चारित्र आवश्यक

१. बिना चारित्र का ज्ञान शीशे की आँख के समान केवल दिखाने के लिये है। **—स्विनॉक**

२. चारित्रहीन-बौद्धिकज्ञान सुगन्धित शव के समान है।
—गांधी

३. No Knowledge In power Unless put in-to Action.
नो नॉलेज इन पावर अनलेस पुट इन-टु ऐक्सन।
—अंग्रेजी कहावत

क्रियाशून्य ज्ञान शक्तिशाली नहीं है।

४. सौ रुपयों की नौली में निन्नानबें रुपये **चारित्र** हैं और एक रुपया **ज्ञान** है। **—श्रीकालूगणी**

५. सुबहुं पि सुयमहीयं, किं काही चरणविप्पहीणस्स।
अंधस्स जहा पलिता, दीवसयसहस्स - कोडीवि।।
—विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ११५२

चारित्रहीन पुरुष को बहुत से शास्त्रों का अध्ययन भी क्या लाभ दे सकता है? क्या लाखों दीपकों का जलना भी कहीं अंधे को दीखने में सहायक हो सकता है?

६. क्रियाविहीनाः खरवद्वहन्ति। **—सुश्रुत**
क्रिया-चारित्रहीन व्यक्ति गदहे के समान मात्र ज्ञान का बोझा ढोनेवाला है।

७. जहा खरो चंदणभारवाही, भारस्स भागी न हु चंदणस्स,
एवं खु नाणी चरणेण हीणो, भारस्स भागी न हु सुग्गईए।

—विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ११५८

जैसे चन्दन का भार ढोनेवाला गदहा केवल भार का ही भागी है। चन्दन की शीतलता उसे नहीं मिल सकती। ऐसे ही चारित्रहीन ज्ञानी का ज्ञान केवल भाररूप है। वह सुगति का अधिकारी नही होता।

११ चारित्र की रक्षा

१. जाइमरणं परिन्नायं, चरे संकमणे दढे ।

—आचारांग २।३

जन्म-मरण के स्वरूप को भलीभाँति समझकर चारित्र में दृढ़ होकर विचरना चाहिए ।

२. वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्, वित्तमायाति याति च ।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो, वृत्ततस्तु हतो हतः ।।

—विदुरनीति ४।१३०

यत्नपूर्वक चारित्र की रक्षा करो, धन तो आता है, चला जाता है । धनहीन व्यक्ति वास्तव में क्षीण नहीं है, किन्तु जो चारित्र से क्षीण हो गया, वह तो सचमुच ही मर गया ।

३. If wealth is lost nothing is lost.
If health is lost something is lost.
If chractor is lost everything is lost.
इफ वैल्थ इज लोस्ट नथिंग इज लोस्ट ।
इफ हैल्थ इज लोस्ट समथिंग इज लोस्ट ।
इफ करेक्टर इज लोस्ट एवरीथिंग इज लोस्ट ।

—अंग्रेजी कहावत

धन खोया कुछ भी नहीं खोया, तन खोया कुछ खोया ।
अगर खो दिया सच्चरित्र को, तो धन ! सब कुछ खोया ।।

—दोहा-संदोह

४. ऊँचे गिरि से जो गिरे, मरे एक ही बार।
चरित्र गिरि से जो गिरे, बिगड़े जन्म हजार ॥

—**आचार्य उमाशंकर**

५. प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत, नरश्चरितमात्मनः ।
किं नु मेपशुभिस्तुल्यं, किं नु सत्पुरुषैरिति ॥

—**शार्ङ्गधर**

मनुष्य को प्रतिदिन अपना आचरण देखना चाहिए और सोचना चाहिए कि मेरा आचरण पशुओं के समान कितना है और सत्पुरुषों के समान कितना है ?

६. मां जातिं पुच्छ, चरणं च पुच्छ ।
कट्ठाहवे जायति जातवेदो ॥

—**संयुत्तनिकाय** १।७।६

जाति मत पूछो, आचरण (कर्म) पूछो ! लकड़ी से भी आग पैदा हो जाती है ।

७. क्रियैव फलदा पुंसां, न ज्ञानं फलदं मतम् ।
यतः स्त्री-भक्ष्य-भोगज्ञो, न ज्ञानात् सुखभाग् भवेत् ॥

वास्तव में क्रिया ही फल देनेवाली है, ज्ञान नहीं, क्योंकि स्त्री, भोजन और भोग का जानकार भी मात्र ज्ञान से सुखी नहीं होता, उसे क्रिया करनी ही पड़ती है ।

८. शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा,
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् ।
सुचिन्तितं चौषधमातुराणां,
न नाममात्रेण करोत्यरोगम् ॥

शास्त्र पढ़कर भी वे मूर्ख हैं, जो तदनुसार क्रिया (चारित्र) का अनुसरण नहीं करते। वास्तव में जो ज्ञानपूर्वक क्रिया करता है, वही विद्वान् है। औषधि के चिन्तन मात्र से रोगियों का रोग नहीं मिटता, उसका सेवन करना जरूरी है।

९. गतिं बिना पथज्ञोपि, नाप्नोति पुरमीप्स्तिम्।

गन्तव्य स्थान की ओर गमन किये बिना मार्गज्ञाता भी मन चाहे शहर में नहीं पहुँच सकता, वैसे ही क्रिया-चारित्र के बिना मनुष्य केवल ज्ञान से ही मुक्ति नहीं पा सकता।

१०. नाविरतो दुश्चरितान्, नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमनसो वापि, प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥

—**कठोपनिषद् १।३।१४**

जो बुरे आचरणों से नहीं हटा है, जो अशान्त (उग्र) है, असमाधियुक्त-अशान्तमनवाला है, वह केवल प्रज्ञान-बुद्धिवाद से इस आत्मतत्त्व को नहीं पा सकता।

११. चरणगुणविप्पहीणो, वुड्डइ सुबहुंपि जाणंतो।

—**आवश्यकनिर्युक्ति ९७**

जो साधक चारित्र के गुण से हीन है, वह बहुत से शास्त्र पढ़ लेने पर भी संसार समुद्र में डूब जाता है।

१२. देशोन चोंदहपूर्वधारी मुनि भी चारित्र से हीन होकर नरक-निगोद में चले जाते हैं और मात्र अष्ट प्रवचन-माता के आराधक मुनि चारित्र के बल से मुक्त हो जाते हैं। — **जैनशास्त्र**

१३. जानन्ति तत्त्वं प्रभवन्ति कर्तुं,
ते केपि लोके विरला मनुष्याः।

—**हृदयप्रदीप**

तत्त्व को जैसा जानते हैं, उसी प्रकार आचरण कर सकनेवाले व्यक्ति विरले हैं।

१४. सुननेवाले करोड़ों हैं, सुनानेवाले लाखों हैं, समझनेवाले हजारों हैं, किन्तु समझे मुताबिक आचरण करनेवाले विरले ही हैं।

१५. आज धर्म का मात्र लेबल है। सील मोहर कायम रहते हुए भी माल गायब है।

१२ चारित्र से लाभ

१. चरित्तेण निगिह्णाइ। —उत्तराध्ययन २८।३५

चारित्र से आत्मा आस्रवों का निग्रह करती है।

२. चरित्तसंपन्नयाए सेलेसीभावं जणयइ।

—उत्तराध्ययन ६।६१

चारित्र की संपन्नता से जीव शैलेशीभाव अर्थात् चौदहवें गुण-स्थान की अडोलस्थिति को प्राप्त होता है।

३. अपनी अपूर्णता दूर करनेवाला व्यक्ति एक दिन समाज की अपूर्णता दूर करने में भी समर्थ हो सकता है।

—धूमकेतु

४. उत्तम व्यक्ति शब्दों में सुस्त और चारित्र में चुस्त होता है। —कन्फ्यूसियस

५. यदि मैं अपने चारित्र की परवाह करूंगा तो कीर्ति स्वयं अपनी परवाह करेगी। —डी० एल० मूडी

६. चारित्रवान व्यक्ति अपना दोष सुनना पसन्द करते है, चारित्रहीन नहीं।

★

१३ त्याग

१. त्याग एव हि सर्वेषां, मुक्तिसाधनमुत्तमम् ।

—भाल्लवीय श्रुति

सभी के लिये त्याग ही मुक्ति-प्राप्ति का उत्तम साधन है ।

२. त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ।

त्याग से शाश्वत शान्ति मिलती है ।

३. त्याग कियां आवै तुरत, जो कोई वस्तु जरूर ।
आश कियां थी, 'आशिया' ! जाती देखो दूर ।

—राजस्थानी दोहा

४. नास्ति विद्यासमं चक्षुः, नास्ति सत्यसमं तपः ।
नास्ति रागसमं दुःखं, नास्ति त्यागसमं सुखम् ।

—महाभारत शान्तिपर्व १२

विद्या के समान चक्षु नहीं, सत्य के समान तप नहीं, राग के समान दुःख नहीं और त्याग के समान सुख नहीं ।

५. मेवै खाओ त्याग के, जो चाहो आराम ।
इन भोगों में क्या धरा, (है) नकली आम-बदाम ।।

—दोहा-संदोह

६. चिकनी पट्टी पर खड़िया लगाए बिना लिखा नहीं जाता, भोगी आत्मा पर त्याग की खड़ी लगाओ !

७. त्याग नाग नहीं, सिंह-बाघ नहीं, माग नहीं भयवारो रे।
हृदय-विराग भाग-जागरणा, क्यूं कंपै मन थांरो रे ।
श्रावकव्रत धारो ! —आचार्य तुलसी

★

१४ त्याग के भेद्

१. नियतस्य तु संन्यासः, कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्याग-स्तामसः परिकीर्तितः ।।७।।
दुःखमित्येव यत्कर्म, कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।
स कृत्वा राजसं त्यागं, नैव त्यागफलं लभेत् ।।८।।
कार्यमित्येव यत्कर्म, नियतं क्रियतेऽर्जुन !
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव, स त्यागः सात्त्विको मतः ।।९।।

—**गीता अध्याय १८**

शास्त्रोक्त विधि से निश्चित जिस कर्म का त्याग करना योग्य नहीं है। मोहवश उस कर्म को छोड़ देना **तामसत्याग** कहा गया है। ।।७।।

जो कर्म है वह सब दुःखरूप ही है ऐसे सोचकर शारीरिक-क्लेश के भय से जो व्यक्ति कर्मों का त्याग करता है, वह **राजस त्याग** है। त्याग करने पर भी उसका फल नहीं मिलता ।।८।।
आसक्ति एवं फल का त्याग करते हुए मात्र कर्तव्य समझकर जो शास्त्रोक्तविधि से निश्चित कर्म किया जाता है, वह **सात्त्विकत्याग** है ।।९।।

२. ण हि णिरवेक्खो चागो,
ण हवदि भिक्खुस्स आसयविसुद्धी ।
अविसुद्धस्स हि चित्ते,
कहं णु कम्मक्खओ होदि ।।

—**प्रवचनसारोद्धार** ३।२०

जब तक निरपेक्ष त्याग नहीं होता, तब तक साधक की चित्त-शुद्धि नहीं होती और जब तक चित्तशुद्धि (उपयोग की निर्मलता) नहीं होती, तब तक कर्मक्षय कैसे हो सकता है ?

३. बाहिरचाओ विहलो, अब्भंतरगंथजुत्तस्स।

—भावपाहुड १३

जिसके आभ्यन्तर में ग्रन्थि (परिग्रह) है, उसका बाह्यत्याग व्यर्थ है।

१५ त्यागी

१. वत्थागंधमलंकारं, इत्थिओ सयणाणि य।
अच्छन्दा जे न भुंजंति, न से चाइत्ति बुच्चइ ॥
जेय कंते पिए भोए, लद्धे विप्पिट्ठि कुब्बइ,
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइत्ति बुच्चइ ॥

—दशवैकालिक २।२-३

वस्त्र, सुगंधित द्रव्य, अलंकार, स्त्री और शयन, जो इन चीजों को विवशता से नहीं भोगता—वह त्यागी नहीं है, लेकिन सच्चा त्यागी वही है, जो मनोहर एवं प्रिय भोगों को प्राप्त होकर भी पीठ दिखाता है।

२. नहि देहभृतां शक्यं, त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
किंतु कर्मफलत्यागी, स त्यागी त्यभिधीयते ॥

—गीता० १८।११

समस्त कर्मफलों का त्याग कर देना देहधारियों के लिये शक्य नहीं है, अतः कर्मफलों में आसक्ति-ममता का त्याग करनेवाला ही वास्तव में त्यागी है !

३. त्याग करता हूं फिर भी जी जलता क्यों रहता है ?
देख ! फल की आशा तो नहीं है ?

४. क्रोध-लोभ-भय आदि के वश त्याग करनेवाला वास्तव में त्यागी नहीं है !

५. अप्राप्तेऽर्थे भवति सर्वोऽपि त्यागी।

—नीतिवाक्यामृत

अप्राप्त वस्तु का त्यागी हर एक हो सकता है।

१६ प्रत्याख्यान

१. परिहरणीय वस्तु प्रति-आख्यानं प्रत्याख्यानम् ।

—आवश्यक मलयगिरि, अ० १

त्याज्य वस्तु के प्रति गुरुसाक्षी से निषेधात्मक कथन को प्रत्याख्यान कहते हैं !

२. सेणं पच्चक्खाणे किं फले ?
गोयमा ! संजमे फले । **—भगवती २।५**

भगवन् ! प्रत्याख्यान से क्या फल ?
गौतम ! प्रत्याख्यान से संयम का फल मिलता है ।

३. पच्चक्खाणेणं आसवदाराइं निरुंभइ,
पच्चक्खाणेणं इच्छानिरोहं जणयइ ।

—उत्तराध्ययन २६।१३

प्रत्याख्यान से आश्रवद्वारों का तथा इच्छा-अभिलाषा का निरोध होता है ।

४. जो जीवादिपदार्थों का ज्ञान किए बिना जीवहिंसा का प्रत्याख्यान करता है, उसका प्रत्याख्यान दुष्प्रत्याख्यान है एवं जो ज्ञानपूर्वक करता है, उसका प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान है । **—भगवती ७।२**

५. पंचविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, तं जहा—(१) सद्दहणसुद्धे, (२) विणयसुद्धे, (३) अणुभासणासुद्धे, (४) अणुपालणा सुद्धे, (५) भावसुद्धे ।
—**स्थानांग ५।३**

प्रत्याख्यान पाँच प्रकार का कहा है—

(१) श्रद्धान्शुद्ध—प्रत्याख्यान में पूरी पूरी श्रद्धा रखना ।

(२) विनयशुद्ध—प्रत्याख्यान गुरु के सम्मुख विनयपूर्वक करना ।

(३) अनुभाषणाशुद्ध—गुरु के पीछे से प्रत्याख्यान का पाठ शुद्धरूप से स्पष्ट बोलना ।

(४) अनुपालनाशुद्ध—संकट के समय प्रत्याख्यान का शुद्ध पालन करना तथा विपत्तिकाल में भी उसे नहीं तोड़ना ।

(५) भावशुद्ध—प्रत्याख्यान के प्रति शुद्धभाव रखना, दूषित-भाव न होने देना ।

६. दसविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, तं जहा—
अणागय-मइक्कंतं, कोडीसहियं नियंटियं चेव ।
सागामणागारं, परिमाणकडं निरवसेसे ।
संकेयं चेव अद्धाए, पच्चक्खाणं भवे दसहा ।।
—**स्थानांग १०।७४८ तथा भगवती ७।२**

दस प्रत्याख्यान कहे हैं—

(१) अनागतप्रत्याख्यान, (२) अतिक्रान्तप्रत्याख्यान, (३) कोटिसहितप्रत्याख्यान, (४) नियन्त्रितप्रत्याख्यान, (५) सागार-प्रत्याख्यान, (६) अनागारप्रत्याख्यान, (७) परिमाणकृत-प्रत्याख्यान, (८) निरवशेषप्रत्याख्यान, (९) संकेतप्रत्याख्यान, (१०) अद्धाप्रत्याख्यान ।

७. णमुक्कारं पोरसीए, पुरिमड्ढेगासणेगट्ठाणे य।
आयंबिले भत्तट्ठे, चरमे य अभिग्गहे विगइ ॥

—आवश्यकनियुक्ति ६।१५९७

काल की अपेक्षा से दस प्रत्याख्यान—

(१) नमुक्कारसी, (२) पौरुषी, (३) पुरिमार्ध, (४) एकासन, (५) एकस्थान, (६) आचामाम्ल, (७) उपवास, (८) चरम-प्रत्याख्यान, (९) अभिग्रह, (१०) निर्विकृति (नीवी)।

★

१७ आचार (आचरण)

१. शीलवृत्तफलं श्रुतम् । —महाभारत, सभापर्व ५।१२३

ज्ञान का फल शील एवं आचार है ।

२. सारो परूवणाए चरणं, तस्स वि य होइ निव्वाणं ।

—आचारांगनिर्युक्ति, गाथा १७

परूपणा का सार है—आचरण और आचरण का सार (अन्तिमफल) है—निर्वाण ।

३. अंगाणं किं सारो ? आयारो ।

—आचारांगनिर्युक्ति गाथा १६

जिनवाणी (अंगसाहित्य) का क्या सार है ? 'आचार' !

४. जीवाहारो भण्णइ आयारो ।

—दशवैकालिक निर्युक्ति २१५

तप-संयमरूप आचार का मूल आधार आत्मा (आत्मश्रद्धा) ही है ।

५. आचारः प्रथमो धर्मो, नृणां श्रेयस्करो महान् ।

—यजुर्वेद, मनुस्मृति १।१३८

उत्तम आचार ही सबसे पहला धर्म है और मनुष्यों के लिए महानकल्याणकारी है ।

६. आचारलक्षणो धर्मः, सन्तश्चारित्रलक्षणाः ।
साधूनां च यथावृत्ता-मेतदाचारलक्षणम् ।।

—महाभारत अनुशासनपर्व, अध्याय १०४

धर्म का स्वरूप आचार है । सदाचार से युक्त पुरुष ही संत है । संतों का जो जीवनक्रम है, वही आचार है ।

७. आचाराल्लभते ह्यायु-राचासदीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्य-माचारो हन्त्यलक्षणम् ।।

—मनुस्मृति ४।१५६

उत्तम आचार से पूर्णआयु इच्छित सन्तान और अक्षयधन प्राप्त होता है एवं बुराइयों का नाश होता है ।

८. सदाचार के तीन फल हैं—

(१) लोक में कीर्ति बढ़ती है, (२) सम्पत्ति की वृद्धि होती है, (३) मरने के बाद सुगति मिलती है ।

९. आचारः कुलमाख्याति, वपुराख्याति भोजनम् ।
संभ्रमः स्नेहमाख्याति, देशमाख्याति भाषणम् ।।

आचार व्यक्ति का कुल बतलाता है और शरीर भोजन (खुराक) बतलाता है । संभ्रम स्नेह का और भाषण देश का परिचय देता है ।

१०. मनुष्यों के कर्म उनके विचारों के सर्वाधिक परिचायक हैं ।

सदाचार-दुराचार—

११. पंचविहे आयारे पण्णत्ते, तं जहा—
णाणायारे, दसंणायारे, चरित्तायारे, तवायारे, विरियायारे ।

—स्थानांग ५।२।४३२

पाँच प्रकार का आचार कहा है—

(१) ज्ञानाचार—ज्ञान को विधियुक्त पढ़ना।

(२) दर्शनाचार—शंका आदि दोषों को त्यागकर शुद्ध सम्यक्त्व का आराधन करना।

(३) चारित्राचार—समिति-गुप्ति का शुद्ध पालन करना।

(४) तपआचार—आत्मकल्याण के लिए बारह प्रकार की तपस्या करना।

(५) वीर्याचार—धार्मिक कार्यों में शक्ति लगाना।

१२. **सदाचार-दुराचार—**

सदाचार सोना है, दुराचार कथीर (राँगा) है।
सदाचार स्वर्ग की सड़क है, दुराचार नरक का द्वार है।
सदाचार सुख का खजाना है, दुराचार दुःख का पहाड़ है।
सदाचार सच्चा शृंगार है, दुराचार जाज्वल्यमान अंगार है।
सदाचार सच्ची श्रीमत्ता है, दुराचार दरिद्रता है।
सदाचार सच्चा भूषण है, दुराचार भारी दूषण है।
सदाचार सच्ची विद्वित्ता है, दुराचार निरीमूर्खता है।
सदाचार सच्चा मित्र है, दुराचार कट्टर शत्रु है।

—**एक विचारक**

१३. सदाचार के बिना जीवन विटामिनशून्य भोजन है।

१४. सुना है—बूढ़े सत्य ने अपने जवान और इकलौते बेटे सदाचार की आकस्मिक मौत से दुखी होकर आत्म-हत्या करली है।

और यह भी सुना है कि बड़े सबेरे ही राजभवन में एक शपथग्रहणसमारोह में जवान और लोकप्रिय असत्य के लाड़ले सपूत भ्रष्टाचार ने राष्ट्र के प्रति पूरी ईमानदारी बरतने की शपथ ले ली है।

—श्री रविदिवाकर

●

१८ आचरण बिना ज्ञान

१. अध्यात्मशास्त्र की बड़ी-बड़ी बातें बनानेवाले बीड़ी-सिगरेट गुम होते ही लाल-पीले होने लगते हैं, भगवती के भांगे अंगुलियों पर गिन लेनेवाले श्रावक हराम का पैसा हजम कर जाते हैं, समयसार का निचोड़ निकालनेवाले भाई भाइयों से लड़ते नहीं शरमाते। वेद, उपनिषद्, गीता, पुराण, कुरान व बाइबिल के ज्ञाता रंडियो में भटकने से बाज नहीं आते। अब बतलाइए कि आचरण के सुधरे बिना ज्ञान का क्या मूल्य ?

२. जो कुछ नहीं करता, वह कुछ नहीं जानता, अपने सिद्धान्तों को परखो कि वे अग्निपरीक्षा में खरे उतरते हैं या नहीं। —**एलोयासिस**

१६ आचारवान्

१. अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठा, ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः।
धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा, ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः।
—मनुस्मृति १२।१०३

अज्ञों से ग्रन्थ पढ़नेवाले श्रेष्ठ हैं, उनसे ग्रन्थों को धारनेवाले (याद रखनेवाले) श्रेष्ठ हैं, उनसे ग्रन्थों के रहस्य को जानने-वाले ज्ञानी श्रेष्ठ हैं और ज्ञानियों से तदनुकूल आचरण करने-वाले श्रेष्ठ होते हैं।

२. जो नेक अमल करेगा, वह अपनी राह संवारेगा।
—कुरान० ३०।४४

३. तिष्ठति प्रकृताचारे सैव आर्य इति स्मृतः।

जो प्राकृतिक आचरण का अनुसरण करता है, वही आर्य माना गया है।

४. आयारकुसले।

आचार्यपद के अधिकारी को सबसे पहले आचार-कुशल होना आवश्यक है।

५. जो सीखो उसे अमल में लाओ।
—पहेलवीटैक्सट्स

६. जिसने ज्ञान को आचरण में उतार लिया, उसने ईश्वर को मूर्तिमान कर लिया। —**विनोबा**

७. कौरवों-पाण्डवों का पढ़ाते समय द्रोणाचार्य ने **क्षमाकुरु** यह पाठ पढ़ाया। सबने याद करके सुना दिया। युधिष्ठिर ने कहा—अभी याद नहीं हुआ। गुरु ने धमकाया। दूसरे दिन फिर पूछा। वही उत्तर मिला! द्रोणाचार्य ने उन्हें खूब पीटा। इस प्रकार कई दिन मार खाते-खाते याद हुआ। गुरु के पूछने पर धर्मपुत्र ने रहस्य खोला कि जब तक क्रोध आता रहा तब तक **याद हुआ** यह कैसे कहूँ?

८. चार वेदों के ज्ञाता की अपेक्षा उनको आचरण में लाने-वाला बड़ा है। —**एक विचारक**

९. करनी करै सो पूत हमारा, कथनी करै सो नाती।
रहणी रहै सो गुरु हमारा, हम रहणी के साथी॥
—**कबीर**

१०. गांधी जी जब लन्दन में रहते थे, एक पादरी ने ईसाई बनाने की नीयत से उन्हें भोजन का निमन्त्रण देता तथा उनके लिए खाना अलग बनवाया करता। पादरी के बच्चों ने पूछा—खाना अलग क्यों बनाया जाता है? पादरी ने कहा—ये अहिंसक हैं, मांस नहीं खाते, इसलिए खाना अलग बनाया जाता है। बच्चों ने फिर प्रश्न किया—वे मांस क्यों नहीं खाते? तब पादरी

ने गांधीजी की जीवनचर्या एवं उनकी अहिंसा का विवेचन किया। बच्चे इससे काफी प्रभावित हुए और कहने लगे, पिताजी आज से हम लोग भी मांस नहीं खाएँगे। पादरी महोदय घबराए और उस दिन से गांधीजी को निमन्त्रण देना ही बन्द कर दिया।

★

२० आचारहीन

१. आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः ।

—वाशिष्ठस्मृति-६।३

आचारहीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकते ।

२. अनाचरतो मनोरथाः स्वप्नराज्यसमाः ।

—नीतिवाक्यामृत

आचरण नहीं करनेवालों के मनोरथ स्वप्नराज्य के समान हैं।

३. विचार की भूलवाला मूर्ख है तो आचार की भूलवाला दुष्ट (पापी) है !

—एक विचारक

४. **चन्दन** जन परिचय बढ़ा, त्यों-त्यों बढ़ा विकार ।
हानि पड़ी आचार में, ज्यों-ज्यों बढ़ा प्रचार ॥

५. उसका इरादा अच्छा है, यह व्यर्थ है—यदि वह अच्छा काम न करे !

६. मन राजा सों, करम कमेड़ी सो ।

—राजस्थानी कहावत

●

२१ कथन के समान आचरण आवश्यक

१. यथा वाचि तथा क्रियायाम् ।
कथनी के समान करनी भी होनी चाहिए ।

◆ कहनी करनी एकसार बना, तुलसी तेरापथ पाएँ हम ।
—आचार्य तुलसी

२. करणी है रहणी नहीं, रहणी का घर दूर ।
कहणी तो कारा करे, चारों वेद मजूर ॥
—राजस्थानी दोहा

३. हमें कहना आता है, करना नहीं आता ।
हमें बोलना आता है, चलना नहीं आता ।

४. यह कितनी गलत बात है कि हम मैले रहें और दूसरों को साफ रहने की सलाह दें । **—गांधी**

५. यञ्हि कयिरा तं हि वदे, यं न कयिरा न तं वदे ।
अकरोन्तं भासमाणं, परिजानन्ति पण्डिता ॥
—थेरगाथा ३।२२६

जो कर सके, वही कहना चाहिए, जो न कर सके, वह नहीं कहना चाहिए । जो कहता है पर करता नहीं, उसकी विद्वान् निन्दा करते हैं ।

६. ऐ ईमानवालो ! क्यों कहते हो ऐसी बात, जो करते नहीं ! **—कुरान० ६१।२**

७. हैं विरले नर या जग में,
जो कहें सो करें न, करें सो कहें नां। —**ग्वाल कवि**

८. संसार में तीन प्रकार के पुरुष होते हैं—
(१) पाटल (कटहल) सदृश, जो केवल फलते हैं।
(२) रसाल (आम्र) सदृश, जो फूलते और फलते हैं।
(३) पनस (आक) सदृश, जो केवल फूलते है।
अर्थात् एक वे मनुष्य जो कहते नहीं, करते है। दूसरे कहते है और करते भी हैं। तीसरे केवल कहते हैं, करते नहीं। —**रामचरितमानस**

९. कहणी मीठी खांड सी, करनी विष सम होय।
कहणी सी करणी हुए, तो विष ही अमृत होय॥
—**राजस्थानी दोहा**

१०. शब्द पृथ्वी की पुत्रियाँ हैं और कार्य स्वर्ग के पुत्र।
—**सेमुएल जानसन**

११. यदि वयस्कलोग उन उपदेशों पर अमल करें जो वे बच्चों को देते हैं, तो दुनियां अगले सोमवार को ही स्वर्गतुल्य बन जाए। —**आर० किंग**

१२. न नश्यति तमो नाम, कृतया दीपवार्तया।
न गच्छति विना पानं, व्याधिरौषधिशब्दतः॥
—**विवेकचूड़ामणि**

दीपक की बात करने से अंधेरा नहीं मिटता और औषधि का पान किए बिना औषधि शब्द के उच्चारण करने से रोग नहीं जाता।

१३. मिसरी-मिसरी कह्यां स्यू मुंह मीठो को हुवै नी ।

—राजस्थानी कहावत

१४. लड्डू की बातों से मुंह मीठा नहीं होता, कम्बल की बातों से सर्दी नहीं उड़ती, व्यापार की बातों से लखपती नहीं बना जाता, विवाह की बातों से बहू घर नहीं आती, राज्य की बातों से राज्य नहीं मिलता, विद्या की बातों से विद्वान् नहीं बना जाता। व्रतों की बातों से श्रावक नहीं होता अपितु तदनुसार क्रिया करने से इच्छित वस्तु की प्राप्ति होती है।

—एक विचारक

१५. Fine werds better no Purs nears.

फाइन बर्डस बैटर नो पर्स नियर्स ।

—अंग्रेजी कहावत

खाली बातों से पेट नहीं भरता ।

१६. कहाँ सूखी बातों से हो रेल-पेल,
खली पेलने से न निकलेगा तेल ।
न बाते बनाकर ही बहलाओ जी !
के पानी बिलौने से निकले न घी ।
अमल के मुताबिक सिला हो मुदाम,
के इमली से इमली हो, आमों से आम ।।

—उर्दू शेर

शील

१. सीलं विसयविरागो । — **शीलपाहुड ४०**

इन्द्रियों के विषय से विरक्त रहना शील है ।

२. सिरट्ठो सीलट्ठो, सीतलट्ठो सीलट्ठो ।

—**विसुद्धिमग्गो १।१९**

शिरार्थ (सिर के समान उत्तम होना) शील का अर्थ है । शीतलार्थ (शीतल-शान्त होना) शील का अर्थ है ।

३. सीलं सासनस्स आदि । — **विसुद्धिमग्गो १।७**

शील धर्म का आरम्भ है, आदि है ।

४. सीलं मोक्खस्स सोवाणं । —**शीलपाहुड २०**

शील (सदाचार) मोक्ष का सोपान है ।

५. सीलगन्ध समो गंधो, कुतो नाम भविस्सति ।
यो समं अनुवाते च, पटिवाते च वायति ।।

—**विसुद्धिमग्गो १।२४**

शील की गन्ध के समान दूसरी गंध कहाँ ? जो पवन की अनुकूल और प्रतिकूल दिशाओं में एक समान बहती है ।

६. सीलं बलं अप्पटिमं, सीलं आवुधमुत्तमं ।
सीलमाभरणं सेट्ठं, सीलं कवचमब्भुतं ।।

—**थेरगाथा १२।६१४**

शील श्रेष्ठ आभूषण है और शील रक्षा करनेवाला अद्भुत कवच है ।

७. हिरोत्तप्पे हि सति सीलं उप्पज्जति चेव-तिट्ठति च।
असति नेव उप्पज्जति, न तिट्ठति।

—**विसुद्धिमग्गो** १।२२

लज्जा और संकोच होने पर ही शील उत्पन्न होता है और ठहरता है। लज्जा और संकोच न होने पर शील न तो उत्पन्न होता है और न ठहरता है।

८. सीलपरिधोता पञ्ञा, पञ्ञा परिधोतं सीलं।
यत्थ सीलं तत्थ पञ्ञा, यत्थ पञ्ञा तत्थ सीलं॥

—**दीघनिकाय** १।४।४

शील से प्रज्ञा (ज्ञान) प्रक्षालित होती है, प्रज्ञा से शील (आचार) प्रक्षालित होता है। जहाँ शील है, वहाँ प्रज्ञा है जहाँ प्रज्ञा है वहाँ शील है।

९. जीवदया-दम-सच्चं, अचोरियं बंभचेर-संतोसे।
सम्मद्दंसण-णाणे, तओ य सीलस्स परिवारो॥

—**शीलपाहुड** १९

जीव दया, दम, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, संतोष, सम्यग्दर्शन, ज्ञान और तप—यह सब शील के परिवार हैं अर्थात् शील के अंग हैं।

१०. किकीव अण्डं चमरीव वालधि,
पियं व पुत्तं नयनं व एककं।
तथेव सीलं अनुरक्खमानका,
सुपेसला होथ सदा सगारवा। —**विसुद्धिमग्गो** १।९८

जैसे—टिटहरी अपने अण्डे की, चमरी अपनी पूँछ की, माता अपने इकलौते पुत्र की, काना अपनी अकेली आँख की सावधानी

के साथ रक्षा करता है, वैसे ही अपने शील की अविच्छिन्न-रूप से रक्षा करते हुए उसके प्रति सदा गौरव की भावना रखनी चाहिए।

११. न संतसंति मरणंते, सीलवंता बहुस्सुया।

—उत्तराध्ययन ५।२६

ज्ञानी और सदाचारी आत्माएं मरणकाल में भी त्रस्त अर्थात् भयाक्रान्त नहीं होतीं।

१२. सील-गुणवज्जिदाणं, णिरत्थयं माणुसं जम्म।

—शीलपाहुड १५

शीलगुण से रहित व्यक्ति का मनुष्यजन्म पाना निरर्थक ही है।

१३. सम्पन्नसीला, भिक्खवे विहरथ।

—मज्झिमनिकाय १।६।१

भिक्षुओ ! शील सम्पन्न होकर विचरो !

व्रत

१. व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥

—यजुर्वेद १९।३०

व्रत (आचरण) से मनुष्य को दीक्षा अर्थात् उन्नत जीवन की योग्यता प्राप्त होती है। दीक्षा से दक्षिणा यानी प्रयत्न की सफलता मिलती है। दक्षिणा से अपने जीवन के आदर्शों में श्रद्धा होती है। और श्रद्धा से सत्य की प्राप्ति होती है।

२. भिक्खाए वा गिहत्थे वा, सुव्वए कम्मई दिवं ।

—उत्तराध्ययन ५।२२

साधु हो, चाहे गृहस्थ हो, अच्छे व्रतोंवाला स्वर्ग में जाता है।

३. व्रताभिरक्षा हि सतामलंक्रिया ।

व्रतों को शुद्ध पालना ही सत्पुरुषों का शृंगार है।

४. व्रतों की विधि दुष्कर होने पर भी उसे पालने का प्रयत्न करें !

५. रत्नों के आभूषणों से भी व्रतों की विशेष सम्भाल रखो, अन्यथा वे दूषित होकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाएँगे !

६. व्रत टूटने पर मनुष्य की शान नहीं रहती।

७. **टूटने के भय से व्रत मत छोड़ो !**

जैसे—जूँओं के भय से वस्त्र पहनना नहीं छोड़ते,

भिक्षुओं के भय से भोजन बनाना नहीं छोड़ते, टिड्डियों के भय से खेती करना नहीं छोड़ते, दुर्घटना के भय से मोटर या रेल आदि की सवारी करना नहीं छोड़ते, नुकसान के भय से व्यापार करना नहीं छोड़ते तथा मक्खियों के भय से दूध पीना नहीं छोड़ते, वैसे ही टूटने के भय से व्रत लेना भी नहीं छोड़ना चाहिए, क्योंकि टूटे इंजन, फूटे वर्तन एवं फटे वस्त्र की तरह दूषित व्रत भी प्रायश्चित्त द्वारा पुनः निर्मल हो सकते हैं।

८. सर्वप्रयत्नेन चातुर्मासे व्रती भवेत्। —**भविष्योत्तरपुराण**

चतुर्मास के समय सभी प्रकार के प्रयत्नों से कुछ न कुछ व्रत-नियम अवश्य करना चाहिए।

९. गिहिवासे वि सुव्वए। —**उत्तराध्ययन ५।२४**

धर्मशिक्षासम्पन्न गृहस्थ गृहवास में भी सुव्रती है।

१०. एकादशीव्रत का ढोंग—

(क) भोर उठ स्नान कियो, सेर पक्को दूध पियो,
सैंकड़ों सिंघाड़ें खाये, चित्त तो सवादी है।
दोपहरी में भांग छानी, पाव चीनी सेर पानी,
सोलह शक्करकंदी खाई, खोद्योड़ी नवादी है।
पाव पक्की बरफी खाई, पाव पक्का पेड़ा खाया,
बीसों अमरूद खाये, आई नहीं वादी है।
कहे 'ब्रह्मदत्त' ऐसो व्रत नित्य होय यारों।
कहने की एकादशी पै द्वादशी की दादी है॥

(ख) गिरि नैं छुहारा खाय, किसमिस बिदाम खाय,
सेव नैं सिघाड़ा खाय, सांठै को सवादी है।
गूंदपाक खंड-खीर, बरफी अकब्बरी रु,
कलाकंद खाय, खूब लौटे पड़्यो गादी है।
आम खरबूजा खाय, काकड़ी मतीरा खाय,
मूली बोर सोगरी में, खूब प्रीति साधी है।
नाम तो आहार अल्प, कीन्हों भरपूर भार,
कहने की एकादशी पै द्वादशी की दादी है॥

—भाषाश्लोकसागर

महाव्रत

१. पंच महव्वया पण्णत्ता, तं जहा—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं। जाव सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं।।

—स्थानांग ५।१।३८४

भगवान ने पाँच महाव्रत कहे हैं—(१) सर्वथा जीव-हिंसा से विरत होना, (२) सर्वथा झूठ से विरत होना, (३) सर्वथा चोरी से विरत होना, (४) सर्वथा अब्रह्मचर्य से विरत होना, (५) सर्वथा परिग्रह से विरत होना।

२. अहिंसा-सत्याऽस्तेय-ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमाः।

— पातंजल-योगदर्शन २।३०

(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय, (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह - ये **पांच यम** हैं।

३. एते जाति-देश-काल-समयानवच्छिन्नाः।
सार्वभौमा महाव्रतम्।।

—पातंजल-योगदर्शन २।३१

ये यम जाति, देश, काल, समय के अपवाद से रहित हों और सभी अवस्थाओं में पाले जायें तो महाव्रत कहलाते हैं।

४. इच्चेइयाइं पंच महव्वयाइं राइभोयणवेरमणछट्ठाइं।
अत्तहियट्ठयाए उवसंपज्जित्ताणं विहरामि।।

—दशवैकालिक ४

ये पाँच महाव्रत और छट्ठा रात्रिभोजन-व्रत इनको आत्मा के हित के लिए धारण करके विचरता हूँ। सांसारिक सुखों की इच्छा से नहीं।

५. माहणेण मईमया जामा तिन्नि वियाहिया।

—**आचारांग ८।१**

सर्वज्ञ भगवान ने तीन याम अर्थात् महाव्रत कहे हैं—अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह।

●

२५ सभ्यता

१. सभ्यता चारित्र का वह रूप है, जो मनुष्य को कर्त्तव्य का मार्ग दिखलाता है।

—गांधी

२. नोच्चैर्हसेत्, न शब्दवन्तं मारुतं मुञ्चेत्, नाऽनावृत-मुखो जृम्भां क्षवथुं हास्यं वा प्रवर्तयेत्, न नासिकां कुष्णीयात्, न दन्तान् विघट्टयेत्, न नखान् वादयेत् ॥

—चरकसंहिता सूत्रस्थान ८।१६

सभ्य मनुष्य को चाहिए कि वह अधिक जोर से न हंसे, शब्द-युक्त अपानवायु का त्याग न करे, मुख को बिना ढंके जंभाई, छींक व खांसी को न निकाले, अंगुली से नासिका को न कुरेदे, दांतों को न किटकिटावे एवं नखों को न बजावे।

(अत्रिऋषि द्वारा अग्निवेश को उपदेश)

३. नान्नमद्यादेकवासा, न नग्नः स्नानमाचरेत्।
न मूत्रं पथि कुर्वीत, न भस्मनि न गोव्रजे।

—मनुस्मृति ४।४५

एक वस्त्र से भोजन, नग्न होकर नहाना, मार्ग में, राख के ढेर में तथा गोव्रज में मूत्र करना—ये काम निषिद्ध हैं।

४. यदि तुम मनुष्य को सभ्यता सिखाना चाहते हो तो उसका प्रारम्भ दादी से करो।

—विक्टर ह्यूगो

५. सभ्यता और धर्म की प्राचीनता की दृष्टि से कोई भी राष्ट्र आर्य-सभ्यता की समता नहीं कर सकता।

—हे० एन० थांग

योग

१. मोक्खेण जोयणाओ, जोगो सव्वोवि धम्मववहारो।

—हरिभद्र-योगविंशिका

जो आत्मा को मोक्ष के साथ जोड़ता है, वह सभी धार्मिक व्यवहार योग है।

२. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। —पातंजलयोगदर्शन १।२

चित्तवृत्ति का निरोध योग है।

३. कुशलप्रवृत्तिर्योगः। —बौद्ध

सत्प्रवृत्ति का नाम योग है।

४. समत्वं योग उच्यते। —गीता

समता को योग कहते हैं।

५. यं संन्यासमिति प्राहु-र्योगं तं विद्धि पाण्डव !

—गीता ६।२

पाण्डुनन्दन ! जिसको संन्यास कहते हैं, उसी को तू योग समझ।

६. यम-नियमाऽऽसन-प्राणायाम-प्रत्याहार–धारणा–ध्यान—समाधयोऽष्टावङ्गानि। —पातंजल-योगदर्शन २।२६

योग के आठ अंग हैं—

(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम, (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान, (८) समाधि।

७. **योग की आठ दृष्टियाँ हैं—**

(१) मित्रा, (२) तारा, (३) बला, (४) दीप्रा, (५) स्थिरा, (६) कान्ता, (७) प्रभा, (८) परा—ये क्रमशः योग के आठों अंगों से युक्त होती हैं।

८. **योगदृष्टियों में क्रमशः नहीं होनेवाले ये आठ दोष हैं—**

(१) खेद, (२) उद्वेग, (३) क्षेप, (४) उत्थान, (५) भ्रान्ति, (६) अभ्युदय, (७) सङ्ग (८) आसङ्ग।

९. **योगदृष्टियों में क्रमशः होनेवाले आठ गुण ये हैं—**

(१) अद्वेष, (२) जिज्ञासा, (३) सुश्रूषा, (४) श्रवण, (५) बोध, (६) मीमांसा, (७) प्रतिपत्ति, (८) प्रवृत्ति।

—**योगदृष्टि-समुच्चय**

२७ योग-महिमा

१. मोक्षोपायो योगो ज्ञान-श्रद्धान-चरणात्मकः ।

—**अभिधानचिन्तामणि** १।७७

योग ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय है एवं मोक्ष का उपाय है ।

२. योगः कल्पतरुः श्रेष्ठो, योगश्चिन्तामणिः परः ।
योगः प्रधानं धर्माणां, योगः सिद्धेः स्वयं ग्रहः ॥

—**योगबिन्दु** ३७

योग श्रेष्ठ कल्पतरु है, योग दूसरा चिन्तामणि है । योग सभी धर्मों में उत्कृष्ट है एवं योग्य स्वयं सिद्धि-मुक्ति को ग्रहण करनेवाला है ।

३. आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात्, तच्चयोगादृते नहि ।

—**स्कन्दपुराण**

आत्मा का ज्ञान होने से ही मुक्ति होती है, किन्तु वह ज्ञान योग के विना नहीं होता ।

४. स एवाहं स एवाह—मिति भावयतो मुहुः ।
योगः स्यात्कोऽपि निःशब्दः, शुद्धः स्वात्मनि यो लयः ॥

मैं वही हूं ! मैं वही हूँ ! ऐसी भावना करते-करते जो शुद्ध योग-शब्दरहित हो जाता है, उसे अपनी आत्मा में लय होना कहते हैं ।

५. नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति, न चैकान्तमनश्नतः ।
न चातिस्वप्नशीलस्य, जाग्रतो नैव चार्जुन ! १६ ॥
युक्ताहारविहारस्य, युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दुःखहाः ॥ १७ ॥

—गीता ६

अर्जुन ! न तो अधिकखानेवाले का योग सिद्ध होता है एवं न बिल्कुल न खानेवाले का । न अत्यधिक सोनेवाले का योग सम्पन्न होता है और न अत्यधिक जागनेवाले का ॥१६॥

उसी का योग दुःखनाशक होता है, जिसके आहार-विहार नियमित हैं, कर्म करने में चेष्टा नियमित है तथा सोना और जागना नियमित हैं ॥ १७ ॥

६. असंयतात्मना योगो, दुष्प्राप्य इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता, शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥

—गीता ६।३६

मन को वश में न करनेवाले पुरुष को योग की प्राप्ति बहुत कठिन है । उपाय से आत्मा को वश करनेवाला योग को प्राप्त हो सकता है ।

७. योगास्त्रयो मया प्रोक्ता, नृणां श्रेयो विधित्सया ।
ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च, नोपायोऽन्योस्ति कुत्रचित् ॥

— भागवत ११।२०।६

मनुष्यों के कल्याण की इच्छा से मैंने तीन योग कहे हैं—ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग । इनके अलावा आत्म-कल्याण का कहीं कोई उपाय नहीं है ।

योगशब्द का दूसरे प्रकार में प्रयोग—

८. कायवाङ्-मनोव्यापारो योगः ।

—**जैनसिद्धान्तदीपिका ४।२६**

शरीर, वचन एवं मन के व्यापार को योग कहते हैं ।

९. जोगसच्चेणं जोगं विसोहेइ । —**उत्तराध्ययन २९-५२**

योग-सत्य से जीव योगों की विशुद्धि करता है अर्थात् मन-वचन-काय की प्रवृत्ति को शुद्ध बनाता है ।

१०. जोगं च समणधम्मंमि, जुंजे अनलसो धुवं ।

—**दशवैकालिक ८।४३**

आलस्य को छोड़कर योगों को सदा श्रमणधर्म में जोड़ना चाहिए ।

योगी

१. योगः समाधिः, सोऽस्यास्ति इति योगवान् ।

—उत्तराध्ययन-बृहद्वृत्ति ११।४

योग का अर्थ समाधि है। जिसकी आत्मा में समाधि हो, वह योगवान योगी है।

२. दृष्टिः स्थिरा-यस्य विनापि दृश्यं,
वायुः स्थिरो यस्य विना प्रयत्नात् ।
मनः स्थिरं यस्यं विनावलम्बं,
स एव योगी स गुरुः स सेव्यः ।

—गोरक्षाशतक २८

दृश्य पदार्थों के बिना जिसकी दृष्टि स्थिर है, प्रयत्न किये बिना जिसका पवन स्थिर है एवं किसी भी अवलंबन के बिना जिसका मन स्थिर है, वही योगी है, वही गुरु है और उसी की सेवा करनी चाहिए।

३. ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा, कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी, समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥

—गीता० ६।८

जिसकी आत्मा ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है, जो कूटस्थ है, विजितेन्द्रिय है एवं मिट्टी, पत्थर तथा सुवर्ण को समान समझता है, वह योगी युक्त (भगवत्प्राप्तिवाला) कहा जाता है।

४. आत्मौपम्येन सर्वत्र, समं पश्यति योऽर्जुन !
सुखं वा यदि वा दुःखं, स योगी परमो मतः ॥

—गीता० ६।३२

दूसरों के सुख-दुःख को जो अपने सुख-दुःख के समान समझता है, हे अर्जुन ! वह परमयोगी माना जाता है।

५. किमिदं कीदृशं कस्य, कस्मात् क्वेत्यविशेषयन् ।
स्वदेहमपि नावैति, योगी योगपरायणः ॥

—इष्टोपदेश ४२

योग में लीन योगिराज यह क्या है ? किसका है ? किस कारण से है ? एवं कहां है ? अपने शरीर के प्रति भी ऐसा विशेष विचार नहीं करता।

६. यद् यदाचरितं पूर्वं, तत् तदज्ञानचेष्टितम् ।
उत्तरोत्तरविज्ञानाद् योगिनः प्रतिभासते ॥

— आत्मानुशासन २।१

उत्तरोत्तर विशेष ज्ञान होने से योगिजनों को पूर्वकाल में जो-जो आचरण किए थे, वे अज्ञान की चेष्टाएँ थीं—ऐसे प्रतीत होने लगता है।

७. निर्भयः शक्रवद् योगी, नन्दत्यानन्दनन्दने ।

—ज्ञानसार

इन्द्र की तरह निर्भय योगिराज आत्मानन्दरूप नन्दनवन में मौज़ करता है।

८. चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथ किं तापसः,
किंवा तत्त्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि किम् ?

इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः संम्भाष्यमाणो जनैर्,
न क्रुद्धाः पथि नैव तुष्टमनसो यान्ति स्वयं योगिनः ॥
— भर्तृहरि-वैराग्यशतक २४

क्या यह चाण्डाल है अथवा ब्राह्मण है ? शुद्र है या तपस्वी है ? अथवा क्या कोई तत्त्व के विवेक में चतुर योगिराज है ? ऐसे विचित्र प्रकार के विकल्पों द्वारा लोगों से सभाष्यमाण योगिराज राग-द्वेष न करते हुए अपने संयममार्ग में विहरण करते रहते हैं ।

९. तपस्विभ्योऽधिको योगी, ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी, तस्माद् योगी भवार्जुन !
—गीता ६।४६

तपस्वियों से योगी बड़ा है, शास्त्रज्ञानियों से भी योगी बड़ा है और कर्मकाण्डियों से भी योगी बड़ा है अतः हे अर्जुन ! तू योगी बन ।

१०. राजा जोगी दोनूं ऊँचा, तांबा तुंबा दोनूं सुच्चा ।
तांबा डूबे तुंबा तिरे, राजा जोगी के पैरों पड़े ॥

११. राजा ने एक योगी को सम्मान एवं सुविधापूर्वक राज-महल में रखा ? फिर सन्देह हुआ कि मेरे में और इसमें क्या फर्क है । योगी समझकर महलों से निकल चला । राजा-रानी खोजते-खोजते योगी के पास आए । वह वृक्ष के नीचे सूखी रोटी खा रहा था । राजा ने कहा—चलिए महल में ! योगी ने कहा—पहले तुम यह ग्रामीण भोजन करो । सूखी रोटियां खाते ही राजा-रानी का गला छिल गया एवं उबकाई होने लगी । योगी ने तत्त्व

समझाते हुए कहा—तुम दो ग्रास में ही घबरा गए और मैं जिस प्रसन्नता से तुम्हारा मोहनभोग खाता था, उसी प्रसन्नता से यहां सूखी रोटियां भी खा रहा हूं बस, तुम्हारे और मेरे में इतना ही अन्तर है।

१२. ईहे प्रभु ताको जो **किशन**, प्रभुता को त्यागे,
छारी ना विभूति तो विभूति कहा धारी है।
जो लौं भग तजो नांहि तो लौं भगतजी नांहि,
काहे को गुसाईं जो गुसाईं से न यारी है।
काहे को विराहमन जोको नवि राहमन,
कहा पीर जो पै पर-पीर ना विचारी है।
कैसो वह जोगी जन जाको न विजोगी मन,
आसन ही मार जान्यो आस नहिं मारी है।

—**किसनबावनी**

१३. जनेभ्यो वाक् ततः स्पन्दो, मनसश्चित्तविभ्रमः।
भवन्ति तस्मात्संसर्गं, जनैर्योगी ततस्त्यजेत्॥

—**समाधिशतक**

जहाँ बहुतजनों से सम्पर्क हो, वहाँ बोलना पड़ता है। बोलने से मन में स्पन्दन पैदा होता है और स्पन्दन से संकल्प-विकल्प बढ़ते हैं; अतः योगी को जनसम्पर्क का त्याग करना चाहिए।

२६ योगियों के चमत्कार

१. गोरखनाथ—गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ असम में "महिलासुन्दरी" में फँसे, दो-तीन पुत्र भी हो गये। 'जाग मछेन्दर गोरख आया'—इस प्रकार का आह्वान करके गोरख ने जाकर उन्हें जागृत किया एवं साथ लेकर देश को चले। महिलासुन्दरी ने प्रियतम की झोली में एक सोने की ईंट डालदी। जंगल में मत्स्येन्द्रनाथ फिर-फिरकर पूछते थे—गोरख ! यहां डर तो नहीं है ? गोरख ने तत्त्व समझकर ईंट को फैंक दिया और उत्तर दिया—डर तो पीछे रह गया। गुरु कुछ उदास हुए। शिष्य ने पेशाब करके शिला सोने की बनाई और गुरु का मोह शांत किया।

२. पादलिप्त और सिद्ध नागार्जुन दो भाई थे। सिद्ध नागार्जुन ने स्वर्ण-सिद्धि-रस की एक तुम्बी भेंटरूप में भाई को दी। पादलिप्त ने उसे फेंककर पेशाब द्वारा पत्थर का सोना बनाकर दिखाया।

३. दिल्ली बिड़लामंदिर में एक योगी ने मन्त्र-शक्ति से पानी का दूध, ईंट की मिश्री एवं चम्मच को सोने का

बना दिया। अनेक विदेशी राजदूत भी दर्शकों में शामिल थे।

— **हिन्दुस्तान, सं० २००६, आसोज सुदी**

४. हरिदास नामक एक भारतीय योगी अपनी जीभ को ऊपर उठाकर बड़ी आसानी से माथे को छू लेता है।

—**हिन्दुस्तान**, १३ **जून** १६७१

५. बद्रीनाथ (भारत) का वैरागी गिरि दिन में पाँच बार प्रार्थना किया करता था और प्रत्येक बार अपने लोहे के डंडे को आग में तपाकर जीभ से चाट लिया करता था। कहते हैं, वह ५२ वर्षों तक इस साधना में संलग्न रहा। —**विचित्रा, वर्ष ३ अंक** ४, १६७१

६. लगभग साढ़े छः सौ वर्ष पहले की बात है। दिल्ली के तख्त पर तब सुलतान "मुहम्मद तुग़लक" साहब विराजमान थे। उत्तर-पश्चिमी अफ्रीका के मरक्को नामक देश का एक यात्री "इब्नबतूता" दुनियाँ की सैर करता हुआ दिल्ली आ पहुंचा। मुहम्मद तुग़लक ने उसका बहुत आदर-सत्कार किया, यहाँ तक कि उसे दिल्ली का काज़ी बना दिया।

एक दिन दरबार में योगियों के चमत्कार की बात चली और दो योगी (गुरु-शिष्य) उपस्थित हुए। गुरु ने अपने शिष्य को कुछ संकेत दिया। शिष्य ने पद्मासन लगाया, प्रणायाम किया और एक क्रिया ऐसी की कि बिना किसी सहारे के ऊपर उठ गया और उठता ही चला

गया। महल की छत बहुत ऊँची थी। वह उससे भी बहुत ऊँचे चला गया, और आकाश में अधर ठहर गया। फिर बादशाह के इशारे पर अपने शिष्य को नीचे उतारने के लिए गुरु ने कुछ कहा लेकिन शिष्य इतना ध्यानमग्न था कि उसने कुछ नहीं सुना। तब गुरु ने अपनी झोली में से एक खड़ाऊ निकालकर नीचे रखी और ध्यानमग्न होकर उस पर दृष्टि जमाई। खड़ाऊ ने ऊपर जाकर शिष्य के चारों ओर चक्कर लगाया और उसकी गर्दन पर कई बार तड़ातड़ वार किया। तब शिष्य का ध्यान भंग हुआ और वह धीरे धीरे नीचे उतरने लगा। अंत में वह उसी आसन में जमीन पर आ बैठा। खड़ाऊ पहले ही गुरु के पास वापस आ गई थी। इब्नबतूता आदि दर्शकों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

७. सुना है कि स्वामी दयानन्द ने सोलह हॉर्स पावरवाली चार घोड़ों की गाड़ी को एक अंगूठे से रोक दिया था। यह देखकर जोधपुर नरेश उनके पैरों में पड़ गये एवं भक्त बन गये।

८. पंजाब के योगिराज देवमूर्त्ति ने मेरठ में कई हजार की भीड़ में अपनी छाती पर दो हाथियों को खड़ा किया। लोहे की मोटी थाली को दिखलाकर उन्होंने उसे हाथों से कागज की तरह फाड़ डाला।

एक बैलगाड़ी में वजन भरा गया। लगभग ५० मन वजन अवश्य होगा। योगीजी ने बैलगाड़ी में रस्सी बाँधकर उसके छोर को अपने सिर के बालों से बाँध लिया। उस गाड़ी को वह काफी दूर तक अपने बालों से ही खींचते रहे।

दो कारें इधर-उधर खड़ी की गईं। दोनों के पीछे दो रस्से बाँध दिये गये। दोनों रस्सों को उन्होंने पकड़ लिया। ड्राइवरों के अथक प्रयत्न करने पर भी कारें जरा भी हिल न सकीं।

३०० मन वजन से भरे हुए एक ट्रक को उन्होंने छाती पर चढ़ा लिया और उचक-उचक कर उसे हिलाते रहे।

—**बिचित्रा वर्ष ३,** अंक ४, १९७१

९. **कुंभक-प्राणायाम के विशिष्टअभ्यासी प्रो० राममूर्ति—** ये इतने बलिष्ठ थे कि ४०-४० मन के पत्थर को छाती पर रखवाकर तुड़वा देते थे, मनुष्यों से भरी हुई गाड़ी छाती पर से निकलवा देते थे, छाती पर हाथी को खड़ा कर लेते थे, बड़ी-बड़ी मजबूत लोहे की जंजीरें हाथों से या गले में लपेट कर तोड़ डालते थे एवं १६ होर्स पावरवाली दो-दो मोटरों को रोक लेते थे। इतना कुछ करने पर भी इनके शरीर पर कहीं निशान तक नहीं पड़ता था।

१०. प्रोफेसर राममूर्ति की शिष्या कुमारी ताराबाई—

छाती पर १३।। मन के भारी पत्थर रखवाकर हथौड़ों से तुड़वाना, बालों की सहायता से ३ मन के पत्थर की चट्टान उठा लेना, मनुष्यों से भरी समूची गाड़ी को अपनी छाती पर से पार करा देना कुमारी ताराबाई के लिए बाएँ हाथ का खेल था। उनका सबसे अधिक आश्चर्यजनक काम अपने माथे की सहायता से गाड़ी को ठेलकर ले जाने का था। इस गाड़ी पर अनेक आदमी भी लदे रहते थे। इतना ही नहीं, गाड़ी के आगे एक तेज छुरा बँधा रहता था और ताराबाई इसी छुरे की नौंक पर अपना माथा भिड़ा देती थी तथा गाड़ी को ठेलकर दूर तक ले जाती थीं।

११. श्री सोमेशचन्द्र वसु—

१८ अप्रेल सन् १९३१ को न्यूयार्क (अमेरिका) के वैनडाइक स्टूडिओ में बंगाल प्रान्तस्थ ढाका जिले के निवासी "श्रीसोमेश चन्द्र वसु" ने योगाभ्यास द्वारा गणितसम्बन्धी एक जटिल प्रश्न का आश्चर्यजनक समाधान किया। प्रश्न-कर्त्ता उक्त स्टूडिओ के कलाकार श्री जॉनओ नील ने कागज का एक टुकड़ा उनकी ओर बढ़ा दिया। उसपर लिखा था—

८५३१२७४६९३७६८४१३२५७२६१४ ३५६३९७८१२६४७३९
८२५७३१२४८७३६४९७१२५६५३२७ ३४७८१७२८६३५७२३
७४८१२५२५७४९१२८३६९२४३७६१८५३

को

७४६३८१२५७३६४७९२८३७४३५ १७९६२९७६४३६८४१७८
९६७९१२८५७४९५३५९८३८१४२८१२५९५९१८१ ५१२७६३
९७८२९५७८१६३९५३२८९६४७२५७३६९

से गुणा कीजिए ?

इन अंकसमूहों पर एक दृष्टि डालकर वसु महोदय ने अपनी आँखें बंद करलीं और मूर्त्तिवत् बैठे हुए इस प्रश्न को मन ही मन लगाने लगे। स्टुडिओ की खिड़कियाँ खुली हुई थीं—बाहर सड़क पर मोटरें, लारियाँ फायर-इंजन आदि शोर-गुल मचाते दौड़ रहे थे। लेकिन वसु महोदय की गणना में इन सबसे तनिक भी बाधा न पड़ी। वे चुपचाप बैठे हुए अपने प्रश्न को हल करते रहे। ५२ मिनट ५० संकिन्ड में उत्तर तैयार हो गया। उन्होंने इस प्रकार लिखा—

६३६९५८३५३२८५९३०६२५६३२८९७७३६६२०१६१३१७२
८२२०३२५९९७५४४०१७०८१७७३५६१८६७१६३३६७३८
२९५९५८५७२५०१०४३५७४५६६७९९१६९८३२०७२६४९७
४१९२८२७०२७२८१५६२७८०८५४४३६९९७३५००५७७४२
८५७९७१५८०४५७४१ ५७८२३७७४०७४१६८३४८१४८५२
०६२३३३६३५७४४७५७।

उत्तर मिल जाने के बाद नील महोदय ने श्री वसुजी से पूछा—६५वीं पंक्ति का ३३ वाँ अंक क्या है ? पलक

मारते ही वसुजी ने उत्तर दिया—आठ अर्थात् १८ के ८ रखे गये और एक हासिल लगा।

नील महोदय सहित सभी उपस्थित लोग आश्चर्य से स्तम्भित हो गये।

केवल गुणन ही नहीं, लम्बे-चौड़े भाग, भिन्न, दशमलव, पुनरावर्त्त-दशमलव, समीकरण आदि के प्रश्न आप इतने थोड़े समय में मन ही मन लगा लेते थे कि लोग चकित रह जाते थे। लम्बी-चौड़ी सैकड़ों अंकों की पूर्ण संख्याओं के वर्गमूल, घनमूल, चतुर्घातमूल पंचघातमूल आदि से लेकर १०६ वां घातमूल तक बिना कागज पैंसिल के निकाल लेना आपके लिए एक दम साधारण और अधिक से अधिक एक सैकिंड का काम था।

—**विचित्रा वर्ष ३ अंक ४, १९७१**

चौथा कोष्ठक

१ संयम

१. उवसमसारं खु सामण्णं । —बृहत्कल्प सूत्र १।३५

श्रमणत्व का सार है उपशम ।

२. संयमः खलु जीवनम् । —आचार्य श्रीतुलसी

संयम ही जीवन है ।

३. संयमो हि महामन्त्र-स्त्राता सर्वत्र देहिनाम् । —तत्त्वामृत

प्राणियों की सर्वत्र रक्षा करनेवाला महामंत्र एक संयम ही है ।

४. श्रमणत्वमिदं रमणीयतरम् । —सुभाषितरत्नसंदोह

यह साधुपना-संयम अनेक गुणयुक्त होने से बहुत रमणीय है ।

५. जाइ सद्धाइ निक्खंतो, परियायट्ठाणमुत्तमं,
तमेव अणुपालिज्जा । —दशवैकालिक ८।८१

जिस श्रद्धा के साथ संसार से निकलकर उत्तम संयम लिया है, उसी श्रद्धा के साथ पालना चाहिए !

६. धम्मं चरमाणस्स पंच निस्साठाणा पण्णत्ता, तं जहा—
छक्काए, गणो, राया, गिहवई, सरीरं ।

—स्थानांग ५।।३।४४७

संयमधर्म, में विचरनेवाले (मुनि) को पाँच निश्रास्थान-अवलंबन कहे हैं—(१) छः काया के जीव, (२) गण-गच्छ,

(३) राजा, (४) गाथापति, (५) शरीर (तप-संयम आदि के अनुष्ठान शरीर से होते हैं)।

७. **संयम का स्वरूप :—**

निन्नेहा निल्लोहा, निम्मोहा निव्वियार-निक्कलुसा।
निब्भय-निरासभावा, पवज्जा एरिसा भणिया॥ ६॥
सत्तु-मित्ते य समा, पसंस-निंदा अलद्धि-लद्धिसमा।
तण-कणए समभावा, पवज्जा एरिसा भणिया॥४७॥
उत्तम-मज्झिमगेहे, दरिद्दे ईसरे निरापेक्खा।
सवत्तगहितपिण्डा, पवज्जा एरिसा भणिया॥४८॥

— **षट्प्राभृत २**

प्रव्रज्या अर्थात् संयम की पर्याय में, न स्नेह होता, न लोभ होता, न मोह होता, न विकार होता, न कलुषभाव होता, न भय होता और न किसी की आशा होती। उसमें शत्रु-मित्र, प्रशंसा-निन्दा, लाभ-हानि और तृण-कनक समान भाव से देखे जाते हैं। प्रव्रज्या में सभी घरों से भिक्षा की जाती है। वहाँ बड़े-छोटे का और गरीब-धनवान का भेद नहीं रखा जाता।

★

२ संयम से लाभ

१. संजमेणं अणण्हयत्तं जणयइ। —**उत्तराध्ययन २९।२६**

संयम से जीव अनास्रव अर्थात् आश्रव-निरोध को उत्पन्न करता है।

२. सन्यासेनापहत्यैनः, प्राप्नोति परमां गतिम्।

—**मनुस्मृति ६।८६**

आत्मा सन्यास से पापकर्म का नाश करके परमगति को प्राप्त होता है।

३. अपवित्रः पवित्रः स्याद्, दासो विश्वेशतां भजेत्।
मूर्खो लभेत ज्ञानानि, मङ्क्षु दीक्षाप्रसादतः॥

—**चन्दचरित्र, पृष्ठ १०६**

दीक्षा के प्रभाव मे अपवित्रव्यक्ति पवित्र बन जाता है, दास जगन्नाथ बन जाता है और मूर्ख शीघ्र ही ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

४. **गीबन** को ग्रीस का इतिहास लिखने में २० वर्ष लगे होंगे लेकिन उसका सार इतना ही है कि ग्रीस का उत्थान संयम और सादगी से हुआ एवं पतन विलासिता से।

५. लोगस्स सारं धम्मो, धम्मं पि य नाणसारियं बिंति।
नाणं संजमसारं, संजमसारं च निव्वाणं॥

—**आचारांगनिर्युक्ति २४४**

विश्व-सृष्टि का सार धर्म है, धर्म का सार ज्ञान (सम्यग्-वोध) है, ज्ञान का सार संयम है, और संयम का सार निर्वाण।

६. संजमहेउ देहो, धारिज्जइ सो कओ उ तदभावे।
संजमफाइनिमित्तं देहपरिपालणा इट्ठा॥

—**ओघनिर्युक्ति गाथा ४७**

यह देह संयम के लिए ही धारा जाता है, क्योंकि देह विना संयम नहीं रह सकता। अत: संयम की वृद्धि के लिए ही देह-का पालन इष्ट है।

३ संयम की दुष्करता

१. जावज्जीवमविस्समो, गुणाणं तु महब्भरो।
गुरुओ लोहभारुव्व, जो पुत्ता होइ दुव्वहो ॥३६॥
वालुया कवले चेव, निरस्साए उ संजमे।
असिधारागमणं चेव, दुक्करं चरिउं तवो ॥३८॥
अहीवेगंतदिट्ठीए, चरित्ते पुत्त ! दुक्करे।
जवा लोहमया चेव, चावेयव्वा सुदुक्करं ॥३९॥
जहा अग्गिसिहा दित्ता, पाउं होइ सुदुक्करा।
तहा दुक्करं करेउं जे, तारुण्णे समणत्तणं ॥४०॥
जहा भुयाहिं तरिउं, दुक्करं रयणायरो।
तहा अणुवसंतेणं, दुक्करं दमसागरो ॥४३॥

—उत्तराध्ययन १९

हे पुत्र ! इस संयम में जीवनपर्यन्त विश्राम नहीं है। भारी लोहभार की तरह सदा गुणों का भार उठाना बहुत मुश्किल है ॥ ३६ ॥

बालुरेत के कवल के समान संयम निस्वाद है। तथा खड्ग-धारा पर चलने के समान यह तप करना दुष्कर है ॥३८॥

जैसे—लोह के जवों का चबाना कठिन है, वैसे ही सर्प की तरह एकान्तदृष्टि से चारित्र का पालना भी कठिन है ॥३९॥

जिस प्रकार प्रज्वलित अग्निशिखा का पीना कठिन है, उसी प्रकार तरुणावस्था में संयम पालना बहुत कठिन है ॥४०॥

जैसे—भुजाओं से समुद्र का तैरना दुष्कर है, वैसे ही अनुपशान्त आत्मा द्वारा संयमरूपी समुद्र तैरना भी बहुत कठिन है ॥४३॥

४ संयम में सुख-दुःख

१. देवलोगसमाणो उ, परिआओ महेसिणं।
रयाणं अरयाणं च, महानरयसारिसो।

—दशवैकालिक-चूर्णि १।१०

संयम में अनुरक्त महर्षियों के लिए तो चारित्र-पर्याय स्वर्ग के समान है एवं अरक्तों के लिए घोर नरक के समान है।

२. साधु - मारग सांकड़ा, जैसा पिंडखजूर।
चढ़े तो चाखे प्रेम रस, पड़े तो चकनाचूर।

—हिन्दी दोहा

३. नारतिं सहइ वीरे वीरे न सहइ रतिं।

—आचारांग २।६

वीरपुरुष न तो संयम में अरति (नाराजगी) को सहन करता है और न असंयम में रति (खुशी) को सहन करता है।

५ संयम-दीक्षा का समय आदि

१. कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा खुड्डगस्स खुड्डिया वा साइरेगट्ठवा सजायं उवट्ठावित्ताए वा संभुंजित्तए वा।

—व्यवहार १०।३०

साधु-साध्वियाँ साधिक आठ वर्ष (गर्भ सहित नव वर्ष) के बालक-बालिका को दीक्षा दे सकते हैं एवं उनके साथ भोजन कर सकते हैं।

२. वनेषु च विहृत्यैवं, तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषो भागं, त्यक्त्वा सङ्गान् परिव्रजेत्।।

—मनुस्मृति ६।३३

आयुष्य के तीसरे भाग में वन में विचर कर चौथे भाग में सब विषयों का त्याग करके संन्यास-दीक्षा ले।

३. यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेद्, ब्रह्मचर्याद्वा गृहाद्वा।
अथ पुनरव्रती वा, व्रती स्नातको वोत्सन्नाग्निकोवा।

—जाबालश्रुति

जिस दिन वैराग्य हो, उसी दिन प्रव्रजित हो जाना चाहिए। चाहे ब्रह्मचर्याश्रम से हो या गृहस्थाश्रम से हो। वह व्यक्ति चाहे अव्रती हो, व्रती हो, स्नातक हो या उत्सन्नाग्निक।

४. प्रव्रजेद ब्रह्मचर्याद्वा, प्रव्रजेद् वा गृहादपि।
वनाद्वा प्रव्रजेद् विद्वा-न्नातुरो वाथ दुःखितः।

—अङ्गिरास्मृति

विद्वान् ब्रह्मचर्यादि किसी भी आश्रम से, रुग्ण या दुःखित किसी भी अवस्था में प्रव्रजित हो सकता है।

५. दो दिसाओ अभिगिज्झ कप्पई निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा पव्वावित्तए तंजहा—पाईणं वा उदीणं वा।

—**स्थानांग २।१**

दो दिशाओं में साधु-साध्वियों को दीक्षित करना कल्पता है—पूर्व और उत्तर।

६. तओ णो कप्पइ पव्वावेत्तए,तंजहा—पंडए,वाइए, कीवे।

—**स्थानांग ३।४।२०२**

तीनों को दीक्षा देना नहीं कल्पता-जन्म के नंपुसक को,वायु की व्याधि से जिसका शरीर इतना मोटा बन गया हो कि वह उठ-बैठ भी नहीं सकता हो, उसको तथा क्लीब को। (क्लीब चार प्रकार का होता है—१दृष्टिक्लीब, २ शब्दक्लीब, ३ आदिग्ध-क्लीब, ४ निमन्त्रणाक्लीब।)

७. ग्रन्थों में १८ प्रकार के पुरुष तथा बीस प्रकार की स्त्रियाँ भी दीक्षा के अयोग्य कहे हैं।

—**स्थानांग ३।४।२०२ टीका**

८. पच्चयत्थं चं लोगस्स, नाणाविहिविगप्पणं।

—**उत्तराध्ययन २३।३२**

धर्मों के वेष आदि के नाना विकल्प जनसाधारण में प्रत्यय (परिचय-पहिचान) के लिए हैं।

९. भावे अ असंजमो सत्थं।

—**आचारांगनिर्युक्ति ९६**

भावदृष्टि से संसार में असंयम ही सबसे बड़ा शस्त्र है।

६ संयम से भ्रष्ट होने के अठारह स्थान

१. दसअट्ठ य ठणाइं, जाइं बालोऽवरज्झइ,
तत्थ अन्नयरे ठाणे, निग्गंथत्ताओ भस्सइ ।
वयछक्कं कायछक्कं, अकप्पो गिहिभायणं,
पालियंकनिसज्जा य, सिणाणं सोहवज्जणं ।

—**दशवैकालिक ६।७-८**

छः व्रत—पांच तो महाव्रत छट्ठा रात्रिभोजन व्रत ६, काय-षट्क—छः काय के जीवों की हिंसा के त्याग १२, अकल्पनीय आहार आदि का त्याग १३, गृहस्थ के बर्तन में भोजन करने का त्याग १४, पल्यङ्क आदि आसन का त्याग, १५, गृहस्थ के अन्तरघर में बैठने का त्याग १६, स्नान का त्याग १७, शोभा-विभूषा का त्याग १८, संयम की रक्षा के लिये साधु को इन अठारह स्थानों-नियमों का अखण्ड-रूप से पालन करना परम आवश्यक है । जो अज्ञानी मुनि इन अठारह नियमों में से किसी एक का भी भंग करता है, वह निर्ग्रंथता—संयम से भ्रष्ट हो जाता है ।

२. **संयम से भ्रष्ट होते समय साधु को इन अठारह बातों का सम्यक् प्रकार से चिन्तन करना चाहिए—**

हं भो ! १ दुस्सामए दुप्पजीवी, २ लहुसगा इत्तरिआ गिहीणं कामभोगा, ३ भुज्जो अ साइबहुला मणुस्सा,

४ इमे अ मे दुक्खे न चिरकालोवट्ठाई भविस्सइ, ५ ओमज्जणपुरक्कारे, ६ वंतस्स य पडिआयाणं, ७ अहरगइ वासोवसंपया, ८ दुल्लहे खलु भो ! गिहीणं धम्मे गिहीवास मज्झे वसंताणं, ९ आयंके से वहाय होइ, १० संकप्पे से वहाय होइ, ११ सोवक्केसे गिहिवासे-निरुवक्के से परिआए, १२ बंधे गिहवासे-मुक्खे परिआए, १३ सावज्जे गिहिवासे-अणवज्जे परिआए, १४ बहुसाहारणा गिहीणं कामभोगा, १५ पत्तेयं पुन्न-पावं, १६ अणिच्चे खलु भो ! मणुआण जीविए, कुसग्गजलबिन्दु-चंचले, १७ बहुं च खलु भो ! पावं कम्मं पगडं, १८ पावाणं च खलु भो ! कडाणं, कम्माणं, पुव्विं दुच्चिन्नाणं, दुप्पडिकंताणं, वेइत्ता मुक्खो, नत्थि अवेइत्ता, तवसा वा झोसइत्ता ।

—दशवैकालिक-चूर्णि १

१, इस दुष्षमकाल में दुख-पूर्वक जीवन व्यतीत होता है २ गृहस्थ लोगों के काम-भोग तुच्छ और क्षणस्थायी हैं, ३ वर्तमान काल के बहुत से मनुष्य छली एवं मायावी हैं, ४ यह जो मुझे दुःख उत्पन्न हुआ है, वह चिरकालपर्यंत नहीं रहेगा ५ संयम के त्यागने से नीचपुरुषों की सेवा करनी पड़ेगी, ६ वान्त भोगों का पुनः पान करना होगा, ७ नीच गतियों में ले जानेवाले कर्म बँधेंगे, ८ पुत्र-पोत्रादि गृहपाशों में फंसे हुए गृहस्थों को धर्म की प्राप्ति दुर्लभ है, ९ विसूचिकादि रोग धर्महीन के वध के लिये होते हैं, १० संकल्प-विकल्प भी उसको नष्ट करनेवाले हैं, ११ गृहस्थावास क्लेशसहित है और चारित्र क्लेश से रहित है, १२ गृहवास बंधनरूप है और चारित्र मोक्षरूप है, १३ गृहवास पापरूप है और चारित्र पाप से सर्वथा रहित

है, १४ गृहस्थों के काम-भोग बहुत साधारणरूप हैं, १५ प्रत्येक आत्मा के पुण्य एवं पाप पृथक्-पृथक् हैं, १६ मनुष्य का जीवन कुश के अग्रभाग पर स्थित जलबिन्दु के समान चंचल है, अतएव निश्चित रूप से अनित्य है, १७ बहुत ही प्रबल पापकर्मों का उदय है, जो मुझे ऐसे निन्दनीय विचार उत्पन्न होते हैं, १८ दुष्टविचारों से एवं मिथ्यात्व आदि से बांधे हुए, पूर्वकृत कर्मों के फल को भोगने के पश्चात् मोक्ष होता है, बिना भोगे नहीं होता अथवा तप द्वारा उक्त कर्मों का क्षयकर देने पर मोक्ष हो सकता है।

★

७

संयम के भेद

१. चऊव्विहे संजमे पण्णत्ते, तं जहा—मणसंजमे, वइसंजमे, कायसंजमे, उवगरणसंजमे। —स्थानांग ४।२।३१०

चार प्रकार का संयम कहा है— १ मनःसंयम, २ वचनसंयम, ३ कायसंयम, ४ उपकरणसंयम।

२. पंचविहे संजमे पण्णत्ते, तं जहा—सामाइयसंजमे, छेदोवट्ठाणियसंजमे, परिहारविसुद्धिसंजमे, सुहुमसंपरायसंजमे, अहक्खायसंजमे।

—स्थानांग ५।३।४२८

पाँच प्रकार का संयम कहा है १ सामायिकसंयम, २ छेदोपस्थापनीयसंयम, ३ परिहारविशुद्धिसंयम, ४ सूक्ष्मसंपरायसंयम, ५ यथाख्यातसंयम।

(उत्तराध्ययन २८।३२-३३ में इन्हें ही पांच चारित्र कहा है।

३. पुढवी-दग-अगणि-मारुय-वणस्सई-वि- ति-चउ - पणिंदि-अजीवो। पेहुप्पेह-पमज्जण-परिट्ठवण-मणो-वइ-काए।

—प्रवचनद्वार ६६, गाथा ५५६

सत्रह प्रकार का संयम कहा है— १ पृथ्वीकायसंयम (पृथ्वी की हिंसा का त्याग), २ अप्कायसंयम, ३ तेजस्कायसंयम, ४ वायुकायसंयम, ५ वनस्पतिकायसंयम, ६ द्वीन्द्रियसंयम ७ त्रीन्द्रियसंयम, ८ चतुरिन्द्रियसंयम, ९ पञ्चेन्द्रियसंयम, १० अजीवसंयम (निर्जीव वस्तु पर द्वेष न करना अथवा स्वर्ण-रत्न

आदि निर्जीव वस्तु का त्याग करना), ११ प्रेक्षासंयम (प्रत्येक वस्तु को देखे बिना काम में न लेना), १२ उपेक्षासंयम (कहा न माननेवाले पर द्वेष त्याग) १३ प्रमार्जनासंयम (पूंजने में सावधानी), १४ परिष्ठापनासंयम (परठने में सजगता), १५ मनःसंयम (मन को असद् व्यापार से रोकना), १६ वचनसंयम १७ कायसंयम ।

४. पञ्चाश्रवाद्विरमणं पञ्चेन्द्रियनिग्रहः कषायविजयः ।
दण्डत्रयविरतिश्चेतिसंयमः सप्तदशभेदः ॥
—प्रशमरति १७२

संयम के सत्रह प्रकार दूसरी तरह से—

पांच आस्रवों का त्याग ५, पांच इन्द्रियों का निग्रह १०, चार कषाय को जीतना १४, तथा मन-वचन-काय रूप तीनों दण्डों से निवृत्त होना १७—ये संयम के सत्रह भेद हैं ।

५. दसविहा पव्वजा पण्णत्ता, तं जहा—
छंदा रोसा परिजुन्ना, सुविणा पडिस्सुया चेव ।
सारणिया रोगणिया, अणाढिया, देवसन्नत्ति ॥
वच्छाणुबंधिया । —स्थानांग १०।७१२

दश प्रकार की प्रव्रज्या-दीक्षा कही है । तद्यथा—

(१) छन्दा-अपनी इच्छा से गोविन्दवाचकवत् एवं दूसरों के दबाव से भावदेववत् ली गई दीक्षा ।

(२) रोषा—शिवभूतिवत् रुष्ट होकर ली गई दीक्षा ।

(३) परिद्यूना—लकड़हारे की तरह गरीबी से हैरान होकर ली गई दीक्षा ।

(४) स्वप्ना—विशेष प्रकार का स्वप्न आने के कारण पुष्पचूलावत् ली गई दीक्षा ।

(५) प्रतिश्रुता—शालिभद्र के बहनोई धन्नासेठवत् आवेश में आकर ली गई दीक्षा।

(६) स्मारणिका—पूर्वभव का स्मरण करवाने से मल्लिप्रभु के पूर्वभव के मित्र प्रतिबुद्धि आदि छह राजाओं की तरह ली गई दीक्षा।

(७) रोगणिका—रोग उत्पन्न होने के कारण सनत्कुमार चक्रवर्तिवत् ली गई दीक्षा।

(८) अनादृता—किसी के द्वारा अनादर किये जाने पर नन्दीषेणवत् (वसुदेव के पूर्वभव में) ली गई दीक्षा।

(९) देवसंज्ञप्ति—देवता के प्रतिबोध देने पर मेतार्यमुनिवत् ली गई दीक्षा।

(१०) वत्सानुबन्धिका—पुत्रस्नेह के कारण वज्रस्वामी की मातावत् ली गई दीक्षा।

६. चउव्विहा पव्वज्जा पण्णत्ता तं जहा—इहलोगपडिबद्धा, परलोगपडिबद्धा, दुहओलोगपडिबद्धा, अप्पडिबद्धा।

—स्थानांग ४।४।३५५

चार प्रकार की प्रव्रज्या कही है—

(१) इहलोकप्रतिबद्धा—जीवन का निर्वाह करने के लिये ली जानेवाली दीक्षा।

(२) परलोकप्रतिबद्धा—परलोकसम्बन्धि-पौद्गलिकसुखों की प्राप्ति के लिये ली जानेवाली दीक्षा।

(३) उभयलोकप्रतिबद्धा—पूर्वोक्त दोनों प्रकार की इच्छा रखते हुए ली जानेवाली दीक्षा।

(४) अप्रतिबद्धा—किसी भी प्रकार की आशा न रखकर आत्म-कल्याण के लिये ली जानेवाली दीक्षा।

७. चत्तारिपुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा—सीहत्ताए णाममेगे णिक्खंति सीहत्ताए विहरंति। सीहत्ताए णाममेगे णिक्खंति सियालत्ताए विहरंति। सियालत्ताए णाममेगे णिक्खंति, सीहत्ताए विहरंति। सियालत्ताए णाममेगे णिक्खंति। ...सियालत्ताए विहरंति। —**स्थानांग** ४।३।३२७

दीक्षित व्यक्ति चार प्रकार के कहे हैं—

(१) सिंहवत् (उन्नतभावों से) दीक्षा लेकर उग्रविहारादि द्वारा सिंहवत् पालनेवाले (धन्नासेठवत्)।

(२) सिंहवत् (उन्नतभावों से) दीक्षा लेकर शृगालवत् (दीन-वृत्ति से) पालनेवाले (कण्डरीकवत्)

(३) शृगालवत् दीक्षा लेकर सिंहवत् पालनेवाले (मेतार्य मुनिवत्)।

(४) शृगालवत् दीक्षा लेकर शृगालवत् पालनेवाले (सोमाचार्यवत्)।

८. **चार अन्तक्रियाएँ कही हैं—**

(१) अल्पवेदना-दीर्घपर्याय-भरतवत्।

(२) महावेदना-अल्पपर्याय-गजसुकुमालवत्।

(३) महावेदना-दीर्घपर्याय-सनत्कुमारचक्रवर्तिवत्।

(४) अल्पवेदना-अल्पपर्याय-मरुदेवीमातावत्।

—**स्थानांग** ४।१।२३५

८

साधना

१. साधना के बिना ईश्वर नहीं मिलता। —**स्वामी रामकृष्ण**

२. नित्य साफ न करने से पीतल के पात्रों की तरह साधना का हृदय भी अपवित्र हो जाता है। —**तोतापुरी**

३. पानी पर किस्ती हो, तरेगी खूब,
किस्ती में पानी हो, जायेगी डूब। —**उर्दू शेर**

भावार्थ—पानी पर किस्ती की तरह संसार में रहकर तो साधक तर सकते हैं, किन्तु किस्ती में पानी की तरह यदि साधकों के मन में मोह-मायारूप संसार घुस गया, तो फिर वे कभी नहीं तरेंगे। जैसे-छाछ में मक्खन का रहना अच्छा है, किन्तु मक्खन में छाछ का रहना ठीक नहीं। उसी प्रकार संसारियों में साधुत्व की भावना का रहना अच्छा है, किंतु साधुओं में संसार की भावना का रहना ठीक नहीं।

४. पहली डुबकी में यदि रत्न न मिले तो रत्नाकर को रत्नहीन मत समझो! —**स्वामी रामकृष्ण**

५. अणुवओगो दव्वं। — **अनुयोगद्वार-सूत्र १३**

उपयोगशून्य साधना द्रव्य है, भाव नहीं।

साधु

१. सम्यग्दर्शनादियोगैरपवर्गं साधयतीति साधुः ।

—**दशवैकलिक १।५ टीका**

सम्यग्दर्शनादि द्वारा जो मोक्ष की साधना करता है, वह साधु है ।

२. साध्नोति स्व-परकार्याणीति साधुः ।

जो अपने और दूसरों के आत्मिक-कार्यों को सिद्ध करता है, वह साधु है ।

३. आगमचक्खू साहू,
इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि । —**प्रवचनसार ३।३४**

अन्य सब प्राणी इन्द्रियों की आँखवाले हैं, किन्तु साधु आगम की आँखवाला है ।

४. धर्मवित्ता हि साधन : । —**श्राद्धविधि**

साधु धर्मरूपी धनयुक्त होते हैं ।

५. साधवो दीनवत्सलाः ।

साधु दीनदयालु होते हैं ।

६. विविहकुलुप्पण्णा साहवो कप्परुक्खा ।

—**नन्दीसूत्र चूर्णि २।१६**

विविध कुल एवं जातियों में उत्पन्न हुए साधुपुरुष पृथ्वी के कल्पवृक्ष हैं ।

७. जीवियास-मरणभयविप्पमुक्का ।

—औपपातिक समवसरण अधिकार तथा भगवती ८।२

साधु जीने की आशा और मरने के भय से विप्रमुक्त होते हैं ।

८. जात्यैवेते परिहितविधौ साधवो बद्धकक्षाः ।

—पार्श्वनाथचरित्र

संत लोग स्वभाव से ही परहित करने के लिए तत्पर रहते हैं ।

९. श्रेयः कुर्वन्ति भूतानां, साधवो दुस्त्यजासुभिः ।

—श्रीमद्भागवत ८।२०।७

साधुजन अपने दुस्त्यज प्राणों को देकर भी प्राणियों का कल्याण करते हैं ।

१०. साधूनां च परोपकार-करणे नोपाध्यपेक्षं मनः ।
परोपकार करने के समय साधुओं का मन कष्टों की परवाह नहीं करता ।

११. यथा चित्तं तथा वाचो, यथा वाचस्तथा क्रिया ।
चित्ते वाचि क्रियायां च, साधूनामेकरूपता ।

—सुभाषितरत्न भाण्डागार

जैसा मन होता है, वैसा ही वचन बोलते हैं और वचन के अनुसार ही क्रिया करते हैं, क्योंकि साधुओं के मन-वचन-क्रिया में एकरूपता होती है ।

१२. युगान्ते प्रचलेद मेरुः, कल्पान्ते सप्त सागराः ।
साधवः प्रतिपन्नार्थाद्, न चलन्ति कदाचन ।

—चाणक्य १३।१९

युग के अन्त में मेरु और कल्प के अन्त में सातों समुद्र चल जाते हैं, किन्तु सन्त पुरुष स्वीकृत-सिद्धान्त से कभी विचलित नहीं होते ।

१३. तप्यते लोकतापेन, साधवः प्रायशो जनाः ।
परमाराधनं हृद्धि, पुरुषस्थाखिलात्मनः ।

—श्रीमद्भागवत ८।७।७४

साधुजन प्रायः संसार के ताप से संतप्त-खिन्न रहते हैं । उनके लिए यही विश्वपावन भगवान की उत्कृष्ट-आराधना है ।

१४. या निशा सर्वभूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जागर्ति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुनेः ।

—गीता २।६९

जो आत्मविषयक-बुद्धि संसारी जीवों के के लिए रात है, उसमें संयमी साधु जागता है—आत्म-साक्षात् करता है । जिस शब्दादि विषयों में लगी हुई बुद्धि में संसारी जीव जागते हैं—सावधान रहते हैं, वह आत्मार्थिमुनि के लिए रात है ।

१५. चक्खुमास्स यथा अन्धो, सोतवा बधिरो यथा ।

—थेरगाथा ८।५०१

साधक चक्षुष्मान् होने पर भी अन्धे की भाँति रहे, श्रोत्रवान् होने पर भी बधिर की भाँति आचरण करे !

१६. साधवो हृदयं मह्यं, साधूनां हृदयं त्वहम् ।
मदन्यत्ते न जानन्ति, नाहं तेभ्यो मनागपि ।

—श्रीमद्भागवत ९।४।६८

भगवान् कहते हैं कि साधु मेरे हृदय हैं और मैं उनका हृदय हूँ । वे मेरे सिवाय किसी को नहीं जानते और मैं उनके सिवा किसी को नहीं जानता ।

१७. पूजा-मान-बड़ाइयां. आदर मांगे मन ।
राम गहे सब परिहरे, सोही साधुजन ।। **—दादूजी**

राजा और गरीब को, समझे एक समान।
तिनको साधु कहत है,गुरु नानक निरवान॥
साधु सत का सूपड़ा, सत ही सत भाखंत।
पकड़ पछाड़ै तूं तड़ा, कण ही कण राखंत॥
गांठ दाम बांधे नहीं, नहिं नारी से नेह।
कहे कबीर वा साधु के, हम चरनन की खेह। —**कबीर**
साधु भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं।
जो धन का भूखा बने, वो फिर साधु नाहिं।
साधु ह्वै सो साधै काया, कोड़ी एक न राखै माया।
ल्यावै सो देवे चुकाय, वासी रहै न कुत्ता खाय।
जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।

—**कबीर**

१८. सूफी साधु कौन ?

सूफी वह है, जिसके दिल में सच्चाई और अमल में इखलास हो। —**अब्दुलहसन**

१९. शैले-शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे-गजे।
साधवो नहि सर्वत्र, चन्दनं न वने-वने।

—**चाणक्यनीति २।९**

जैसे हर एक पर्वत पर माणिक नहीं होते, हर एक हाथी के सिर में मोती नहीं होते और हर एक वन में चन्दन नहीं होते। वैसे सभी जगह सच्चे साधु भी नहीं होते।

१० मुनि

१. वीतराग-भय-क्रोधः, स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।

—गीता २।५६

जिसने राग, भय और क्रोध को जीत लिया एवं जो निश्चल-बुद्धिवाला है, उसे 'मुनि' कहा जाता है ।

२. णाणेण य मुणी होई । —उत्तराध्ययन २५।३२

ज्ञान से मुनि होता है ।

३. न मुणी रन्नवासेणं । —उत्तराध्ययन २५।३१

जंगल में निवास करने मात्र से मुनि नहीं होता ।

४. पुढवीसमो मुणी हविज्जा । —दशवैकालिक १०।१३

मुनि को पृथ्वी के समान धैर्यवान होना चाहिये ।

५. महप्पसाया इसिणो भवंति । —उत्तराध्ययन १२।३१

ऋषि महान् प्रसादगुणवाले होते हैं ।

६. मौनं मुनीनां प्रशमश्च धर्मः ।

मौन और वैराग्य मुनियों के मुख्य धर्म हैं ।

७. तैलपात्रधरो यद्वद् राधावेधोद्यतो यथा ।
क्रियास्वनन्यचित्तः स्याद्, भवभीतस्तथा मुनिः ।।

जैसे—तेलभृत पात्र को लेकर चलनेवाला और राधावेध करने में उद्यत व्यक्ति अपनी क्रियाओं में अनन्यचित्त-तल्लीन रहता

है, उसी प्रकार भवभ्रमण से डरा हुआ आत्मार्थी-मुनि अपने संयम की क्रियाओं में अनन्यचित्त रहता है।

८. णिम्ममो णिरहंकारो, णिस्संगो चत्तगारवो।
समो य सव्व भूएसु, तसेसु थावरेसु य ॥९०॥
लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो णिन्दा-पसंसासु, तहा माणावमाणओ ॥९१॥
गारवेसु कसाएसु दंड-सल्ल-भएसु य।
णियत्तो हास-सोगाओ, अणियाणो अबंधणो ॥९२॥
अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिओ।
वासी-चदणकप्पो य, असणे अणसण तहा ॥९३॥
अप्पसत्थेहिं दारेहिं, सव्वओ पिहियासवो।
अज्झप्पज्झाणजोगेहिं, पसत्थदमसासणो ॥९४॥

—उत्तराध्ययन १९

मुनि निर्मम, निरहंकार, निःसंग और गर्वरहित होता है तथा त्रस-स्थावररूप समस्त जीवों पर समभाव रखता है ॥९०॥

मुनि लाभ, अलाभ, सुख-दुख, जीवन-मरण, निन्दा-प्रशंसा तथा मान-अपमान में समान वृत्तियुक्त होता है ॥९१॥

मुनि गारव, कषाय, दण्ड, शल्य, भय, हास्य और शोक से निवृत्त होता है तथा निदान एवं बंधन से मुक्त होता है ॥९२॥

मुनि इहलोक-परलोक के सुखों की इच्छा नहीं करता। उसे चाहे वसोले से काटा जाय या चंदन से चर्चा जाय तथा आहार मिले या न मिले, वह समानवृत्ति रखता है ॥९३॥

मुनि सभी अप्रशस्त द्वारों और सभी आश्रवों का निरोध कर

आध्यात्मिक-शुभ ध्यान के योग से प्रशस्तसंयमवाला होता है ॥६४॥[1]

६. नाभिनन्देत मरणं, नाभिनन्देत जीवितम् ॥४५॥
दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं, वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं, मनः पूतं समाचरेत् ॥४६॥
क्रुद्ध्यन्तं न प्रतिक्रुद्ध्ये-दाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ।
सप्तद्वारावकीर्णां च, न वाचमनृतां वदेत् ॥४८॥

—**मनुस्मृति अ० ६**

मुनि न तो जीने की अभिलाषा करे और न मरने की ॥४५॥

मुनि देख-देखकर पैर रक्खे, वस्त्र से छानकर जल पीवे, सत्य से पवित्र वाणी बोले और मन से पवित्र विचार करे ॥४६॥

क्रोध करनेवाले पर क्रोध न करे, आक्रोश करनेवाले के प्रति भी अच्छे वचन बोले तथा पाँच इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि—इन सातों से व्याप्त-वाणी बोले एवं असत्य वाणी न बोले ।४८।

१०. मही शय्या रम्या विपुलमुपधानं भुजलता,
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोयमनिलः ।
स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिवनिता सङ्गमुदिता,
सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव ॥

—**भर्तृहरि-वैराग्यशतक ७६**

भूमि सुन्दरशय्या है, भुजा तकिया है, आकाश चंद्रवा है, अनुकूल हवा पंखा है और चन्द्रमा प्रकाशमान दीपक है । इन

---

१ गीता के १२वें अध्याय में कहा हुआ भक्त का वर्णन भी इससे काफी कुछ मिलता-जुलता है ।

सब सामग्रियों से युक्त शान्त मुनि महान् ऋद्धिशाली राजा की तरह विरक्ततारूप रानी के साथ आनन्दपूर्वक सोता है।

११. धीरज-तात क्षमा-जननी,
परमारथ-मीत महारुचि-मासी।
ज्ञान-सुपुत्र सुता-करुणा,
मति-पुत्रवधू समता प्रतिभासी॥
उद्यम-दास विवेक-सहोदर,
बुद्धि-कलत्र शुभोदय दासी।
भाव-कुटुम्ब सदा जिनके ढिग,
यों मुनि को कहिए गृहवासी॥

—बनारसीदास

१२. वेदान्तविज्ञान - सुनिश्चितार्थाः,
सन्यासयोगाद् यतयः शुद्ध सत्त्वा।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले,
परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे॥

—मुण्डकोपनिषद् ३।२।६

वेदान्तरहस्य से जिन यतिजनों ने तत्त्व का निश्चय कर लिया है, सन्यास-योग से जो शुद्ध अतःकरण हो गये हैं, वे अन्तिम देहावसान होने पर ब्रह्मलोकों में अमरत्व को भोगते हुए पूर्णरूप से छूट जाते हैं।

११ अनगार

१. न विद्यते अगारं-गृहं यस्य सः अनगारः।
जिसने घर का त्याग कर दिया, वह अनगार है।

२. समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे अणगारा भगवन्तो इरियासमिया·······अममा, अकिंचणा छिण्णग्गंथा छिण्णसोया निरुवलेवा, १ कंसपाईव मुक्कतोया, २ संख इव निरंगणा, ३ जीवो इव अप्पडिहयगई, ४ जच्चकणगमिव जायरूवा, ५ (आदरिसफलगा इव पायडभावा) कुम्मो इव गुत्तिंदिया, ६ पुक्खरपत्तं व निरुवलेवा, ७ गगणमिव निरालंबणा, ८ अणिलो इव निरालया, ९ चंदो इव सोमलेस्सा, १० सूरो इव दित्ततेया, ११ सागरो इव गंभीरा, १२ विहग इव सव्वओ विप्पमुक्का, १३ मंदर इव अप्पकंपा, १४ सारयसलिलं व सुद्धहियया, १५ खग्गिविसाणं व एगजाया, १६ भारंडपक्खी व अप्पमत्ता, १७ कुंजरो इव सोंडीरा, १८ वसभोइव जायत्थामा, १९ सिंहो इव दुद्धरिसा, २० वसुंधरा इव सव्वफासविसहा, २१ सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलंता, नत्थिणं तेसिणं भगवंताणं कत्थइ पडिबंधे

भवइ ।·········तेणं भगवंतो····वासीचंदणसमाणकप्पा समलेट्ठुकचंणा समसुह-दुक्खा इहलोग परलोगअप्पडिबद्धा संसारपारगामो कम्मणिग्घायणट्ठाए अब्भुट्ठिया विहरंति । — औपपातिक-समवसरणाधिकार

श्रमण भगवान् महावीर के बहुत से अनगार भगवंत ईर्यासमिति-युक्त हैं, ममत्वरहित हैं, अकिंचन हैं, छिन्नग्रन्थ हैं, छिन्नश्रोत हैं, निरुपलेप हैं एवं इक्कीस उपमाओं से उपमित हैं । १ वे कांस्यपात्रवत् स्नेहमुक्त हैं, २ शंख के समान उज्ज्वल (रागादिरंगरहित) हैं,३ जीव के समान अप्रतिहत-गतिवाले हैं, ४ अन्य कुधातुओं के मिश्रण से रहित सोने के समान जातरूप लिए हुए चारित्र को निरतिचार रखनेवाले हैं, ५ (दर्पणपट्ट के समान निर्मलभाववाले हैं), कच्छप के समान गुप्तेन्द्रिय हैं, ६ कमलपत्रवत् निर्लेप हैं, ७ आकाश के समान निरालंबन हैं, ८ वायु के समान निरालय (अप्रतिबद्धविहारी) हैं, ९ चन्द्रमावत् सौम्यकान्तिवाले हैं, १० सूर्य के समान दीप्ततेजवाले हैं, ११ सागरवत् गंभीर हैं, १२ पक्षी के समान पूर्णतः विप्रमुक्त हैं, १३ मेरुपर्वत के समान अडोल हैं, १४ शरद्ऋतु के जल के समान शुद्धहृदयवाले हैं, १५ गेंडे के सींग के समान एकजात अर्थात् रागादिभावरहित एकाकी हैं, १६ भारण्डपक्षी के समान अप्रमत्त हैं, १७ हाथी के समान शूर-कामादि भावशत्रुओं को जीतने में समर्थ हैं, १८ वृषभ के समान जातस्थाम-धैर्यवान हैं, १९ सिंह के समान दुर्धर्ष-परीषहादिमृगों से नहीं हारनेवाले हैं, २० पृथ्वी के समान शीत-उष्ण आदि सभी स्पर्श को सहन करनेवाले हैं, २१ घृत आदि से अच्छी तरह हवन की हुई अग्नि के समान (ज्ञान और तपरूप) तेज से जाज्वल्यमान हैं । उनके कहीं प्रतिबन्ध नहीं होता···।

वे अनगार भगवंत चाहे वसोले से काटे जाएँ, चाहे चन्दन से चर्चे जाएँ, समभाव रहते हैं। मिट्टी के ढेले एवं कंचन के प्रति समानवृत्ति रखते हैं। सुख-दुःख में समान रहते हैं।.... इहलोक-परलोक के विषय में प्रतिबन्धरहित हैं। संसार के पारगामी हैं एवं कर्मों को क्षय करने के लिए उद्यत होकर विहार करते हैं।

●

१२ भिक्षु

१. संसारे भयं इक्खतीति-भिक्खु ।

—विसुद्धिमग्गो १।७

जो संसार में भय देखता है—वह **भिक्षु** है ।

क. पंच य फासे महव्वयाइं, पंचासवसंवरे जे स भिक्खू ।
(५)

जो पांच महाव्रतों का पालन करता है एवं मिथ्यात्व आदि पाँच आस्रवों को रोकता है, 'वह भिक्षु' हैं ।

ख. सचित्तं नाहारए जे स भिक्खू । (३)

जो कभी बीजादि सचित्त का आहार नहीं करता, वह 'भिक्षु' है ।

ग. समसुह-दुक्खसहे य जे स भिक्खू । (११)

जो सुख-दुख को समभाव से सहन करता है, वह 'भिक्षु' है ।

घ. तवे रए सामणिए जे स भिक्खू । (१४)

—दशवैकालिक १०

जो तप और संयम में रक्त होता है, वह 'भिक्षु' है ।

२. मणवयकायसुसंवुडे स भिक्खू ।

—उत्तराध्ययन १५।१२

मन-वचन-काया से जो संवृत है, वह 'भिक्षु' है ।

३. से वंता कोहं च माणं च, मायं च, एयं पासगस्स दंसणं ।

—आचारांग ३।४

मुमुक्षु—क्रोध-मान-माया-लोभ का वमन-त्याग करनेवाला होता है, यह सर्वज्ञ-भगवान् की मान्यता है।

४. खंतो अ मद्दवऽज्जव-विमुत्तया तह अदीणया-तितिक्खा।
आवस्सगपरिसुद्धि अ, होंति भिक्खुस्स लिंगाइं॥
—दशवैकालिक-निर्युक्ति ३४९

क्षमा, विनम्रता, सरलता, निर्लोभता, अदीनता, तितिक्षा और आवश्यकक्रियाओं की परिशुद्धि—ये सब भिक्षु के वास्तविक चिन्ह है।

५. इह खलु थेरेहिं भगवंतेहिं बारस भिक्खुपडिमाओ, पन्नत्ताओ। **—भगवती २।१**

स्थविर-भगवन्तों ने बारह भिक्षुप्रतिमायें—साधुओं की प्रतिज्ञायें कही हैं—१ मासिकी, २ द्विमासिकी, ३ त्रिमासिकी, ४ चातुर्मासिकी, ५ पंचमासिकी, ६ षणमासिकी, ७ सप्त-मासिकी, ८ प्रथमासप्तरात्रिंदिवा, ९ द्वितीया सप्तरात्रिंदिवा, १० तृतीयासप्तरात्रिंदिवा, ११ अहोरात्रिंदिवा, १२ एक रात्रि की।

१३ श्रमण (समण)

१. श्राम्यतीति श्रमणस्तथा सम इति शत्रु-मित्रादिषु प्रवर्तते इति समण : (अण् प्रत्ययः)

—स्थानांग ४।४ टीका

श्रम-तपस्या करता है अतः वह 'श्रमण' है । तथा शत्रु-मित्रादिक पर समभाव रखता है, इसलिए वह 'समण' हैं. यहां अण् प्रत्ययः हुआ है ।

२. तो समणो जइ सुमणो, भावेण य जइ ण होइ पावमणो।
सयणे असयणे अ समो, समो अ माणावमाणेसु ।।

—अनुयोगद्वार १३२

जो मन से सु-मन (निर्मल मनवाला) है, संकल्प से भी कभी पापोन्मुख नहीं होता, स्वजन तथा अस्वजन में, मान एवं अपमान में सदा सम रहता है, वह **समण** होता है ।

३. जह मम ण पियं दुक्खं, जाणिअ एमेव सव्वजीवाणं ।
न हणइ न हणावेइ, सममणइ तेन सो समणो ।।

—अनुयोगद्वार १२६

जैसे—मुझे दुःख प्रिय नहीं लगता, वैसे दूसरों को भी नहीं लगता । यों जानकर जो किसी भी जीव को न मारता है, न मरवाता है एवं समभाव से रहता है, वह श्रमण है ।

४. उरग-गिरि-जलण-सागर-नहतल-तरुगण-समो य जो होइ।
भमर-मिय-धरणि-जलरुह-रवि-पवणसमो य सो समणो॥
—अनुयोगद्वार ५

श्रमण वह है, जो सर्पवत् परकृत निवास में रहता है, परीषहों में पर्वतवत् निष्प्रकम्प रहता है। अग्निवत् तप के तेज से युक्त होता है एवं सूत्रार्थरूप ईंधन से तृप्त नहीं होता। समुद्रवत् गम्भीर, ज्ञानादि रत्नों का घर एवं अपनी मर्यादा को नहीं तोड़नेवाला है। आकाशवत् निरालम्बी होता है। वृक्षसमूहवत्-सुख-दुःख में समभाव होता है। भमरवत् अनियतवृत्ति से जीवननिर्वाह करता है। मृगवत् संसार से भयभीत रहता है। पृथ्वीवत् सब कुछ सहन करता है। सूर्यवत् सबको समानरूप से प्रकाश देता है। कमलवत् निर्लेप रहता है एवं पवनवत् अप्रतिवद्धबिहारी होता है।

निर्ग्रन्थ

१. ग्रन्थः कर्माष्टविधं, मिथ्यात्वाविरतिदुष्टयोगाश्च ।
तज्जयहेतोरशठं, संयतते यः स निर्ग्रन्थः ।।

—**प्रशमरति १४२**

आठ कर्म, मिथ्यात्व, अव्रत और दुष्टयोग—ये ग्रन्थ कहलाते हैं। जो इन्हें जीतने के लिए सरलभाव से प्रयत्न करता है, वह निर्ग्रन्थ है।

२. आगमबलिया समणा निग्गंथा ।

—**व्यवहारसूत्र १०**

श्रमण-निर्ग्रन्थों का बल 'आगम' (शास्त्र) ही है।

३. पंचासवपरिण्णाया, तिगुत्ता छसु संजया ।
पंचनिग्गहणा धीरा, निग्गंथा उज्जुदंसिणो ।।११।।
आयावयंति गिम्हेसु, हेमन्तेसु अवाउडा ।
वासासु पडिसंलीणा, संजया सुसमाहिया ।।१२।।
परीसहरिऊदंता, धूयमोहा जिइंदिया ।
सव्वदुक्खप्पहीणट्ठा, पक्कमंति महेसिणो ।।१३।।

—**दशवैकालिक अ० ३**

निर्ग्रंथ मुनि पाँच आस्रवों को त्यागनेवाले, तीन गुप्तियों से गुप्त, छः काय के जीवों के प्रति संयमी, पाँच इन्द्रियों का

निग्रह करनेवाले, धीर एवं सरलदृष्टि द्वारा देखनेवाले होते हैं ॥११॥

सुसमाधिस्थ संयमी मुनि ग्रीष्मकाल में सूर्य की आतापना लेते हैं। शीतकाल में अल्पवस्त्रधारी होते हैं। वर्षाऋतु में प्रतिसंलीन-इन्द्रियों को वश करके एक स्थान पर रहते हैं ॥१२॥

महर्षि निर्ग्रन्थ परीषह-शत्रुओं को जीतनेवाले, धूतमोह एवं जितेन्द्रिय होते हैं तथा सर्वदुःखों के विनाशार्थ पराक्रम करते हैं ॥१३॥

४. समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे निग्गंथा भगवंतो अप्पेगइया आभिणिबोहियणाणी जाव केवलणाणी, अप्पेगइया मणबलिया वयबलिया कायबलिया, अप्पेगइया मणेणं सावाणुग्गहसमत्था ३,अप्पेगइया खेलोसहिपत्ता एवं जल्लोसहि०,विप्पोसहि,आमोसहि०,सव्वोसहिपत्ता अप्पेगइया कोट्ठबुद्धी एवं बीयबुद्धी पडबुद्धी, अप्पेगइया पयाणुसारी अप्पेगइया संभिन्नसोया,अप्पेगइया खीरासवा,अप्पेगइया महुआसवा,अप्पेगइया सप्पिआसवा, अप्पेगइया अक्खीणमहाणसिया एवं उज्जुमई, अप्पेगइया विउलमई विउव्वणिड्ढिपत्ता चारणा विज्जाहरा आगासाइवाइणो ॥ अप्पेगइया कणगावलिं तवोकम्मं पडिवण्णा एवं एगावलिं खुड्डागसीहनिक्कीलियं तवोकम्मं पडिवण्णा....संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ।

—औपपातिक समवसरणाधिकार

श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी अनेक निर्ग्रन्थ भगवन्त, जिनमें कई एक मतिज्ञानी हैं यावत् कई केवलज्ञानी हैं। कई मनोबली, वचनबली एवं कायबली हैं, तो कई मन, वचन एवं काया से शाप और अनुग्रह की क्रिया करने में समर्थ हैं। कई खेल्लोषधिलब्धिवाले हैं तो कई जलमौषधि, विप्रुड़ोषधि, आमर्षौषधि, और सर्वौषधिलब्धिवाले हैं। कई कोष्ठक बुद्धिवाले हैं तो कई बीजबुद्धि और पटबुद्धिवाले हैं। कई पदानुसारिणी लब्धिवाले हैं तो कई संभिन्नश्रोतलब्धि-वाले हैं। कई क्षीरमधुसर्पिराश्रवलब्धिवाले हैं तो कई ऋजुमति, विपुलमति एव विकुर्षणाऋद्धियुक्त हैं। कई चारण एवं विद्याधर हैं तो कई आकाश में गमन करनेवाले हैं। कई कनकावली तप कररहे हैं तो कई एकावली, लघुसिंह-निष्क्रीड़ित आदि तप में लीन हैं।" इस प्रकार संयम-तप से आत्मा को भावित करते हुए विहार कररहे हैं।

५. पंच णियंठा, पण्णत्ता, तं जहा—
पुलाए, बउसे, कुसीले, नियंठे, सिणाए।

—**स्थानांग ५।३।४४५**

निर्ग्रन्थ पांच प्रकार के होते हैं—

(१) **पुलाक**—साररहित धान्य को पुलाक कहते हैं। तप और ज्ञान से प्राप्त लब्धि के प्रयोग द्वारा बल-वाहन सहित चक्रवर्ती आदि का मानमर्दन करने से तथा ज्ञानादि के अतिचारों का सेवन करने से जिनका संयम पुलाकवत् सार-रहित हो, वे पुलाकनिर्ग्रन्थ कहलाते हैं।

(२) **बकुश**—बकुश शब्द का अर्थ चित्र (चीते जैसा) वर्ण है। शरीर एवं उपकरणों की शोभा-विभूषा करके उत्तरगुणों

में दोष लगाने से जिनका चारित्र चित्रवर्ण (दोषों के दाग-वाला) होगया है, वे बकुशनिर्ग्रन्थ कहलाते हैं।

(३) **कुशील**—मूल व उत्तर गुणों में दोष लगाने से तथा संज्वलन कषाय के उदय से जिनका शील-चारित्र कुत्सित व दूषित हो गया है, वे साधु कुशीलनिर्ग्रन्थ कहलाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं—प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील।

(४) **निर्ग्रन्थ**—ग्रन्थ का अर्थ यहाँ मोह है। जो साधु मोह से रहित हैं, उन्हें निर्ग्रन्थ कहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं—उपशान्तमोहवाले एवं क्षीणमोहवाले। दोनों क्रमशः ग्यारहवें-बारहवें गुणस्थान में निवास करते हैं।

(५) **स्नातक**—स्नान किये हुए को स्नात या स्नातक कहते है। शुक्लध्यान द्वारा समस्त घातिककर्मों को खपाकर जो शुद्ध हो गये हैं (नहालिये हैं), वे मुनि स्नातक-निर्ग्रन्थ कहलाते हैं।

१५ स्थविर

१. सन्मार्ग से गिरते हुए मनुष्य को स्थिर करनेवाले व्यक्ति **स्थविर** कहलाते हैं।

२. दसविहा थेरा पण्णत्ता, तं जहा—गामथेरा, णगरथेरा, रट्ठथेरा, पसत्थथेरा, कुलथेरा, गणथेरा, संघथेरा, जाइथेरा, सुयथेरा, परियायथेरा।

—स्थानांग १०।७६१ तथा समवायाङ्ग १०

स्थविर दस प्रकार के कहे हैं—(१) ग्रामस्थविर, (२) नगर-स्थविर, (३) राष्ट्रस्थविर, (४) प्रशास्तृस्थविर, (५) कुल-स्थविर, (६) गणस्थविर, (७) संघस्थविर, (८) जातिस्थविर, (९) श्रुतस्थविर, (१०) पर्यायस्थविर।

३. समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे थेरा भग-वंतो जाइसंपण्णा कुलसंपण्णा बलसंपण्णा रूवसंपण्णा विणयसंपण्णा णाणसंपण्णा दंसणसंपण्णा चरित्तसंपण्णा लज्जासंपण्णा लाघवसंपण्णा, ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी, जियकोहा जियमाणा जियमाया जियलोभा जिय-इंदिया जियणिद्दा जियपरीसहा, जीवियासमरणभय-विप्पमुक्का, वयप्पहाणा ⋯ मंतप्पहाणा वेयप्पहाणा बंभ-

प्पहाणा नयप्पहाणा नियमप्पहाणा सच्चप्पहाणा सोयप्पहाणा........सुसामण्णरया दंता इणमेव णिग्गंथं पावयणं पुरओ काउं विहरंति। तेसि णं भगवंताणं आयावायाविविदिता भवंति, परवाया विदिता भवंति, आयावायं जमइत्ता नलवणमिव मत्तमायंगा अच्छिद्दपसिणवागरणा रयणकरंडगसमाणा कुत्तियावणभूया परवादियपमद्दणा दुवालसंगिणो समत्तगणिपिडगधरा.....................अजिणा जिणसंकासा, जिणा इव अवितहं वागरमाणा संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

श्रमण भगवान् महावीर के अंतेवासी बहुत से स्थविर भगवंत जातिसंपन्न हैं तथा कुल, बल, रूप, विनय, ज्ञान, दर्शन, चारित्र लज्जा, एवं लाघवसंपन्न हैं। ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी और यशस्वी हैं एवं क्रोध-मान आदि को जीतनेवाले हैं। वे जीविताशा और मरणभय से विप्रमुक्त हैं। व्रत, गुण, करण, चरण, निग्रह, निश्चय, आर्जव, मार्दव, लाघव, क्षान्ति, मुक्ति, विद्या, मन्त्र, वेद, ब्रह्म, नय, नियम, सत्य और शौच में प्रधान-श्रेष्ठ हैं।.... वे श्रमणत्व में रक्त हैं, दान्त हैं और इस निर्ग्रन्थप्रवचन को आगे करके विचर रहे हैं। जिन्हें आत्मवाद (स्वसिद्धान्त) और परवाद (अन्यमत के सिद्धान्त) विदित हैं - आत्मवाद को हृदय में जमाकर नलवन में मस्त हाथी की तरह ज्ञानवन में रमण कर रहे हैं, जटिल से जटिल प्रश्नों का सरलता से उत्तर देने में समर्थ हैं। वे रत्नकरण्ड के समान हैं, कुत्रिकापण

जैसे हैं[1], परवादियों का प्रमर्दन करनेवाले हैं। द्वादशाङ्ग के ज्ञाता हैं, समस्त गणिपिटक के धारक हैं।.......जिन न होकर भी जिन के समान हैं और जिनके तुल्य अवितथ-सत्यवाणी वागरते हुए संयम-तप से आत्मा को भावित करते हुए विहार कररहे हैं।

१ कु-पृथ्वी, त्रिक-तीन, आपण-दुकान अर्थात् स्वर्ग, मर्त्य, पातालरूप तीनों पृथ्वियों में उपलब्ध होनेवाली सब वस्तुएँ जिस दुकान में मिल सकती हों, उस दुकान को **कुत्रिकापण** कहते हैं। पुराने जमाने में ऐसी देवाधिष्ठित दुकानें बड़े शहरों में हुआ करती थीं। यहां स्थविरों को कुत्रिकापण की उपमा देने का मतलब यह है कि उनके पास कुत्रिकापण की तरह हर एक प्रकार के ज्ञान का अद्भुत संग्रह होता है।

१६ तापस

१. स तापसो यो परतापकर्षणः।

वास्तव में तापस-वही है, जो दूसरों का संताप दूर करे।

२. तवेण होइ तावसो। —उत्तराध्ययन २५।३२

तप करने से तापस होता है।

३. कुसचीरेण न तावसो। —उत्तराध्ययन २५।३१

वल्कलादि वस्त्रमात्र पहनने से तापस नहीं होता।

१७ फकीर

१. **फकीर का अर्थ—**

फे-फाका(तपस्या),काफ-कनायत(फाके पर भरोसा),इये-याद इलाही, (पल-पल में प्रभु का स्मरण), रे-रियायत-संयम में रहना। (फ़े-काफ-इये-रे=फ़कीर) तत्त्व यह है कि जो तपस्या करता है एवं उसमें भरोसा रखता है तथा प्रभु का स्मरण करता हुआ संयम में रहता है, वह फकीर है।

२. फिक्र छांड़ फराकमल धर चित्त आतम धीर,
दया कपन पहने फिरे, ताको नाम फकीर।

३. फिकर फिकर को खात है, फिकर फिकर का पीर,
फिकर का जो फाका करे, ताको नाम फकीर॥

४. फकीर सोही फरक्क रहे, नहिं संग करे विषयी-जन केरा,
आप हवाल में मस्त रहे,वाड़ी बाग बजार मसीत में डेरा।
आप उपाय न छावत छप्पर, होत खुशी जहां लेत वसेरा,
'रामचरण' खुदा भख भंजन,बार गिने नहिं सांझ-सवेरा॥

५. मेडिय मंदिर छांड़ के क्यूं वन,
बांधत झूंपड़ी फूस-तटिंदा,
लूखड़ी-सूकड़ी खाय रहो,
काला मुँह करो तुम खाट मटिंदा।

रूप उन्हों कूंहि लोडिए जो कोई,
नारी का आसक होय लटिंदा।
फकीरी का राह कठिन है,
उली पग धरतां निकले दूध छटिंदा।

—भाषाश्लोकसागर

६. गिहं न छाए णपि छायएज्जा। —सूत्रकृतांग १०।१५

साधु स्वयं न छप्पर छाए और न दूसरे से छवाए।

७. **आरा** शहर में **मुहम्मद अलतवी** कलेक्टर ने एक फकीर से पूछा—अच्छे साधु कहाँ देखे ?

फकीर—कुंभ के मेले में।

कलेक्टर—मुसलमान होकर कुंभ का नाम कैसे ?

फकीर—जैसे ऊपर चढ़े व्यक्ति की दृष्टि में छोटे-बड़े सभी वृक्ष एक समान होते हैं, उसी प्रकार जिसका मन संसार से ऊपर उठ गया है, उसके दिल में हिन्दु-मुसलमान का भेद नहीं रहता।

१. वदनं प्रसादसदनं, सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः ।
करणं परोपकरणं, येषां केषां न ते वन्द्या !

जिनका वदन आनन्द का सदन है, हृदय दयासहित है, वाणी अमृतवर्षिणी है और इन्द्रियाँ परोपकारिणी हैं—ऐसे सन्त पुरुष किसके वन्दनीय नहीं होते ।

२. सन्तोऽनपेक्षा मच्चित्ताः, प्रणताः समदर्शिनः ।
निर्ममा निरहंकारा, निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः ।।

—भागवत ११।२६।२७

संत जब किसी प्रकार की इच्छा नहीं करते, वे मुझमें ही चित्त लगाए रहते हैं तथा अतिनम्र, समदर्शी, ममत्वरहित, अहंकाररहित, निर्द्वन्द्व एवं निष्परिग्रह होते हैं ।

३. मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं,
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ।।

— भर्तृहरि-नीतिशतक ६९

जिन के मन-वचन-काया धर्म-अमृत से पूर्ण है, जो तीनों ही लोकों को अपने उपकार से तृप्त कर रहे हैं तथा जो दूसरों के परमाणु जितने छोटे गुणों को भी पर्वत जितना बड़ा करके मन में खुश हो रहे हैं, ऐसे-सन्त कितने-क हैं ?

४. स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः। —**श्रीमद्भागवत १।१६।८**
साधु स्वयं तीर्थों को पवित्र करते हैं।

५. संत हृदय नवनीत समाना,
कहा कविन्ह पै कहै न जाना।
निज परिताप द्रवइ नवनीता,
पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता।।
—**रामचरितमानस**

६. गङ्गा पापं शशी तापं, दैन्यं कल्पतरुर्यथा।
पापं तापं च दैन्यं च, हन्ति सन्तो महाशयाः।।
—**चंदचरित्र, पृ० १०६**

गंगा पाप का, चन्द्रमा ताप का और कल्पवृक्ष दीनता का नाश करता है, किन्तु महामना संतपुरुष पाप, ताप एवं दीनता—इन तीनों का ही नाश करते हैं।

७. कोउक निन्दत कोउक वन्दत,
कोउक भावसों देत है भच्छन।
कोउ कहत्त ये मूरख दीसत,
कोउ कहत्त ये चतुर-विचच्छन।
कोउक आय लगावत चन्दन,
कोउक डारत है तन तच्छन।
सुन्दर! काहू पै राग न रोष सो,
ये सब जानिये सन्त के लच्छन।

८. सज्जन ऐसा होइए, जैसा बन का कैर।
ना कहूं सों दोस्ती, ना काहूं सों वैर।।

९. संतां ! हेत जु राखिये, पातलवाली प्रीति ।
जीम्यां पाछै फेंक दै, या सन्तन की रीत ।।

१०. भावे लंबे केश रख, भावे मुंड मुंडाव ।
साहिब से सच्चे रहो, बन्दे से सदभाव ।।

—नानक

११. जैसे—सत्ताधारी पुरुषों की वाणी से सत्ता एवं गृहिणियों की वाणी से प्रेम झलकता है। उसी प्रकार सन्तों की वाणी से त्याग-वैराग्य-पवित्रता एवं आत्मबल प्रकट होता है और श्रोताओं पर अवश्य प्रभाव पड़ता है ।

●

१९ कतिपय जगत्प्रसिद्ध संत-महात्मा

१. श्रमण भगवान महावीर—

जैन-सिद्धान्तानुसार आप चौबीस तीर्थङ्करों में से अंतिम तीर्थंकर थे। इस समय आपका ही शासन चल रहा है।

आप का जन्म क्षत्रियकुंड नगर में चैत्र शुक्ला १३ को हुआ था। माता का नाम त्रिशला और पिता का नाम सिद्धार्थ था। जबसे आप गर्भ में आये तभी से उत्तरोत्तर अन्न-धनादि की वृद्धि होने लगी। अतः पिता ने आपका नाम **वर्द्धमान** रखा। युवावस्था प्राप्त होने पर, यशोदा नाम की राजकन्या से आपका विवाह हुआ।

जब आप तपस्यार्थ वन की ओर जाने लगे, तब इन्द्र ने आपको छद्मस्थ-अवस्था में उपसर्गों से सुरक्षित रहने में सहायता देना चाहा; पर आपने कहा—मुझे किसी दूसरे का सहारा नहीं चाहिए। सुनकर इन्द्र चकित हुआ और आपको **'महावीर'** के नाम के संबोधित किया।

आपका तपस्याकाल बहुत लम्बा चला—१२ वर्ष १३ पक्षों में आपने केवल ११ मास २० दिन आहार लिया। आपके तपस्याकाल में बड़े-बड़े उपसर्ग आए, परन्तु आप मेरुवत् अचल रहे। आखिर कर्म-शत्रु हारे और वैशाख शुक्ला १० को आप केवलज्ञानी बने।

आपने धर्म-मार्ग में गुण और कर्म के ही मुख्य माना और 'अहिंसा' को 'परमधर्म' घोषित किया। ३० वर्ष तक धर्म का प्रचार करने के पश्चात् आपका निर्वाण कार्तिक कृष्ण अमावस्या को हुआ।

—त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र के आधार पर।

२. महात्मा बुद्ध—

ये माया माता और शुद्धोधन राजा के पुत्र थे। इनका नाम सिद्धार्थ राजकुमार था एवं इनकी स्त्री यशोधरा थी। वृद्ध पुरुष को देखकर वैराग्य हुआ। फिर एक बीमार पुरुष को देखा तथा मार खाते हुए बैल को देखा। फिर चींटियों को खाती हुई छिपकली एवं उसको निगलता हुआ साँप, उस पर झपटती हुई चील और उसे मारते हुए शिकारी को देखा एवं वैरागी बनकर नवजात पुत्र 'राहुल' और उसकी माता 'यशोधरा' को छोड़कर, रात के समय उठकर चल पड़े। ज्ञानी बनकर चार आर्य सत्यों का एवं आर्यअष्टांगमार्ग का उपदेश दिया—

आर्यसत्य :—(१) वस्तु क्षणिक है-दुखरूप है। (२) तृष्णा दुःख का मूल है। (३) तृष्णा-नाश से दुःख का नाश होता है। (४) रागद्वेष-अहंकार के नाश से निर्वाण होता है।

आर्यअष्टांगमार्ग:—(१) सत्यविश्वास, (२) नम्रवचन, (३) उच्चलक्ष्य, (४) सदाचरण, (५) सद्वृत्ति, (६) सद्गुणों में स्थिर रहना, (७) बुद्धि का सदुपयोग, (८) सद्ध्यान।

महात्मा बुद्ध ने जातिवाद एवं हिंसा का विरोध किया। एक बार राजा बिम्बिसार के यहाँ पशुयज्ञ हो रहा था। बुद्ध आकर बीच में खड़े हो गये। हिंसा

रुकी, राजा समझा। एक बार एक राक्षस इन्हें मारने दौड़ा। बुद्ध शान्त रहे। राक्षस कबूतर के रूप में परिवर्त्तित हुआ।

—कल्याण संतअंक के आधार से।

३. पारसी-धर्म के संस्थापक महात्मा 'जरथुश्त्र'—

ईसा से लगभग ६०० वर्ष पहले पूर्वी ईरान के **रए शहर** में माडिया नाम की जाति के मगी नामक गोत्र में इनका जन्म हुआ। इनके वंश का नाम स्पितमा (ज्योतिर्मय), माता का नाम **दोग्दा** और पिता का नाम **पोरुशास्प** था।

कहा जाता है कि इनके जन्म से पूर्व ही अत्याचारी बादशाह और सरदारों को अपशकुन होने लगे। उन्होंने इनको मारने के अनेक उपाय किये, इन्हें जलती हुई आग में डाला गया, पर आग बुझ गई, बाघों के झुण्ड में फैंका गया, पर उनके जबड़े ही जकड़ गये और ये जीवित रह गये। ये १५ वर्ष की आयु में तपस्या के लिए जंगल में जा बैठे। १५ वर्ष तक कठोर तपस्या करके इन्होंने कामादि-शत्रुओं पर विजय पाई और "जरथुश्त्र" (सुनहरी रोशनीवाले) के नाम से प्रसिद्ध हो गये। फिर ये सच्चिदानंद-स्वरूप ईश्वर की आराधना और मानव-सेवा का प्रचार करने लगे।

प्रारम्भ में लोगों ने इनकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया, पर जब बल्ख के बादशाह **वीश्ताश्प** ने इन्हें आमंत्रित किया और इनका उपदेश स्वीकार किया तब दूसरे लोग भी काफी संख्या में इनको मानने लगे।

सतहत्तर वर्ष की आयु में प्रार्थना करते समय कतिपय विरोधियों द्वारा इन पर आक्रमण हुआ इन्होंने प्रसन्नतापूर्वक

अपने आपको धर्म की वेदी पर चढ़ाते हुए विरोधियों से कहा—'होरमज्द' (ईश्वर) तुम्हें क्षमा करे। पारसीधर्म में वैदिकधर्म की तरह ज्ञान, भक्ति और कर्म-तीनों मार्ग अपनाये गये हैं, पर विशेषबल कर्म-मार्ग पर दिया गया है। यदि एक ही शब्द में कहें तो इस धर्म का सार है **परोपकार**।

—कल्याण संतअंक तथा
'पारसीधर्म क्या कहता है ?' के आधार से।

४. महात्मा ईसामसीह :—

इनका जन्म वि० सं० ५७ में फिलस्तीन की राजधानी यरूसलम से ६ मील दूर **बेथलहम** नगर के एक बढ़ई परिवार में हुआ था। माता का नाम **मरियम** और पिता का नाम **यूसुफ** था। बचपन से ही ईसा में अनेक दैविकगुणप्रकट हो गये थे। १२ वर्ष की आयु में तो ये यरूसलम के बड़े-बड़े विद्वानों से ज्ञान-चर्चा करने लग गये थे।

३० साल की आयु में ये जोर्डन नदी के किनारे **यूहन्ना** (जाँन) नामक एक महात्मा के पास उपदेश सुनने गये। यूहन्ना का उपदेश था—सबके साथ प्रेम से रहो। दूसरों का माल मत छीनो। जो कुछ मिला है, उसी में सन्तुष्ट रहो। गरीबों को मत सताओ। यदि तुम्हारे पास दो कोट है तो एक उसे दे दो, जिसके पास न हो। अगर तुम्हारे पास खाने को है तो उसे खिलादो, जिसके पास खाने को कुछ भी नहीं है। अच्छी करनी करो और अपना जीवन बदलो।

ईसा को यूहन्ना का उपदेश बहुत पसंद आया और ये उनके शिष्य बन गये। फिर ये समाज में फैली हुई गलतप्रथाओं का विरोध करते हुए सत्य, दया, दान, क्षमा आदि मानव-

धर्मों का प्रचार करने लगे। यह प्रचार कतिपय रूढ़िवादी यहूदियों को असह्य हो गया। उन्होंने इन पर ऐसे मिथ्या अभियोग लगाये जिसके कारण इन्हें प्राणदण्ड दिया गया। सूली पर चढ़ने से पूर्व इनकी प्रार्थना थी—"प्रभो ! इन लोगों को क्षमा कीजिए, ये बेचारे नहीं जानते कि हम क्या कर रहे हैं ?"

ईसा के साइमन (पीटर) आदि १२ मुख्य शिष्य थे। ईसाई-धर्म और इस्वी सन् के प्रवर्त्तक ईसा ही थे। ईसाई धर्म का मुख्य तत्त्व है :—

Love is God, God is Love.

अर्थात् प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है।

— कल्याण संतअंक, तथा
'ईसाईधर्म क्या कहता है ?' के आधार से।

५. सुकरात—

ईसा से पूर्व पाँचवीं सदी के उत्तरार्ध में यूनान में इनका जन्म हुआ। पिता सिलावट थे एवं माता दाई का काम करती थी। बचपन से ही ये पढ़ने में तेज थे। इन्होंने महात्माओं से ज्ञान एवं जजों-वकीलों से तर्क-शक्ति बढ़ाई। क्रोध को विशेषरूप से जीता और राजधानी एथेंस में धर्म-प्रचार करने लगे।

उस समय सूफीसंतों का वहाँ बड़ा जोर था। वे लौकिक-प्रेम की गाथाओं के माध्यम से लोगों को ईश्वर-प्रेम की ओर आकृष्ट करने का स्वांग रचते थे। परन्तु वस्तुतः परमार्थसत्ता के वास्तविक ज्ञान का उनमें अभाव ही था। सुकरात के प्रभाव से उन लोगों का प्रभाव शनैः शनैः क्षीण होने लगा।

सुकरात को मनुष्य की अल्पज्ञता का भी पूरा भान हो चुका था। उनका यह प्रसिद्ध वाक्य था—I Know that I Know nothing अर्थात् मेरा ज्ञान तो यही बतलाता है कि मैं कुछ नहीं जानता। इनके आत्मवाद का युवकों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा, किन्तु राज्याधिकारी विरुद्ध हो गये और उन्होंने इन पर निरीश्वरवादिता का अभियोग लगाकर इन्हें मृत्युदंड के रूप में जहर का प्याला दे दिया, जिसे ये हँसते-हँसते पी गए।

—कल्याण संतअंक के आधार से।

६. महात्मा डायोजिनीज—

डायोजिनीज ग्रीस के एक महान् तत्त्ववेत्ता संत थे। जीवन के बाह्यव्यवहारों के प्रति लापरवाह होकर ये बाजार में पड़े हुए एक काठ के पीपे में ही मस्त पड़े रहते थे। शाह सिकन्दर एकबार इनके दर्शनार्थ आया और अपनी महानता दिखलाता हुआ बोला :—

सिकन्दर—मैं महान विजेता सिकन्दर हूँ।

महात्मा—मैं सिनिक (अवधूत) डायोजिनीज हूँ।

सिकन्दर—मैं सारी दुनियाँ को मुट्ठी में रखता हूँ।

महात्मा—मैं सारी दुनियाँ के लात मारता हूँ!

सिकन्दर—आप, मैं चाहूं उससे ज्यादा नहीं जी सकते।

महात्मा—तू चाहे या न चाहे, मुझे अवश्य मरना है।

सिकन्दर—आप चाहें सो माँग सकते हैं।

महात्मा—मेरे सामने की धूप छोड़कर दूर हो जाओ।

महात्मा की निःस्पृहता से प्रभावित होकर सिकन्दर ने कहा—"अगर सिकन्दर-सिकन्दर न होता तो ग्रीस का तत्त्ववेत्ता डायोजिनीज होता।"

—कल्याण संतअंक एवं श्रुति के आधार से।

७. मार्टिन लूथर—

जर्मनी (यूरोप) में एक किसान के घर सन् १४८३ ई० में इनका जन्म हुआ। वकालत पढ़े। धर्म की तरफ झुकाव अधिक था।

उन दिनों रोम के पोप (धर्मगुरु) सारे यूरोप में ईश्वरवत् पूजे जाते थे। उनका यह कहना था कि बड़े से बड़ा पापी भी हमारा सर्टीफिकेट (मुक्तिपत्र) लेने से स्वर्ग-गामी बन जाता है। श्रद्धालु लोग धन देकर पोपों से 'मुक्ति-पत्र' लेने लगे। पाप-अत्याचार की वृद्धि होने लगी। लूथर ने लोगों को पोपलीला का रहस्य समझाते हुए कहा—सत्य, अहिंसा आदि के बिना इन कागज के टुकड़ों से कल्याण कभी नहीं होगा। लोग समझे एवं 'प्रोटेस्टेंट' मत चला। पोप क्रुद्ध हुए तथा इन्हें जीवित जला देने की आज्ञा दी। लूथर बच निकले और प्रोटेस्टेंट धर्म का प्रचार करते हुए ६० वर्ष की आयु में परलोकगामी हुए।

—अध्ययन के आधार पर।

८. महर्षि वाल्मीकि—

इनका मूल नाम अग्निशर्मा था। डाकुओं के संसर्ग में रहकर ये लूटमार और हत्याएँ करने लगे। एक दिन इन्होंने सप्त-ऋषियों पर भी आक्रमण कर दिया। ऋषियों ने पूछा भाई! यह पाप किसके लिए कर रहे हो? इन्होंने कहा—घरवालों के लिए। ऋषि बोले—क्या वे पाप के फल भोगने में हिस्सा ले लेंगे? इन्होंने माता-पिता, स्त्री आदि से पूछा तो

उन सबने इन्कार कर दिया। तब ये रोते-रोते आकर ऋषियों के चरणों में पड़ गये और उनके उपदेश से इनके ज्ञान-नेत्र खुल गये। सप्तऋषियों ने **रामनाम** का मंत्र दिया। ये एक ही जगह बैठकर **रामराम** जपते रहे। इनका शरीर दीमकों का घर बन गया। (दीमकों के घर को **वल्मीक** कहते हैं) तेरह वर्ष बाद, ऋषि वहाँ वापिस आये और इनको वल्मीक से निकाला। वल्मीक से निकलने के कारण इनका नाम **वाल्मीकि** हुआ। ये ही वाल्मीकिऋषि **आदिकवि** के नाम से प्रख्यात हैं।

(स्कंदपुराण पाँचवाँ अवंतिखंड, अवंतिक्षेत्र माहात्म्य अ० २४)

६. जगद्गुरु-आदिशंकराचार्य—

इनका जन्म सम्वत् ८३५, कोचीन (केरल), माता सती, पिता शिवगुरु एवं जन्म का नाम शंकर था। शंकर प्रथमवर्ष में मातृभाषा पढ़े एवं दूसरे वर्ष में १८ पुराण पढ़े। तीन वर्ष की आयु में पंडित बने एवं पाँचवें वर्ष इन्हें जनेऊ दी गई। इनके विषय में यह भी कहा जाता है—

अष्टवर्षे चतुर्वेदी, द्वादशे सर्वशास्त्रवित्।
षोडशे कृतवान् भाष्यं, द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्॥

ये आठ वर्ष की आयु में चारों वेद और बारह वर्ष की आयु में अन्य सभी शास्त्र पढ़ चुके थे। सोलह वर्ष की आयु में इन्होंने ब्रह्मसूत्र एवं उपनिषदों के भाष्य बनाए और बत्तीसवें वर्ष में ये दिवंगत हो गये।

वैदिकधर्म का मंडन करना इनको वचपन से ही अभीष्ट था। वेदपारंगत कुमारिलभट्ट से प्रयाग में मिले।

उन्होंने शंकर से मंडनमिश्र को अपनी ओर खींचने की सलाह दी। नर्मदातट पर माहिष्मतीनगरी गये। मंडन से १६ दिन चर्चा हुई। (उभयभारती उनकी पत्नी मध्यस्थ थी) मंडनमिश्र हारे। फिर उभयभारती अर्द्धांगिनी के नाते चर्चा में आ बैठी। कामशास्त्र-सम्बन्धी प्रश्न चलाए। शंकर ने समय माँगकर परदेह-प्रवेशिनी विद्या से मृत राजा के शरीर में प्रवेश किया और कामशास्त्र पढ़ा। तत्पश्चात् उभय-भारती से १७ दिन चर्चा करके विजय प्राप्त की। दोनों (पति-पत्नी) शंकर के शिष्य-शिष्या बने एवं उनका सहयोग पाकर इन्होंने, वैदिकधर्म का अत्यधिक प्रचार किया। सम्वत् ८६७ में शंकराचार्य दिवंगत हो गये।

—शंकरदिग्विजय के आधार से।

१०. महात्मा कबीर—

इनका जन्म वि० सं० १४५५ जेठसुदी पूनम को हुआ था। माता का नाम नीमा और पिता का नाम नीरू था। ये जुलाहे का धंधा करते थे। एक बार ये एक पहर-रात रहते गंगाघाट की सीढ़ियों पर जा पड़े। उधर से गंगा-स्नान करके लौटते समय स्वामी **रामानन्दजी** का पैर इनके सिर पर पड़ गया। साश्चर्य रामानन्दजी के मुँह से **'राम-राम'** शब्द निकला। इन्होंने इसी रामराम को गुरुमंत्र मान लिया और रामानन्दजी ने भी इन्हें शिष्यरूप में स्वीकार कर लिया। (ये शूद्र को शिष्य नहीं बनाते थे।)

कबीर पढ़े-लिखे न होने पर भी मार्मिक कवि थे। इनको माननेवाले हिन्दू-मुस्लिम दोनों ही थे। एक बार **झूठा रोजा, झूठी ईद** कह देने पर इन्हें बादशाह सिकंदर लोधी द्वारा गंगा में बहा दिया गया। तब इन्होंने कहा—

गंग लहर मेरी टूटी जंजीर,
मृगछाला पर बैठ कबीर।
कह कबीर कोउ सङ्ग न साथ।
जिसको राखत है रघुनाथ ॥

इस चिन्तन के साथ ही इनके बंधन खुल गये और ये कुछ ही क्षणों में तट पर आ खड़े हुए। इनकी रचनाओं में **बीजक, आदिग्रन्थ, साखी, शब्दावली, अखरावटी, ज्ञान-गुदड़ी** आदि मुख्य है। कबीर अहिंसा, सत्य और सदाचार के प्रचारक थे और इन्हें बाह्याडम्बर से बड़ी चिढ़ थी। इस समय इनके पंथ (कबीरपंथ) को माननेवाले ८-९ लाख बताए जाते हैं।

—कल्याण संतअंक एवं श्रुति के आधार से।

११. महात्मा तुलसीदास—

इनका जन्म **राजापुर** गाँव में **आत्माराम** ब्राह्मण के घर, माता **हुलसी** के गर्भ से मूलनक्षत्र में हुआ। मूलनक्षत्र में जन्म के कारण इनको माता-पिता ने छोड़ दिया। ये छटपटा रहे थे। संयोग-वश वहाँ साधु **नरहरिदास**जी आगये और इन्हें ले गये, पाल-पोषकर वेद-पुराण, रामायण आदि पढ़ाया। बाद में इनका विवाह हुआ। स्त्री पर ये इतने मुग्ध हो गये कि उसे कभी पीहर नहीं भेजते थे। एकबार इनका साला आया और इनको बिना पूछे ही अपनीं बहन को ले गया। पता चलते ही ससुराल के लिए जमुना की तेजधार में कूद पड़े। तैरते-तैरते थक गये। तब एक मुर्दे की टाँग पकड़कर पार पहुँचे। अँधेरी रात थी। ससुराल का दरवाजा बन्द था। अतः ये दीवार पर लटकते हुए एक साँप को रस्सी समझ कर उसके

सहारे स्त्री के पास जा खटके। भय, लज्जा और क्रोध से काँपती हुई स्त्री ने कहा :—

हाड़-मांस को देह मम, ता पर जितनी प्रीति।
तिसु आधी जो राम-प्रति, अवसि मिटहि भव-भीति ।।

उन्हें ज्ञान हो गया एवं साधु बनकर तीर्थों में सत्संग करते हुए घूमने लगे। वि० सं० १६३१ में; अयोध्या में रामायण की रचना आरम्भ की फिर उच्चकोटि के २१ ग्रन्थ और बनाये जिसमें से १२ ग्रन्थ वर्तमान में मिलते हैं। इन्हें हिन्दी का शेक्सपियर और कालिदास कहा जाता है।

एक बार अकबर ने इन्हें चमत्कार दिखाने के लिए कहा और न दिखाने पर लालकिले में बन्द करवा दिया। अचानक बन्दरों की सेना ने आकर किले में त्राहि-त्राहि मचादी, (हनुमान का इष्ट था) अकबर ने माफी माँगी।

एक बार एक स्त्री का पति मर गया था। श्मशान जाते समय उसकी स्त्री ने कुटिया में आकर इन्हें प्रणाम किया। इन्होंने सहजभाव में कह दिया। 'सौभाग्यवती हो !' चिल्लाकर स्त्री ने कहा—

पति हमारा चल बसा, हम भी चालनहार।
तुलसी तुम्हरे वचन का, होगा कवन हवाल ।।

तुलसीदास जी ने मुर्दा मँगवाकर उसके सिर पर हाथ रखा और राम का ध्यान किया—

तुलसी मड़ा मंगाय के, दिया शीश पर हाथ।
हमतो कछु जाने नहीं, तुम जानो रघुनाथ ।।

कहा जाता है कि इतना कहते ही मुर्दा जीवित होगया। राम-भक्ति में लीन महात्मा तुलसीदासजी का देहावसान वि० संवत् १६८०, श्रावण शुक्ल सप्तमी को काशी के (असीघाट) गंगातट पर हुआ, जिसके विषय में यह दोहा प्रसिद्ध है—

सम्वत् सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो सरीर॥

—कल्याण संतअंक एवं श्रुति के आधार से।

१२. सिखगुरु नानकदेवजी—

सिखों के दस गुरु हुए हैं। उनमें प्रथम गुरु नानकदेवजी थे। इनका जन्म 'राइभोई की तलवंडी' (ननकाणासाहिब) में वेदी कालूचन्द पटवारी के घर माता तृप्ताजी के उदर से वैशाख सुदी ३ सं० १५२६ को हुआ। गुरु नानक बचपन से ही बड़े शान्त-स्वभाव के थे। एक दिन माता के आग्रह पर ये बच्चों में खेलने गये। वहाँ इन्होंने बच्चों को पद्मासन से बैठा दिया और कहा—"सत्यकर्त्तारि" कहते जाओ। पिता ने इन्हें पढ़ने के लिए दो पंडितों और एक मौलवी के पास भेजा, किन्तु इन्होंने अपने आत्मबल से तीनों उस्तादों को शिष्य बना लिया। एक वार पिता ने इन्हें कुछ सौदा लाने को कहा। इन्होंने सारे रुपये भूखे संतों को खिलाने में खर्च कर दिये। घर आकर अपने पिता से इस सौदे को सच्चा सौदा बताया। पिता को बड़ा क्रोध आया और इन्हें काफी मारा-पीटा। इनकी बहिन 'नानकी' से यह नहीं देखा गया और वह इन्हें अपने घर (सुलतानपुर) ले गई। वहाँ ये मोदीखाने में काम करने लगे।

सम्वत् १५४४ में २४ जेठ को इनका विवाह मूलचंदजी की सुपुत्री सुलक्षणा के साथ हुआ, जिससे इनके दो पुत्र (बाबा श्रीचन्द्र और बाबा लक्ष्मीदास) हुए।

मोदीखाने में एक दिन आटा तोलते समय एक-दो-तीन आदि कहते-कहते जब तेरह का नाम आया तो "तेरा-तेरा" ही कहते गये (हे प्रभो ! मैं तेरह हूं) और सारा आटा तोल दिया। मोदीखाने का कार्य छोड़कर धर्मप्रचार में लग गये।

सं० १९५४ में इन्होंने देशाटन प्रारम्भ किया। इनकी चार यात्राएं विशेष प्रसिद्ध है—

(१) पूर्व में हरिद्वार, देहली, नैमिषारण्य, अयोध्या, प्रयाग, काशी यावत् जगन्नाथपुरी। (२) दक्षिण में सेतुबन्ध-रामेश्वर एवं सिंहलद्वीप। (३) उत्तर में सिक्किम, भूटान और तिब्बत। (४) पश्चिम में रूम, बगदाद, ईरान, काबुल तथा विलोचिस्तान होते हुए मुसलमानों के प्रसिद्ध तीर्थ मक्का पहुँचे। सभी जगह **वाहेगुरु** (परमात्मा) की अनन्य उपासना का उपदेश दिया। मक्के में एक दिन ये काबे की तरफ पैर करके सो गये। जब काजी क्रुद्ध, हुआ तो ये बोले—जिधर, अल्लाह न हो, मेरे पैर उधर कर दीजिए। काजी ने जिधर को इनके पैर फेरे काबा भी उधर ही फिर गया। २५ वर्ष भ्रमण करने के बाद गुरु नानक **कर्त्तारपुर** में रहकर धर्म-प्रचार करने लगे।

सं० १५९६ आसोज सुदी १० में इनका परलोकगमन हुआ। उस समय इनकी आयु लगभग ७० वर्ष की थी।

अन्तिम-संस्कार के समय हिन्दू और मुसलमानों में विवाद खड़ा हो गया। जब वस्त्र उठाकर देखा तो इनका

शरीर ही नहीं मिला। अस्तु, आधा-आधा वस्त्र लेकर हिन्दुओं और मुसलमानों ने अपनी-अपनी विधि से अंतिम-संस्कार किया।

—कल्याण, संतअंक तथा
'सिखधर्म क्या कहता है ?' के आधार से।

१३. संत श्रीतुकारामजी चैतन्य—

इनका जन्म सं० १६६५ में पूना के पास देहू नामक ग्राम में हुआ। इनकी माता का नाम कनकबाई और पिता का नाम बोलोजी था। इनके दो विवाह हुए। पहली स्त्री का नाम रक्खूबाई और दूसरी का जीजीबाई था। जीजीबाई का स्वभाव बड़ा चिड़चिड़ा था। माता-पिता के वियोग के कारण १७ वर्ष की अवस्था में ही इनको घर का सारा भार संभालना पड़ा। दुकान में घाटे पर घाटा लगता गया और आखिर दीवाला निकल गया। इधर पहली स्त्री और पुत्र मर गये। अब इनका चित्त गृहस्थ-जीवन से बिलकुल उचट गया और ये विरक्त होकर कभी पहाड़ों पर, कभी मंदिरों में भजन-कीर्तन करने लगे। कीर्तन करते समय इनके मुख से **अभंगवाणी** निकलने लगी। बड़े-बड़े विद्वान् इनके भक्त बन गये, लेकिन वेदान्त के एक प्रकाण्ड पंडित को एक शूद्र के मुख से श्रुत्यर्थबोधक अभंग का निकलना बहुत अखरा।

आखिर पंडित रामेश्वर भट्ट के दबाव से इन्होंने अपने अभंगों की सारी बहियाँ इन्द्रायणी नदी के दह में डाल दीं और खुद अन्न-जल त्यागकर, विट्ठलनाथ के मंदिर के सामने ध्यान-मग्न होकर बैठ गये। कहा जाता है कि १३ दिन बाद भगवान ने दर्शन देकर कहा—"उठो और धर्म प्रचार करो।

तुम्हारे सारे अभंग भक्तों के पास सुरक्षित हैं।" (ये अभंग आज भी संत साहित्य में बहुत प्रसिद्ध हैं) इधर पंडित रामेश्वर भट्ट के सारे शरीर में जलन पैदा हो गई। वह इनकी शरण में आया और भक्त बना। तुकारामजी का धर्म प्रचार बढ़ा। कई बार छत्रपति शिवाजी भी इनके सत्संग में आये थे। सं० १७०६ चैत्र कृष्ण २ को इनका स्वर्गवास हुआ जनश्रुति के अनुसार देहावसान के बाद इनका शरीर नजर नहीं आया।

— **कल्याण संतअंक के आधार पर।**

१४. संत दादूदयालजी—

वि० सं० १६०१ में अहमदाबाद के लोदीराम नामक एक ब्राह्मण को साबरमती नदी में तैरता हुआ एक संदूक मिला और उसमें से एक हंसता हुआ बालक निकला। यही बालक आगे जाकर संत दादूजी कहलाया। कहा जाता है कि ११ वर्ष की आयु में श्रीकृष्ण ने इन्हें दर्शन और तत्त्वज्ञान दिया था। एक बार ये घर से निकल गये परन्तु घरवालों ने इन्हें वापस लाकर विवाह-बंधन में जकड़ दिया। १९ वर्ष की आयु में ये फिर निकल पड़े। इस बार ये सांभर (जयपुर) में जा छिपे और रुई धुनने का धंधा करते हुए १२ वर्ष तक कठिन तपस्या में लगे रहे। ये मुख्यतया "लय-योग" में लीन रहते थे और 'निरंजन-निराकार' पर जोर देते थे।

दादूजी के रज्जबदासजी-सुन्दरदासजी आदि १५२ शिष्य हुए जिनमें से १०० तो विरक्त रहे और शेष थांभाधारी कहलाने लगे। ५२ स्थानों में उनके दादू द्वारे बने हुए हैं।

दादूजी ने अपने नाम से कोई पंथ या सम्प्रदाय प्रसिद्ध

नहीं किया। लेकिन पीछे से दादूजी के अनुयायी 'दादूपंथी' कहलाने लगे।

दादूजी का प्रयाण सं० १६६० में नारायणा नामक स्थान में हुआ। यह स्थान दादूपंथियों का प्रधान तीर्थ स्थान कहलाता है।

—कल्याण 'संतअंक' के आधार पर।

१७. कृष्ण को परमभक्त मीराबाई—

ये मेड़तिया राजपूत राठोड़ जोधा जी की प्रपौत्री, दूदाजी की पौत्री एवं रतनसी की पुत्री थीं।

इनका जन्म सं० १५७३ के लगभग चौकड़ी (मारवाड़) में हुआ। इनके ताऊ के लड़के भाई वीर जयमल कृष्ण-भक्त थे। बहिन-भाई बचपन से ही कृष्ण-भक्ति में विशेष रुचि लेते थे। एक साधु के पास कृष्ण की सुन्दर मूर्ति देखकर मीरा ने बाल-हठ किया और उससे मूर्ति प्राप्त करली।

मीरा का विवाह महाराणा सांगा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ। किन्तु कुछ समय बाद उनका देहान्त हो गया। अब तो कृष्ण ही मीरा के एक मात्र प्राणाधार रह गये। मीरा कृष्ण-प्रेम में लीन होकर मन्दिरों में कीर्तन और नृत्य करने लगीं। इनके देवर राणा रतनसिंह को मीरा का इस प्रकार स्वतंत्ररूप से घूमना बहुत अनुचित लगा। उन्होंने इनको बहुत कहा-सुना और डराया-धमकाया भी, लेकिन जब ये किसी तरह नहीं मानी तब इनको जहर का प्याला दिया गया। जिसे ये भगवान् का चरणामृत मानकर पी गईं। फिर पिटारे में एक साँप भेजा गया जो इनके लिए सालिग्राम की

मूर्ति बन गया । आखिर मीरा एकदिन घर से निकल गईं और वृंदावन आदि स्थानों में घूमती हुई द्वारका पहुँच गईं । कहा जाता है कि वहीं सं० १६६० में मीरा रणछोड़दासजी की मूर्त्ति में विलीन हो गईं ।

'नरसी जी का मायरा' और 'गीतगोविंद—टीका' आदि मीरा की रचनाएँ मानी जाती हैं। मीरा के भजन बहुत ही लोकप्रिय हैं ।

—**'कल्याण' संतअंक के आधार पर ।**

१५. आर्यसमाज के संस्थापक स्वामीदयानंद सरस्वती—

स्वामीजी का जन्म सं० १८८२ में, टंकारा (गुजरात) में हुआ । इनका जन्म-नाम मूलशंकर था ।

कहा जाता है कि १४ वर्ष की आयु में एक बार ये शिवरात्रि का व्रत रखकर शिवमंदिर में रात्रि-जागरण कर रहे थे । शिवलिङ्ग पर चढ़ाई हुई सामग्री को चूहे खाने लगे एवं उस पर मल-मूत्र करने लगे । यह देखकर इनकी मूर्ति-पूजा से श्रद्धा उठ गई और इनके मन में यह विचार हुआ कि जब यह शिवमूर्ति स्वयं अपनी रक्षा ही नहीं कर पा रही है तो अपने भक्तों की क्या रक्षा करेगी ! अस्तु, उसी क्षण इन्होंने सच्चे शिव की खोज करने का निश्चय कर लिया । अब ये विरक्त रहने लगे । फिर भी माता-पिता ने इनका जबर्दस्ती विवाह रचाया । विवाह के सयय इनकी १४ वर्ष की बहिन मर गई । इस घटना से इनका विरक्तिभाव एकदम बढ़ गया और विवाह को छोड़कर घर से निकल गए । **पूर्णानंदजी** के पास जाकर संन्यास ले लिया और दूर-दूर तक भ्रमण करते हुए इन्होंने योगियों और सिद्धों से अनेक विद्याएँ प्राप्त कीं ।

मथुरा में प्रज्ञाचक्षु **स्वामी विवेकानंदजी** के पास वेदाध्ययन किया फिर उनकी आज्ञानुसार भारत भर में घूमकर वेदों का खूब प्रचार किया एव 'बम्बई में आर्यसमाज' की स्थापना की।

इनकी निर्भीकता अद्भुत थी। उपदेश के समय हर एक सत्य बात बेधड़क होकर कह डालते थे। कहा जाता है कि इसी कारण जोधपुर में इन्हें विष दिया गया था। असह्य-वेदना हुई,फिर भी ये समभाव में रहे और सन्१८८३ दीवाली की रात को समाधि-मरण प्राप्त किया।

—कल्याण संतअंक तथा अध्ययन के आधार से।

साधुओं के गुण

१. **चरण गुण**—

वय-समणधम्म-संजम, वेयावच्चं च बंभगुत्तीओ ।
नाणाइतियं तव, कोहनिग्गहाइं चरणमेयं ।

—ओघनिर्युक्ति-भाष्य गाथा २

साधुओं द्वारा निरन्तर सेवन करने योग्य चारित्रसम्बन्धी नियमों को चरणगुण कहते हैं। चरणगुण सत्तर माने गये हैं। (ये चरणसत्तरी के नाम से प्रसिद्ध हैं) यथा—५ महाव्रत,, १० प्रकार का श्रमणधर्म, १७ प्रकार का संयम, १० प्रकार की वयावृत्त्य, ब्रह्मचर्य की ९ गुप्तियाँ, ज्ञानादिरत्नत्रिक, १२ प्रकार का तप और ४ कषाय का निग्रह।

२. **करण गुण**—

पिंडविसोही समिई, भावण-पडिमा य इन्दियनिरोही ।
पडिलेहण-गुत्तीओ, अभिग्गहा चेव करणं तु ।।

—ओघनिर्युक्ति-भाष्यगाथा ३

प्रयोजन उत्पन्न होने पर साधुओं द्वारा जिनका सेवन किया जाय, वे करणगुण कहलाते हैं। करणगुण भी ७० हैं। (ये करण-सत्तरी के नाम से प्रसिद्ध हैं) यथा—४ प्रकार की पिण्डविशुद्धि ५ समितियाँ, १२ भावनाएँ, १२ प्रतिमाएँ ५ इन्द्रियों का निग्रह, २५ प्रकार की पडिलेहणा, ३ गुप्तियाँ और, ४ अभिग्रह।[1]

---

१ इसका विस्तृत विवेचन चारित्र-प्रकाश पुंज ९ में देखिए।

३. साधुदर्शन—

(क) साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता हि साधवः,
तीर्थं पुनाति कालेन, सद्यः साधुसमागमः।

—चाणक्यनीति १२।७

साधुओं का दर्शन पवित्र है क्योंकि साधु तीर्थरूप होते हैं। तीर्थ तो कालान्तर में पवित्र करता है, किन्तु साधुओं का समागम तत्काल ही तार देता है।

(ख) न ह्यब्मयानि तीर्थानि, न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युरुकालेन, दर्शनादेव साधवः॥

—श्रीमद्भागवत १०।४८।२१

वास्तव में न तो नदी आदि के जल से युक्त तीर्थ हैं, न मिट्टी-पत्थर से बनी हुई मूर्तियाँ देवता हैं। वे बहुत काल के पश्चात् पवित्र करते हैं, किन्तु साधुजन दर्शन-मात्र से पावन कर देते हैं।

(ग) तनकर मनकर वचनकर, देत न काहू दुःख।
तुलसी पातक झड़त है, देखत उनका मुख॥
मुख देखत पातक झड़े, पाप विलय हो जाय।
तुलसी ऐसे सन्तजन, पूर्व भाग्य मिल जाय॥

—तुलसी दोहावली

(घ) साधु-दर्शन लाभ है, बड़भागी दरसाय।
जिनरंग शूली की सजा, कांटे ही टल जाय।

—हिन्दी दोहा

२१ साधु-संगति

१. चन्दनं शीतलं लोके, चन्दनादपि चन्द्रमाः।
चन्द्र-चन्दनयोर्मध्ये, शीतला साधुसंगतिः।

चन्दन जगत में शीतल है और चन्दन से भी चन्द्रमा शीतल है। चन्द्र और चन्दन-इन दोनों से भी साधुओं की संगति अत्यधिक शीतल है।

२. ना सुख पढ़िया पंडितां, ना सुख भूप भयां।
सुख है बीच विचार दे, साधुसंग पयां।।
ना सुख बीच गृहस्थ दे, ना सुख छोड़ गयां।
सुख है बीच विचार दे, साधु संग पयां।।

—पंजाबी पद्य

३. सुत दारा अरु लक्ष्मी, पापिहु के घर होय।
संत समागम हरिकथा, तुलसी दुर्लभ दोय।।

४. तात मिले पुनि मात मिले,
सुत भ्रात मिले युवती सुखदाई।
राज मिले गज-बाज मिले,
सब साज मिले मन बंछित आई।
लोक मिले परलोक मिले,
सुरलोक मिले बैकुंठ में जाई।

सुन्दर आय मिले सबहीं,
इक दुर्लभ - संतसमागम भाई !

५. कोटि जन्म को पुण्यकमाई तब सन्तन को संगति पाई।
सतसंगति जन पावे जबही, आवागमन मिटावे तबही ॥

६. सवणे नाणे य विन्नाणे, पच्चक्खाणे य संजमे।
अणण्हए तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धी ॥

—भगवती २।५

साधुसंग से धर्मश्रवण, धर्मश्रवण से तत्त्वज्ञान, तत्त्वज्ञान से विज्ञान-विशिष्ट तत्त्वबोध, विज्ञान से प्रत्याख्यान-सांसारिक पदार्थो से विरक्ति, प्रत्याख्यान से संयम, संयम से अनाश्रव-नवीन कर्म का अभाव, अनाश्रव से तप, तप से व्यवदान (पूर्व-बद्ध कर्मों का नाश,) व्यवदान से निष्कर्मता-सर्वथा कर्मरहित स्थिति और निष्कर्मता से सिद्धि—अर्थात् मुक्तस्थिति प्राप्त होती है।

७. गिहिसंथवं न कुज्जा, कुज्जा साहूहिं संथवं।

—दशवैकालिक ८।५३

गृहस्थों-संसारियों का परिचय नहीं करना चाहिए, किन्तु साधुओं का सत्संग करना चाहिए।

८. संगति साधुन की करिये, कपटी लोगन से डरिये।

—निपट निरंजन

२२ संतों का संताप

१. संत सताया संतदास, तेण सताया दीन।
गुप्तमार अतीत की, हो जाये तेरा-तीन।

—संतदास

२. एक भक्त रामायण पढ़ रहा था। पढ़ने में स्खलना होते ही हनूमान ने (जो रामकथा में सदा उपस्थित रहते हैं) उसके मुंह पर जोर से थप्पड़ मार दिया। फिर राम के दरबार में गये तो मुंह सूजा हुआ देखा। पूछने पर राम ने कहा, तूने ही तो मारा है।

—वैदिक रूपक

३. संत सतायां जात है, नाम ठाम अरु वंश,
पीपा! परतख देख लो! जादव-कौरव-कंस।

४. ध्रांगध्रा के एकाउंट जनरल के पास योगी ने भिक्षा मांगीं। उत्तर में कहा—विष्ठा खाले! योगी बोला—जा तुझे विष्ठा ही मिलेगी। बस, उसी दिन से खाते-पीते एवं सोते समय विष्ठा बरसने लगी।

५. ध्रांगध्रा के जयचन्द-कालीदास से किसी योगी ने कम्बल मांगी। उसने कहा आग लेले! बस आग ही आग

बरसने लगी एवं बारह महीनों तक बहुत हैरान होना पड़ा।

६. एगं इसिं हणामाणे अणंते जीवे हणइ।

—भगवती ६।३४

एक अहिंसक ऋषि की हत्या करनेवाला एक प्रकार से अनन्त जीवों की हिंसा करनेवाला होता है।

२३ साधुओं की गोचरी

१. भिक्खावित्ती सुहावहा । —उत्तराध्ययन ३५।१५

भिक्षावृत्ति सुख देनेवाली है ।

२. उपवासात् परं भैक्ष्यम् । —वशिष्ठस्मृति

मर्यादानुसार की हुई भिक्षा से ज़ीवन का निर्वाह करना उपवास से भी बढ़कर है ।

३. धीरा हु भिक्खायरियं चरंति । —उत्तराध्ययन १४।३५

धीर पुरुष ही भिक्षाचर्या का अनुसरण करते हैं ।

४. सव्वं से जाइयं होई, णत्थि किंचि अजाइयं । —उत्तराध्ययन २।२८

साधु की हर एक वस्तु मांगी हुई होती है, बिना मांगी कुछ भी नहीं होती ।

५. अहो ! जिणेहिं असावज्जा, वित्ति साहूण देसिया । —दशवैकालिक ५।१।९२

आश्चर्य है कि भगवान ने साधुओं की भिक्षावृत्ति पापरहित कही है ।

६. अणवज्जेसणिज्जस्स, गिण्हणा अवि दुक्करं।

—उत्तराध्ययन १६।२७

निरवद्य एवं निर्दोष भिक्षा का ग्रहण करना भी दुष्कर है।

७. अकप्पियं न गिण्हिज्जा, पडिगाहिज्ज कप्पियं।

—दशवैकालिक ५।२।२७

साधु अकल्पनीय-सदोष वस्तु नहीं ले एवं कल्पनीय ग्रहण करे।

८. एकान्नं नैव भोक्तव्यं, बृहस्पतिसमादपि।

—अत्रिस्मृति

साधु को सदा एक ही कुल का भोजन नहीं लेना चाहिए, चाहे वह कुल बृहस्पति जैसों का भी क्यों न हो।

९. अनग्निरनिकेतः स्याद्, ग्राममन्नार्थमाश्रयेत्।

—मनुस्मृति ६।४३

मुनि अग्नि का स्पर्श न करे, घर में न रहे, मात्र भिक्षा के लिए ग्राम में जाये।

१०. समणेणं भगवया महावीरेणं, समणाणं निग्गंथाणं नवकोडीपरिसुद्धे भिक्खे पण्णत्ते, तं जहा—न हणइ, न हणावेइ, हणं तं नाणुजाणेइ। न पयइ, न पयावेइ पयंतं नाणुजाणइ। न किणइ, न किणावेइ, किणंतं नाणुजाणइ।

—स्थानांग ६।६८१

श्रमण—भगवान् महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए नवकोटि-विशुद्ध भिक्षा कही है—साधु आहार आदि के लिए न तो हिंसा करता, न करवाता और न करते हुए का अनुमोदन

करता। न स्वयं आहार आदि पकाता, न पकवाता और न पकानेवाले का अनुमोदन करता, न स्वयं भोजन आदि खरीदता, न खरीदवाता और न खरीदनेवाले का अनुमोदन करता।

११. उच्च-नीच-मज्झिमकुले अडमाणे।

—अंतकृद्दशावर्ग ६, अ० १५

इन्द्रभूति मुनि ऊंच-नीच-मध्यम कुल में पर्यटन करते हुए....।

१२. जायाए घासमेसिज्जा, रसगिद्धे न मिया भिक्खाए।

—उत्तराध्ययन ८।११

संयमयात्रा को निभाने के लिए मुनि को आहार की गवेषणा नहीं करनी चाहिए।

१३. अदीणो वित्तिमेसिज्जा।

—दशवैकालिक ५।२।२६

साधु को सिंहवृत्ति से आवश्यक वस्तुओं की गवेषणा करनी चाहिए।

१४. लाभुत्ति न मज्जिजा, अलाभुत्ति न सोएज्जा।

—आचारांग २।११४-११५

साधु को इष्टवस्तु के मिलने पर अभिमान नहीं करना चाहिए और न मिलने पर शोक नहीं करना चाहिए।

१५. अलाभे न विषादी स्या-ल्लाभे चैव न हर्षयेत्।

—मनुस्मृति ६।५७

भिक्षा न मिलने पर विषाद न करे एवं मिलने पर हर्ष न मनाये।

१६. लद्धे पिण्डे अलद्धे वा, णाणुतप्पेज्ज पंडिए।

—उत्तराध्ययन २।३०

आहार मिलने या न मिलने पर बुद्धिमान साधु खेद न करे।

१७. अज्जे वाहं णं लब्भामि, अवि लाभो सुए सिया।

—उत्तराध्ययन २।३१

आहार आदि न मिलने पर साधु विचार करे की मुझे आज आहार नहीं मिला तो संभवतः कल मिल जायेगा।

★

२४ गोचरी के भेद

१. छव्विहा गोयरचरिया पण्णत्ता, तं जहा—पेडा, अद्धपेडा, गोमुत्तिया, पतंगवीहिया, संबुक्कवट्टा, गंतुपच्चागया।

—स्थानांग ६।५१४

छः प्रकार की गोचरी कही है—(१) पेटा, (२) अर्धपेटा, (३) गोमूत्रिका, (४) पतङ्गवीथिका, (५) शम्बूकावता, (६) गतप्रत्यागता।

(उत्तराध्ययन ३०।१९ में भी यह वर्णन है)

२. त्रिधा भिक्षपि तत्राद्या, सर्वसंपत्करी मता।
द्वितीया पौरुषघ्नीस्याद्, वृत्तिभिक्षा तथान्तिमा॥

—हितोपदेश २।२०

भिक्षा तीन तरह की होती है—

(१) सर्वसंपत्करी—साधु को निदोर्ष वस्तु देना।
(२) पोरुषघ्नी—साधु को सदोषवस्तु देना।
(३) वृत्ति—अन्धे, बहरे आदि को कुछ देना।

★

२५ गोचरी के नियम

१. पुरओ जुगमायाए, पेहमाणो महिं चरे।
वज्जंतो बीयहरियाइं, पाणे य दगमट्टियं ॥

—दशवैकालिक ५।१।३

मुनि युगमात्र भूमि को देखता हुआ सचित्तबीज, हरित, द्वीन्द्रियादि प्राणी, जल और मिट्टी से बचता हुआ चले।

२. दवदव्वस न गच्छेज्जा, भासमाणो य गोयरे।
हसंतो नाभिगच्छेज्जा, कुलं उच्चावयं सया।

—दशवैकालिक ५।१।१४

दबदबाहट करता हुआ, बातें करता हुआ एवं हंसता हुआ न चले।

३. तहेवुच्चावया पाणा, भत्तट्ठाए समागया।
तं उज्जुयं न गच्छिज्जा, जयमेव परक्कमे ॥

—दशवैकालिक ५।२।७

हंस-काक आदि पक्षी दाने चुगरहे हों तो मुनि उनके बीच में से न निकले। उन्हें भय न हो, इस प्रकार यत्नपूर्वक जाये।

४. न चरेज्ज वासे वासंते, महियाए वा पडंतिए।
महावाए व वायन्ते, तिरिच्छि संपाइमेसु वा ॥

—दशवैकालिक ५।१।८

मुनि वृष्टि बरसते समय, ओस पड़ते समय, जोर से हवा—आंधी चलते समय एवं अल आदि सूक्ष्म जीव गिरते समय गोचरी न जाय।

५. समणं माहणं वावि, किविणं वा वणीमगं।
उवसंकमंतं भत्ताट्ठा, पाणट्ठाए व संजए।
तमइक्कमित्तु न पविसे, न चिट्ठे चक्खुगोयरे।
एगंतमवइकमित्ता, तत्थ चिट्ठिज्ज संजए॥

—दशवैकालिक ५।२।१०-११

श्रमण—ब्राह्मण, कृपण एवं भिखारी आदि अन्न-पानी की प्राप्ति के लिए पहले गृहस्थ के घर में खड़े हों तो उन्हें लांघ कर घर में प्रवेश न करे तथा दाता और भिक्षुओं की दृष्टि पड़े, वहाँ खड़ा न रहकर एकान्त में ठहरे।

६. गोयरग्गपविट्ठो य, न निसीइज्ज कत्थई।
कहं च न पबंधिज्जा, चिट्ठित्ताण व संजए॥

—दशवैकालिक ५।२।८

गोचरी गया हुआ मुनि (विशेष कारण के सिवा) गृहस्थ के घर में न बैठे और न खड़ा रहकर धर्मकथा कहे।

७. सयणासणवत्थं वा, भत्तं पाणं व संजए।
अदितस्स न कुप्पिजा, पच्चक्खे विय दीसओ॥

—दशवैकालिक ५।२।२८

शयन, आसन, वस्त्र, अन्न और पानी प्रत्यक्ष सामने पड़े दीख रहे हैं, फिर भी यदि दाता न दे तो साधु उस पर कोप न करे।

८. निट्ठाणं रसनिज्जूढं, भद्दगं पावगं ति वा।
पुट्ठो वा वि अपुट्ठो वा, लाभालाभं न निद्दिसे ।।

—दशवैकालिक ८।२२

आहार सरल मिला या नीरस मिला, अच्छा मिला या बुरा मिला तथा मिला या नहीं मिला। साधु को यह आहार सम्बन्धी बात पूछने पर या बिना पूछे गृहस्थ के आगे नहीं कहनी चाहिए।

९. कालेण निक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे।
अकालं च विवज्जित्ता, काले कालं समायरे ।।४।।
अकाले चरसी भिक्खु, कालं न पडिलेहसि।
अप्पाणं च किलामेसि, संनिवेसं च गरिहसि ।।५।।

—दशवैकालिक ५।१

साधु भोजन बनने के समय गोचरी जाए एवं बखतसर वापिस आ जाए। अकाल का त्याग करके सारा काम यथा-समय करे। हे मुने! यदि तू असमय भिक्षा के लिए जायेगा एवं समय का ध्यान न रखेगा तो आहार आदि न मिलने से दुःखी होगा एवं द्वेषवश गांव के लोगों की निन्दा करेगा।

१०. अप्पे सिया भोयणजाए, बहुउज्झियधम्मिए।
दितियं पडियाइक्खे, न मे कप्पई तारिसं।

—दशवैकालिक ५।१।७४

(सीताफल—इक्षुखण्ड आदि) जिन फलों में खाने योग्य वस्तु थोड़ी हो और फेंकनें लायक अधिक हो, ऐसे फल दातार देना चाहे दो साधु कहे कि ऐसी वस्तु मुझे नहीं कल्पती।

११. विणएण पविसित्ता, सगासे गुरुणो मुणी।
इरियावहियमायाय, आगओ य पडिक्कमे।

—दशवैकालिक ५।१।८८

गोचरी करके अपने स्थान में प्रवेश करते समय मुनि "मत्थएण वंदामि निसहिया—निसहिया" ऐसे सविनय बोले। फिर गुरु के समीप आकर **इरियावहिय** पड़िक्कमे एवं गोचरी में लगे हुए दोषों की आलोचना करे।

१२. एककालं चरेद्भैक्षं, न प्रसज्जेत विस्तरे।
भैक्षे प्रसक्तो हि यति-र्विषयेष्वपि सज्जति।
विधूमे सन्नमुसले, व्यङ्गारे भुक्तवज्जने।
वृत्ते शरावसंपाते, भिक्षां नित्यं यतिश्चेरत्।

—**मनुस्मृति ६।५५-५६**

एक बार भिक्षा करे, अधिक न करे। अधिक खाने में लीन साधु स्त्री आदि के विषयों में आसक्त हो जाता है।

रसोई का धूआँ एवं मुसलों से अन्न कूटने का शब्द बन्द हो जाने पर चूल्हे की आग बुझ जाने पर, गृहस्थों के भोजन कर चुकने पर तथा अवशिष्ट भोजन को पात्र में रख देने पर मुनि भिक्षा ग्रहण करें।

१३. **गोचरी सम्बन्धी ४२ दोष—**

आहाकम्मुद्देसिय, पूइकम्मे य मीसजाए य।
ठवणा पाहुडियाए, पाओयर कीत पामिच्चे ॥९२॥
परियट्टिय अभिहडे, उब्भिन्न मालोहडे इ य।
अच्छिज्जे अणिसिट्ठे, अज्झोयरए य सोलसमे ॥९३॥
धाई दूई निमित्तो,आजीव वणीमगे तिगिच्छा य।
कोहे माणे माया, लोभे य हवंति दस एए ॥४०८॥
पुव्विंपच्छासंथव, विज्जा मंते य चुण्ण-जोगे य।
उप्पायणाइ-दोसा, सोलसमे मूलकम्मे य ॥४०९॥

संकिय मक्खिय निखित्त, पिहिय साहरिय दायगुम्मिस्से ।
अपरिणय लित्त छड्डिय, एसणदोसा दस हवंति ।।

—पिण्डनिर्युक्ति

साधु को आहार-पानी की एषणा करते समय गवेषणा व ग्रहणैषणा के बयासील दोषों का वर्जन करना चाहिए ।

गवेषणा के बत्तीस दोष उद्गम और उत्पादन की अपेक्षा से दो भागों में विभक्त हैं । उद्गम के सोलह दोषों का निमित्त गृहस्थ (देनेवाला) होता है और उत्पादन के सोलह दोषों का निमित साधु (लेनेवाला) होता है ।

सोलह उद्गम दोष :—

(१) आधाकर्म, (२) औद्देशिक
(३) पूतिकर्म, (४) मिश्रजात
(५) स्थापना (६) प्राभृतिका
(७) प्रादुष्करण (८) क्रीत
(९) प्रामित्यक (१०) परिवर्तित
(११) अभ्याहृत (१२) उद्भिन्न
(१३) मालापहृत (१४) आच्छेद्य
(१५) अनिसृष्ट (१६) अध्यवपूरक ।

सोलह उत्पादनदोष—

(१) धात्रीपिण्ड (२) दूतीपिण्ड
(३) निमित्तपिण्ड (४) आजीविकापिण्ड
(५) वनीपकपिण्ड (६) चिकित्सापिण्ड
(७) क्रोधपिण्ड (८) मानपिण्ड
(९) मायापिण्ड (१०) लोभपिण्ड
(११) पूर्वपश्चात् संस्तवपिण्ड (१२) विद्याप्रयोग
(१३) मन्त्रप्रयोग (१४) चूर्णप्रयोग
(१५) योगप्रयोग (१६) मूलकर्मप्रयोग ।

ग्रहणैषणा के दस दोष :—

गवेषणा के अनन्तर आहार आदि ग्रहण करते समय साधु को निम्नोक्त दस दोषों का परिहार करना आवश्यक है—

(१) शंकित, (२) म्रक्षित, (३) निक्षिप्त, (४) पिहित, (५) संहृत, (६) दातृकर्म, (७) उन्मिश्र, (८) अपरिणत, (९) लिप्त, (१०) छर्दित ।

(बयालीस दोषों का विवेचन "चारित्रप्रकाश पुंज २, प्रश्न १५" में किया गया है ।)

★

२६ साधु का आहार

१. पंतं लूहं सेवंति, वीरा सम्मतदंसिणो।

—आचारांग २।६

सम्यग्दर्शी वीरपुरुष नीरस और सूक्ष्म आहार का सेवन करते हैं।

२. तित्तगं व कडुअं व कसायं, अंबिलं व महुरं लवणं वा।
एयलद्धमण्णत्थपउत्तं, महुघयं व भुंजिज्ज संजए॥

—दशवैकलिक ५।१।९७

तीखा, कड़ुवा, खट्टा, मीठा तथा खारा किसी भी प्रकार का आहार जो शास्त्रोक्त विधि से प्राप्त हुआ है, उसे मधु-घृत के समान मानकर साधु को समभाव से खाना चाहिये।

३. सेभिक्खू वा भिक्खूणी वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा आहारेमाणे णो वामाओ हणुयाओ दाहिणं हणुयं संचारेज्जा आसाएमाणे। दाहिणाओ वा हणुयावो वामं हणुयं णो संच्चारेज्जा आसायमाणे। से अणासाय-माणे लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमन्नागए भवइ।

—आचारांग ८।६

साधु अथवा साध्वी असनादिक का आहार करते समय स्वाद लेने के लिए उस आहार को बायीं दाढ़ से दाहिनी दाढ़ की ओर न ले जाये और दाहिनी दाढ़ से बायीं दाढ़ की ओर न

ले जायें। स्वाद न लेने से कर्मों का हल्कापन होता है एवं तपस्या होती है।

४. अप्पपिंडासि पाणासि, अप्पं भासेज्ज सुव्वए।

—सूत्रकृतांग ८।२५

सुव्रती मुनि अल्प खाए, अल्प पीवे और अल्प बोले।

५. मियं कालेण भक्खए। —उत्तराध्ययन १।३२

समय होने पर भी साधु को परिमित भोजन करना चाहिए।

६. तहा भोत्तव्वं जहा से जायामाता य भवति,
न य भवति विब्भमो, न भंसणा य धम्मस्स।

—प्रश्नव्याकरण २।४

ऐसा हित-मित भोजन करना चाहिए, जो जीवनयात्रा एवं संयमयात्रा के लिए उपयोगी हो सके और जिससे न किसी प्रकार का विभ्रम हो और न धर्म की भ्रंसना हो।

७. जे भिक्खू आयरिय-उवज्झाएहिं अदिन्नं आहारं आहारेइ आहारंतं वा साइज्जइ। —नीशीथ ४।२२

जो साधु, आचार्य-उपाध्याय का बिना दिया अर्थात् उन्हें पूछे बिना आहार करे या करते हुए का समर्थन करे तो उसे लघुमासिक प्रायश्चित्त आता है।

८. असंविभागी न हु तस्स मोक्खो।

—दशवैकालिक ९।२।२३

साथी मुनियों को हिस्सा दिये बिना आहारादि का उपयोग करनेवाले मुनि को मोक्ष नहीं मिलता।

९. हजरत इब्राहिम ने एक फकीर से पूछा—सच्चा संत कौन है?

फकीर—मिला तो खाया, नहीं तो संतोष।

इब्राहिम—ऐसे तो कुत्ते भी होते हैं।

फकीर—तो ?

इब्राहिम—मिला तो बांट खाया, नहीं तो संतोष।

१०. जे भिक्खू अन्नउत्थियं वा गारत्थियं वा असणं पाणं खाइमं देइ, देयतं वा साइज्जइ।

—निशीथ १५।७८

जो साधु अन्यतीर्थिक या गृहस्थ को असन आदि दे या देते हुए को अच्छा समझे तो उसे चातुर्मासिक प्रायश्चित्त आता है।

●

२७ आहार किसलिए ?

१. आयगुत्ते सया वीरे, जायामायाइ जावए।

—आचारांग ३।३

आत्मगुप्त वीरपुरुष संयमयात्रा के निर्वाहार्थ आवश्यकता-मात्र आहार से जीवन यापन करे।

२. भारस्स जाया मुणि भुंजएज्जा।

—सूत्रकृतांग ७।२९

मुनि को केवल संयमयात्रा को निभाने के लिए आहार करना चाहिए।

३. अलोलं न रसे गिद्धे, जिब्भादंते अमुच्छिए।
न रसट्ठाए भुंजिज्जा, जवणट्ठाए महामुणी॥

—उत्तराध्ययन ३५।१७

लोलुपतारहित, रसगृद्धिरहित, जिह्वेन्द्रिय को दमन करने-वाला एवं भोजन-संग्रह की मूर्च्छा से रहित महामुनि स्वाद के लिए भोजन न करे, किन्तु संयमयात्रा का निर्वाह करने के लिए करे।

४. संयम भार-वहणट्ठयाए बिलमिव पन्नगभूएणं।
अप्पाणेणं आहारमाहारेइ। —भगवती ७।१

साधु-साध्वी संयमभार का निर्वाह करने के लिए बिल में साँप की तरह उदररूप कोठे में आहार को प्रवेश कराएं।

५. अक्खोवंजणाणुलेवणभूयं संजमजायामायणिमित्तं,
संजमभारवहणट्ठयाए भुंज्जेजा पाणधारणट्ठाए।
— **प्रश्नव्याकरण २।१**

जैसे-गाड़ी चलाने के लिए पहियों के अंजन (स्निग्ध-तेलादि) लगाया जाता है, घाव को ठीक करने के लिए उस पर लेप-मरहम लगाया जाता है, उसी प्रकार साधु को संयमयात्रा निभाने के लिए संयम-भार को बहने के लिए तथा प्राणों को धारण करने के लिए भोजन करना चाहिए।

६ शरीरं व्रणवद् ज्ञेय-मन्नं च व्रणलेपनम्।
व्रणशोधनवत् स्नानं, वस्त्रं च व्रणपट्टवत्॥
—**चैतन्य महाप्रभु**

शरीर व्रण-घाव के समान है, अन्न उस पर मरहम का लेप है। स्नान व्रण को साफ करनेवाला है और वस्त्र व्रणपट्टी के तुल्य है।

७. छहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे आहारमाहारेमाणे णाइ-क्कमइ, तं जहा—
वेयण - वेयावच्चे, इरियट्ठाए य संजमट्ठाए।
तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्मचिंताए।
—**स्थानांग ६ तथा उत्तराध्ययन २६।३३**

छः कारणों से आहार करता हुआ साधु प्रभु-आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता। वे कारण ये हैं—१. क्षुधावेदनीय को शान्त करने के लिये, २. वैयावृत्त्य-सेवा करने के लिये, ३. ईर्यासमिति का पालन करने के लिए, ४. संयम पालने के लिये, ५. प्राण-रक्षा के लिए, ६. धर्म का चिन्तन करने के लिए।

८. छहिंठाणेहिं समणे निग्गंथे आहारं वोच्छिदेमाणे णाइक्कमई, तं जहा—

आयंके उवसग्गे, तितिक्खणे बंभचरेगुत्तीसु।
पाणीदया तवेहेउं, सरीरवोच्छेयणट्ठाए।

—स्थानांग ६ तथा उत्तराध्ययन २६।३५

छः कारणों से श्रमण-निर्ग्रन्थ आहार का त्याग करता हुआ। प्रभुआज्ञा का उल्लंघन नहीं करता। जैसे—१. रोग एवं उपसर्ग होने पर, २. ब्रह्मचर्य का पालन न कर सकने पर, ३. जीवदया न पल सकने पर ४. तपस्या करने के लिए ५. अनशनादि द्वारा शरीर छोड़ने के लिए।

९. शरीर का परिवहन करने में ग्लानि होने लगे, तब साधु को चतुर्थ-षष्ठ आदि तप करके आहार को घटाने लग जाना चाहिए, अर्थात् संलेखना करनी चाहिए।

—आचारांग ८।१

२८ साधुओं का निवास स्थान

१. सुसाणे सुन्नगारे वा, रुक्खमूले व एगओ।
पइरिक्के परकडे वा, वासं तत्थाऽभिरोयए ॥६॥
फासुयम्मि अणाबाहे, इत्थीहिं अणभिद्दुए।
तत्थ संकप्पए वासं, भिक्खू परमसंजए ॥७॥
न सयं गिहाइं कुविज्जा, नेव अन्नेहिं कारए।
गिहकम्मसमारम्भे, भूयाणं दिस्सए बहो ॥८॥

—उत्तराध्ययन ३५

साधु श्मशान, सूनाघर, वृक्ष के नीचे अथवा परकृत (गृहस्थ ने जो अपने लिए बनाया) एकान्तस्थान में एकाकी रहना पसंद करे ॥६॥

जो स्थान प्रासुक हो, किसी को पीड़ाकारी न हो, एवं जहाँ स्त्रियों का उपद्रव न हो, परम संयमी साधु उस स्थान में निवास करे ॥७॥

साधु स्वयं घर आदि न बनाये और दूसरों से न बनवाये, क्योंकि गृह आदि कार्य के समारम्भ में प्राणियों की हिंसा प्रत्यक्ष दिखाई देती है ॥८॥

२. मणोहरं चित्तहरं, मल्लधूवेण वासियं।
सकवाडं पंडुरुल्लोयं, मणसा वि न पत्थए ॥

—उत्तराध्ययन ३५।४

मुनि ऐसे आश्रय की मनसे इच्छा न करे, जो मनोहर हो, जिसमें घृणित चित्र हों, जो माला और धूप से सुगन्धित हो, कबाड़ सहित हो, व श्वेतचन्द्रवेवाला हो।

★

२६ साधुओं के वस्त्र

१. तिहिं ठाणेहिं वत्थं धारेज्जा, तं जहा—हिरिवत्तियं दुगुंछावत्तियं परीसहवत्तियं। —**स्थानांग ३।३।१७१**

साधु को तीन कारणों से वस्त्र पहनने चाहिए— संयम लज्जा की रक्षा के लिए, लोगों की घृणा से बचने के लिए तथा शीत-उष्ण एवं दंश-मशकादि के परीषह से आत्मरक्षा करने के लिए।

२. कप्पइ निरगंथाणं वा निग्गंथीणं वा पंच वत्थाइं धारेत्ताए वा परिहरित्तए वा, तं० जंगिए, भंगिए, साणए, पोत्तिए, तिरीडपट्टए।

—**स्थानांग ५।३।४४५**

साधु-साध्वी पांच प्रकार के वस्त्र धार सकते हैं एवं पहन सकते हैं—(१) ऊन के (कंबलादि) (२) रेशम के (३) सण के (४) कपास के (५) तृण-घास व वृक्ष की छाल के।

३. साधु-साध्वियों को महामूल्य वस्त्र नहीं कल्पता।

—**आचारांग श्रुत २ अ० ५ उ० १**

४. साधु-साध्वियों को वस्त्र लेने के लिए अर्धयोजन से आगे जाना नहीं कल्पता।

—**आचारांग श्रुत २ अ० ५ उ० १**

५. कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा पंच रयहरणाइं धारित्तए वा परिहरित्तए, वा ।

—स्थानांग ५।३।४४६

साधु-साध्वियां पांच प्रकार के रजोहरण (ओघा) रख सकते हैं—ऊन के, ऊँट के लोम के, सण के, नरम घास के और कूटी हुई मूंज के ।

३० साधुओं के पात्र

१. से भिक्खु वा भिक्खुणी वा अभिकंखेज्जा पायं एसित्तए। सेजं पुण पायं जाणेज्जा, तं जहा—अलाबुयपायं वा, दारुपायं वा मट्टियापायं वा........अयपायाणि वा तउयपायाणि वा·······नो पडिग्गाहेज्जा।

—**आचारांग श्रुत २ अ० ६ उ० १**

साधु-साध्वियां यदि पात्र की गवेषणा करनी चाहें तो वह तुंबे के, काष्ठ के और मिट्टी के—ऐसे तीन प्रकार के पात्र ग्रहण करें। तथा लोह, तांबा, सीसा, चांदी, सोना, पत्थर, रत्न आदि के पात्र ग्रहण न करें।

२. अलाबु-दारुपात्रं च, मृन्मयं वै दलं तथा।
एतानि यतिपात्राणि, मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत्।

—**मनुस्मृति ६।५४**

स्वायंभुव-मनु ने साधुओं के लिए निम्नलिखित पात्रों का विधान किया है—तुम्बी का पात्र, लकड़ी का पात्र, मिट्टी का पात्र और वृक्ष की छाल का पात्र।

३. परमद्धजोयण-मेराए पायपडियाए णो अभिधारेज्जा गमणाए। —**आचारांग श्रुत २ अ० ६ उ. १**

पात्र लेने के लिए साधु आधा योजन से आगे जाने की इच्छा न करे।

४. तेषामद्भिः स्मृतं शौचम् । —मनुस्मृति ६।५३

तुंबा आदि के पात्रों की शुद्धि जल से मानी गई है ।

५. सौवर्ण-मणिपात्रेषु, कांस्य-रौप्यायसेषु च ।
भिक्षां दद्यान्न सर्वज्ञो, ग्रहीता नरकं व्रजेत् ॥
—विष्णुपुराण खंड २ अ० १३२

सोना, रत्न, कांसी, चांदी और लोहे के पात्रों में साधु को भिक्षा नहीं देनी चाहिए—इन पात्रों में भिक्षा लेनेवाला नरक में जाता है ।

३१ साधुओं का विहार

१. बहता पाणी निरमला, पड़ा गँधीला होय।
साधु तो रमता भला, दाग न लागे कोय॥

—राजस्थानी दोहा

२. ए रोलिंग स्टोन गेदर्स नो मोस। —अंग्रेजी कहावत

◆ वरे संगे गर्दा नरोयद नबात। —पारसी कहावत

रमता राम साधु बदनाम नहीं होता।

३. ग्रीष्म-हेमन्तकान् मासा-नष्टौ प्रायेण पर्यटेत्।
दयायै सर्वभूतानां, वर्षास्वेकत्र संवसेत्॥

—मनुस्मृति

गर्मी-सर्दी के आठ महीनों में साधु प्रायः पर्यटन करे एव जीवों की दया के लिए वर्षा-ऋतु में एक ही स्थान पर रहे।

४. अष्टौ मासा विहारस्य, यतीनां संयतात्मनाम्।
एकत्र चतुरोमासान्, वार्षिकान्निवसेत् पुनः॥

— मत्स्यपुराण

संयमी साधुओं के लिए आठ महीने विहार के हैं एवं वर्षाऋतु के चार महीने एक स्थान में निवास करने योग्य हैं अतः उस समय उन्हें एक ही स्थान में रहना चाहिए।

५. जीवमालाकुले लोके, वर्षास्वेकत्र संवसेत् ।

—अत्रिस्मृति

वर्षा-ऋतु में पृथ्वी नाना प्रकार के जीवों से परिपूर्ण हो जाती अतः साधु उस समय एक जगह ही रहें।

६. नोकप्पइ निग्गथाणं वा निग्गंथीणं वा ।
वासावासासु चरित्तए ।

—आचारांग श्रुत २ अ० ३ उ० १

साधु-साध्वी को वर्षा-ऋतु में विहार करना नहीं कल्पता । विशेष कारणों की स्थिति में कर भी सकते हैं। वे कारण निम्नलिखित हैं—

७. असिवे ओमोयरिए, रायदुट्ठे भए व गेलन्ने ।
आबाहादिएसु व, पंचसु ठाणेसु रीएज्जा ।।

—अभिधान राजेन्द्रकोष भाग ६, पृष्ठ १२६०

(१) शत्रु राजा का उपद्रव होने पर, (२) आहार न मिलने पर (३) राजा का द्वेष होने पर, (४) चोर आदि के भय से, (५) ग्लान साधु-साध्वी की सेवा करने के लिए—इन पाँच कारणों से साधुवर्षा ऋतु में विहार कर सकता है ।

८. नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीणं वा पढ़मपाउसंसि गामाणुगामं दुइज्जित्तए । पंचहिं ठाणेहिं कप्पइ, तं० णाणट्ठयाए, दंसणट्ठयाए, चरित्तट्ठयाए, आयरिय-उवज्झाए वा से विसुंभेज्जा, आयरिय-उवज्झायाणं वा बहिया वेयावच्चकरणयाए । —स्थानांग ५।२।४१३

साधु-साध्वी प्रथम वर्षाकाल में एक गाँव से दूसरे गाँव को विहार नहीं कर सकते; किन्तु पाँच कारणों से विहार कर

सकते है—ज्ञान के लिए, दर्शन के लिए, चारित्र के लिए, आचार्य-उपाध्याय के मरणासन्न होने पर तथा रोग आदि की परिस्थिति में उनकी सेवा करने के लिए।

६. जहाँ स्वाध्याय-भूमि एवं स्थंडिल-भूमि आदि शुद्ध न हों, वहाँ साधु चातुर्मास न करे।

—**आचारांग श्रुत अ० ३ उ-१**

★

३२ साधु की भाषा

१. चउण्हं खलु भासाणं, परिसंखाय पण्णवं ।
दुण्हं तु विणयं सिक्खे, दो न भासिज्ज सव्वसो ॥१॥

बुद्धिमान मुनि सत्य,असत्य,मिश्र, व्यवहार—इन चारों भाषाओं को जानकर दो—सत्य एवं व्यवहार द्वारा तो विनय सीखे किन्तु असत्य और मिश्र—ये दोनों भाषाएँ सर्वथा न बोले ।

२. असच्चमोसं सच्चं च, अणवज्जमकक्कसं ।
समुप्पेहमसंदिद्धं, गिरं भासिज्ज पण्णवं ॥३॥

प्रज्ञावान् मुनि व्यवहार एवं सत्य भाषा भी निरवद्य, कोमल एवं संदेह रहित हो, वही सोच-विचार कर बोले ।

३. तम्हा गच्छामो वक्खामो, अमुगं वा णे भविस्सइ ।
अहं वा णं करिस्सामि, एसो वा णं करिस्सइ ॥ .॥

हम जाएँगे, हम बोलेंगे, हमारा अमुक कार्य हो जायेगा, मैं यह करूँगा, यह व्यक्ति यह काम करेगा—इस प्रकार निश्चयकारिणी भाषाएँ साधु न बोले ।

४. जमट्ठं तु न जाणिज्जा, एवमेयं ति नो वए ॥८॥

भूत-भविष्यत् एवं वर्तमान काल-सम्बन्धी जिस अर्थ को न जानता हो, उसे यह 'इस प्रकार ही है,' ऐसा न कहे ।

५. जत्थ संका भवे तं तु, एवमेयं ति नो वए ॥६॥

भूत-भविष्यत् एवं वर्तमानकाल-सम्बन्धी जिस विषय में शंका हो जाये, उसे 'ऐसा ही है' ऐसा न कहे।

६. सच्चा वि स न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो ॥११॥

जिस से पाप लगता हो, ऐसी सत्यभाषा भी नहीं बोलनी चाहिए।

७. तहेव काणं काणत्ति, पंडगं पंडगे त्ति वा।
वाहियं वावि रोगित्ति, तेणं चोरे त्ति नो वए ॥१२॥

इसी प्रकार काने को काना, नपुंसक को नपुंसक, रोगी को रोगी एवं चोर को चोर नहीं कहना चाहिए क्योंकि इस से सुननेवाले को दुःख होता है।

८. अज्जिए पज्जिए वावि, अम्मो माउस्सियत्ति य।
पिउस्सिए भाइणेज्जत्ति, धूए णत्तुणिअत्ति य॥

हे दादी ! हे नानी ! हे परदादी ! हे परनानी ! हे माँ ! हे मौसी ! हे बुआ ! हे भानजी ! हे पुत्री ! हे पोती। (स्त्रियों को इस प्रकार सांसारिक नामों से आमन्त्रित न करे, किन्तु उनके नाम-गोत्रादिक से बुलावे।) इसी प्रकार पुरुषों को दादा ! नाना आदि नाम से न बुलावे।

९. पंचिंदिआण पाणाणं, एस इत्थी अयं पुमं।
जाव णं न वियाणिज्जा, ताव जाइत्ति आलवे ॥२१॥

पञ्चेन्द्रिय जीवों के बारे में—यह स्त्री है—यह पुरुष है—ऐसे जहाँ तक न जान लिया जाये, वहां तक यह कुत्ते की जाति है, गाय की जाति है—ऐसे जाति शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

१०. सुकडित्ति सुपक्कित्ति, सुच्छिण्णे सुहडे मडे।
सुनिट्ठिए सुलट्ठित्ति, सावज्जं वज्जए मुणी ॥४१॥

भोजनादि अच्छा बनाया, घेवर अच्छा पकाया, शाक आदि अच्छा छेदा, करेला आदि की कड़वास का अच्छा हरण किया, सत्तु आदि में घी अच्छा भरा, बहुत अच्छा रस निष्पन्न हुआ तथा चावल आदि बहुत इष्ट हैं, मुनि ऐसी सावद्यभाषा न बोले।

११. सुक्कीयं वा सुविक्कीयं, अकिज्जं किज्जमेव वा ।
इमं गिण्ह इमं मुंच, पणीयं नो वियागरे ॥४५॥

यह माल अच्छा (सस्ता) खरीदा, यह अच्छा (नफे से) बेचा, यह बेचने योग्य है। इस माल को ले लो (महंगा होनेवाला है) और इसको बेच डालो (सस्ता हो जायेगा) क्याणे के बारे में साधु इस प्रकार न बोले।

१२. देवाणं मणुयाणं च, तिरियाणं च वुग्गहे ।
अमुयाणं जओ होउ, मा वा होउत्ति नो वए ॥५०॥

देवों, मनुष्यों एवं तिर्यञ्चों (पशु-पक्षियों) का आपस में विग्रह होने पर 'अमुक विजयी हो, अमुक की विजय न हो'—ऐसा वचन साधु न बोले।

१३. वाओ वुट्ठं च सीउण्हं, खेमं धायं सिवंति वा ।
कयाणु हुज्ज एयाणि, मा वा होउ त्ति नो वए ॥५१॥

वायु, बरसात, सर्दी-गर्मी, क्षेम (शत्रुसेना के उपद्रव की शान्ति) सुभिक्ष शिव (मरी रोग आदि की शान्ति)—ये कब होंगे अर्थात् जल्दी हों तो ठीक अथवा ये सब न हों तो ठीक। ऐसा वचन साधु न बोले।

१४. तहेव सावज्जणुमोयणी गिरा,
ओहारिणी जा य परोवघाइणी ।

से कोह-लोह-भय-हास - माणवो,
न हासमाणे वि गिरं वइज्जा ॥५४॥

—दशवैकालिक अध्ययन ७

उसी प्रकार सावद्य का अनुमोदन करनेवाले संदेह-युक्त अर्थ-वाली, जीवोपघात करनेवाली—ऐसी भाषा साधु क्रोध, लोभ भ्रमवश अथवा दूसरों का हास्य करता हुआ भी न बोले।

१५. ण लविज्ज पुट्ठो सावज्जं-ण णिरट्ठं ण मम्मयं।

—उत्तराध्ययन १।२५

साधु पूछने पर भी सावद्य निरर्थक वचन न बोले।

१६. नक्खत्त सुमिणं जोगं, निमित्त मंत-भेसजं।
गिहिणो तं न आइक्खे, भूयाहिगरणं पयं ॥

—दशवैकालिक ८।५१

नक्षत्र, स्वप्नफल, वशीकरणादि योग निमित्त, मन्त्र और भेषज ये जीवहिंसा के अधिकरण है। अतः साधु इन सबका फलाफल गृहस्थ को न बताए।

१७. तुमं तुमंति अमणुन्नं, सव्वसो तं न वत्तए।

—सूत्रकृतांग १।९।२७

'तू-तू'—जैसे अभद्र शब्द कभी नहीं बोलने चाहिए।

१८. नो वयणं फरुसं वइज्जा। **—आचारांग २।१।१६**

कठोर-कटु-वचन न वोले।

१९. अणुचिंतिय वियागरे। **—सूत्रकृतांग २।९।२५**

जो कुछ बोले—पहले विचार कर बोले।

२०. जं छन्नं तं न वत्तव्वं। **—सूत्रकृतांग १।९।२६**

किसी की कोई गोपनीय जैसी बात हो, तो वह नहीं कहनी चाहिए।

२१. नो तुच्छए नो य विकत्थइज्जा ।

—सूत्रकृतांग १।१४।२१

साधक न किसी को तुच्छ (हलका) बताए और न किसी की झूंठी प्रशंसा करे ।

२२. निरुद्धगं वावि न दीहइज्जा ।

—सूत्रकृतांग १।१४।२३

थोड़े से में कही जानेवाली बात को व्यर्थ ही लम्बी न करे ।

२३. नाइवेलं वएज्जा ।

—सूत्रकृतांग १।१४।२५

साधक आवश्यकता से अधिक न बोले ।

२४. नो छायए नो वि य लूसएज्जा ।

—सूत्रकृतांग २।२४।१६

उपदेशक सत्य को कभी छिपाए नहीं, और न ही उसे तोड़-मरोड़ कर उपस्थित करे ।

३३ साधुओं के लिए कल्प-अकल्प

१. यज्ज्ञानशीलतपसा - मुपग्रहं च दोषाणाम् ।
कल्पयति निश्चयेन, यत्तत्कल्प्यमकल्प्मवशेषम् ।।१४३।।
यत्पुनरुपघातकरं, सम्यक्त्वज्ञानशीलयोगानाम् ।
तत्कल्प्यमप्यकल्प्यं, प्रवचनकुत्साकरं यच्च ।।१४४।।
किंचिच्छुद्धं कल्प्य, मकल्प्यं स्यादकल्प्यमपि कल्प्यम् ।
पिण्ड: शय्या वस्त्रं, पात्रं वा भेषजाद्यं वा ।।१४५।।
देशं कालं पुरुष-मवस्थानुपयोगशुद्धिपरिणामान् ।
प्रसमीक्ष्य भवति कल्प्यं, नैकान्तात्कल्पते कल्प्यम् ।।१४६।।
तच्चिन्त्यं तद्भाष्यं, तत्कार्यं भवति सर्वथा यतिना ।
नात्मपरोभयबाधक-मिह यत्परतश्च सर्वाद्धम् ।।१४७।।

—**प्रशमरति**

जो ज्ञान, शील एवं तप को पुष्ट करता हुआ दोषों का निग्रह करता है, निश्चय-दृष्टि में साधु के लिए वही कार्य कल्प्य (करने योग्य) है, शेष अकल्प्य है ।। १४३ ।।

जो सम्यक्त्व, ज्ञान, शील एवं योग का नाश करता है और वीतरागवाणी की निन्दा करनेवाला है, वह कार्य कल्प्य होने पर भी अकल्पनीय है ।। १४४ ।।

आहार-शय्या-वस्त्र-पात्र-औषधि आदि द्रव्य भी देश, काल, पुरुष, अवस्था, उपयोग, शुद्धि और परिणाम की अपेक्षा से ही कल्प के योग्य होते हैं, एकान्तरूप से नहीं ।।१४५-१४६।।

साधु को वही सोचना चाहिए, वही बोलना चाहिए और वही काम करना चाहिए, जो इहलोक-परलोक में सदा स्व-पर-उभय बाधक न हो ! ॥ १४७ ॥

२. आचेलक्कुद्देसिय, सिज्जायर-रायपिंड-किइकम्मे ।
वयजेट्ठ-पडिक्कमणे, मांस - पज्जोसवण - कप्पो ॥

—**पंचास्तिकाय-विवरण १७ गाथा**, ८-१०

शास्त्रोक्त आचार एव अनुष्ठानविशेष का नाम कल्प है। कल्प दस माने गए हैं—१ अचेलक, २ औद्देशिक, ३ शय्यातरपिण्ड, ४ राजपिण्ड, ५ कृतिकर्म, ६ व्रतकल्प, ७ ज्येष्ठकल्प ८ प्रतिक्रमणकल्प, ९ मासकल्प, १० पर्यूषणकल्प, इन दसों कल्पों को निश्चितरूप से पालनेवाले साधु **स्थितकल्पिक** कहलाते हैं। ये प्रथम-अन्तिम तीर्थंकरों के समय में होते हैं।१ शय्यातरपिण्ड, २ कृतिकर्म, ३ व्रत, ४ ज्येष्ठ—इन चार कल्पों को नियमितरूप से और शेष छः हों को यथासंभव पालनेवाले साधु **अस्थितकल्पिक** कहलाते हैं—ये महाविदेहक्षेत्र में तथा बाईस तीर्थंकरों के समय भरत-ऐरावत क्षेत्रों में होते हैं !

३. छ कप्पस्स पलिमंथू पण्णत्ता, तं जहा—कुक्कइए संजमस्स पलिमंथू १, मोहरिए सच्चवयणस्स पलिमंथू २, चक्खुलोलए इरियाबहियस्स पलिमंथू ३, तितणए एसणागोयरस्स पलिमंथू ४, इच्छालोलए मुत्तिमग्गस्स पलिमंथू ५, भुज्जो-भुज्जो नियाणकरणे मोक्खमग्गस्स पलिमंथू ६, सव्वत्थ भगवता अनियाणया पसत्था ।

— **बृहत्कल्प ६।१३ तथा स्थानांग ६।५२९**

साधु के आचार का मन्थन करनेवाले साधु कल्पपलिमन्थु कहलाते हैं। उनके छः भेद हैं—१ कौकुचिक, २ मौखरिक, ३, चक्षुलोलुप, ४ तितिणिक, ५ इच्छालोभिक, ६ निदानकर्त्ता ।

(१) **कौकुचिक**—(शरीर,स्थान एवं भाषा द्वारा कुचेष्टा करनेवाला) साधु संयम का पलिमन्थु होता है।

(२) **मौखरिक**—(वाचाल एवं कटुभाषी) साधु सत्यवचन का पलिमन्थु होता है।

(३) **चक्षुलोलुप**—(चलते समय इधर-उधर देखनेवाला, स्वाध्याय या चिन्तन करनेवाला) साधु ईर्यासमिति का पलिमन्थु होता है।

(४) **तितिणिक**—(यथेष्ट आहारादि न मिलने पर टनटनाट करनेवाला) साधु एषणासमिति का पलिमन्थु होता है।

(५) **इच्छालोभिक**—(लोभवश वस्त्र-पत्रादि का संग्रह करनेवाला) निर्लोभितारूप मुक्तिमार्ग का पलिमन्थु होता है।

(६) **निदानकर्ता**—(चक्रवर्ती आदि की ऋद्धि का निदान करनेवाला) साधु सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप मुक्तिमार्ग का पलिमन्थु होता है।

●

३४ साधुओं के सुख

१. एगमास परियाए समणे निग्गंथे वाणमंतराणं देवाणं तेयलेस्सं वोइवयइ.... ....बारसमासपरियाए समणे निग्गंथे अणुत्तरोवाइयाणं देवाणं तेयलेस्सं वीइवयई।

—भगवती १४।९

एक मास का दीक्षित साधु व्यन्तर देवों के सुखों का व्यतिक्रमण करता है अर्थात् उन से अधिक सुखी होता है। दो मास का दीक्षित असुरेन्द्रवर्जित-भवनपतिदेवों के सुखों का, तीन मास का दीक्षित असुरकुमारदेवों के सुखों का, चार मास का दीक्षित ग्रह-नक्षत्रताराओं के सुखों का, पांच मास का दीक्षित चन्द्र-सूर्य के सुखों का, छः मास का दीक्षित प्रथम स्वर्ग के सुखों का, सात मास का दीक्षित तीसरे-चौथे स्वर्ग के सुखों का, आठ मास का दीक्षित पाँचवे-छठे स्वर्ग के सुखों का, नवमास का दीक्षित सातवें-आठवें स्वर्ग के सुखों का, दस मास का दीक्षित ग्यारहवें-बारहवें स्वर्ग के सुखों का, ग्यारहमास का दीक्षित ग्रैवेयक (१३ से २१ वें स्वर्ग तक) देवों के सुखों का और बारहमास का दीक्षित साधु अनुत्तरविमान—(२२ से २६ वें स्वर्ग तक) निवासी देवों के सुखों का व्यतिक्रमण करता है।

२. साधु के लिए चार सुखशय्याएँ कही हैं—(१) शुद्धसंयम पालना, (२) दूसरे की लब्धि का न लेना, (३) काम-भोग का सर्वथा स्वाद न लेना, (४) वेदना को समभाव से सहना।
—**स्थानांग** ४।३।३२५

३. संन्यासी ने गरीब ब्राह्मण को पारस दिया। विस्मित लोगों ने पूछा, यह अमूल्य चीज आपने इसे कैसे दे दी? ऋषि ने कहा—यह तो पारस (पावरस) है, मेरे पास तो साधुत्व का पूरा रस है।

३५ साधुओं के बारह संभोग और उनका विच्छेद

१. दुवालसविहे संभोगे पण्णत्ते, तं जहा—
उवही-सुय-भत्तपाणे, अंजलीपग्गहे त्ति य !
दायणे य निकाय य, अब्भुट्ठारोत्ति आवरे ?
किइकम्मस्स करणे, वेयावच्चकरणे इय ?
समोसरणं संनिसिज्जा य, कहाए य पबंधणे ?

—समवायाङ्ग १२

साधुओं के सम्मिलित अहार आदि व्यवहार को संभोग कहते हैं। बारह प्रकार के संभोग कहे हैं—१. उपधि-वस्त्र-पात्रादि साथ लेना, २. विधियुक्त सूत्र पढ़ना-पढ़ाना, ३. आहार-पानी साथ लेना ४. हाथ जोड़ना, ५. अपने वस्त्रादि देना, ६. शय्या आदि का निमन्त्रण देना, ७. आने पर खड़ा होना, ८. वन्दना करना, ९. सेवा करना, १०. समवसरण-एक साथ रहना, ११. एक आसन पर साथ बैठना, १२. विधियुक्त पांच प्रकार की कथा करना। पूर्वोक्तकार्य सांभोगिक साधु के साथ ही किए जा सकते हैं।

२. तिहिं ठाणेहिं समणे निग्गंथे साहम्मियं संभोइयं विसंभोइयं करेमाणे णाइक्कमइ, तं जहा—सयं वा दिट्ठं, सड्ढस्स वा निसम्म, तच्चं मोसं आउट्टइ, चउत्थं नो आउट्टइ।

—स्थानांग ३।३

तीन कारणों से साधु संभोगी सार्धमिक को विसंभोगी करता हुआ प्रभु-आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता। यथा-स्वयं दोष सेवन करता देखकर, विश्वासी साधु से सुनकर और चौथी बार झूठ बोलने पर।

३६ साधुओं को शिक्षा

१. मग्गं कुसीलाण जहाय सव्वं, महानियंठाण वए पहेणं ।

—उत्तराध्ययन २०।५१

मुमुक्षु को कुशीलपुरुषों के मार्ग को छोड़कर महानिर्ग्रन्थों के मार्ग पर चलना चाहिए ।

२. एगओ निव्वतिं कुज्जा, एगओ य पवत्तणं ।

—ऋषिभाषित १७

साधक को चाहिए कि वह एक(असुभयोग) से निवृत्ति करे एवं एक (शुभयोग) में प्रवृत्ति करे !

३. पहाय रांग च तहेव दोसं,मोहं च भिक्खु सययं वियक्खणो ।
मेरुव्व वाएण अकंपमाणो, परीसहे आयगुत्ते सहिज्जा ।

—उत्तराध्ययन २१।२६

विचक्षण एवं आत्मगुप्त साधु को राग, द्वेष एवं मोह को त्याग कर वायु से अकम्पित मेरु की तरह अडोल बनकर परिषहों को सहन करना चाहिए ।

४. तिहिं ठाणेहिं समणे णिग्गंथे महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ,तं०कयाणं अहं अप्पं वा बहुं वा सुयं अहिज्जिस्सामि । कया णं अहं एकल्लविहारपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरिस्सामि । कयाणं अहं अपच्छिममारणंतियसंलेहणा झूसणा झूसिए भत्त-पाणपडियाइक्खिए पादओवगए

कालमणवकंखमाणे विहरिस्सामि। एवं समणसा सवयसा सकायसा, पगडेमाणे निग्गंथे महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ।

—स्थानांग ३।४।२१०

तीन मनोरथों का चिन्तन करता हुआ श्रमण-निर्ग्रन्थ महानिर्जरा-महापर्यवसान करता है। यथा—कब मैं थोड़ा-बहुत श्रुत (ज्ञान) पढ़ूं? कब मैं एकलविहारी की प्रतिमा स्वीकार कर विचरूं? तथा कब मैं मारणन्तिक संलेखना-संथारा करके मरणकाल की इच्छा न करता हुआ स्थिरतापूर्वक विहार करूं?

●

नामधारी साधु

१. छती ऋद्धि तज निकले, धरे वैराग विशेष ।
जोग तिका ही पालसी, अन्तर ऊँडो देख ॥ १ ॥
काल-दुकाले बेचिया-भूख भखा लै भेख ।
तिके जोग किम पालसी, अन्तर ऊंडो देख ॥ २ ॥

२. खावण मिलगई खीचड़ी,ओढ़ण मिलगई सोड़ ।
चेलो पूछे गुरांजो ने, मोख आही के और ॥

३. साध-साध कहावे सहु, ज्यां घर बेटा ज्यां घर बहू ।
ज्यां घर ढांढा ज्यां घर ढोर, वै ही बोलावा वै ही चोर ॥

४. भेख लियो जग देखन कूं पर,
भेख की टेक सकै नहिं पाली ।
किसी का रमावत छोकरा-छोकरी,
किसी का चरावत केरड़ा-छाली ।
जान-बरात में संग चले जब,
भात में खात सगन की गाली ।
नरसिंह के द्वारे पे बाबो रह्यो,
पर, बाबो को बाबो रू हाली को हाली ।

—भाषाश्लोकसागर

५. मुनि मौन फारसी भणे, हुंकारे खटकाया हणे ।
अणबोल्या ही उद्यम करे, बोल्यां तो वै जुल्म करे ।

६. बहन न मांगै कापड़ो, डाण न मांगे राज।
झोली टक्कां स्यूं भरी, लोक कहे महराज।

७. सांधा रै किसा सवाद, विलोया नहीं तो अण बिलोया ही सही। —राजस्थानी कहावत

८. सच्चे संत असली शीशे के समान आत्मिकरूप दिखाकर कल्याण कर देते हैं और ढोंगी साधु नाई की तरह नकली शीशा दिखाकर हजामत कर देते हैं।

९. एक योगी योगविद्या से पानी पर चल कर आया। लोगों ने पूजा की। ज्ञानी-भक्त ने कहा—महाराज! १२ वर्ष में आप ने सिर्फ दो आने की कमाई की है। नाववाला नदी पार करने का दो आना किराया लेता है।

१०. बुढ़िया के घर में बिल्ली मर गई। टोकरी में रखकर चुपके से डालने गई। पीछे से एक बीमार ऊंट घर में आ घुसा एवं मर कर गिर पड़ा। इसी प्रकार गृहस्थाश्रम में धन-संपत्ति आदि का बिल्ली जितना अभिमान है, उसे छोड़ने के लिए साधु बने, किंतु वहाँ ऊंट जितना ज्ञानादि का अभिमान आ गया। अब क्या किया जाए?

१. संथारं फलगं पीढं, निसिज्जं पायकंबलं।
अप्पमज्जियमारुहइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥७॥

संस्तारक, फलक, आसन, निषद्या-स्वाध्यायभूमि आदि और पादपुच्छन—इन सब पर जो बिना प्रमार्जन किए बैठता है, वह पापीसाधु कहलाता है।

पडिलेहइ पमत्ते, अवउज्झइ पायकंबलं।
पडिलेहणअणउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥९॥

जो बेपरवाही से पडिलेहन करता है, पाद-कंबल को कहीं-कहीं रख देता है एवं पडिलेहन में बेपरवाह रहता है, वह पापी-साधु कहलाता है।

बहुमाई पमुहरी, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे।
असंविभागी अचियत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥११॥

जो छल करनेवाला है, बिना विचारे बोलनेवाला है, अहंकारी है, लोभी है, इन्द्रियों को वश में न रखनेवाला है, समविभाग न करनेवाला है एवं अप्रीतिकारी-क्रोधी है, वह पापीसाधु कहलाता है।

दुद्धदहीविगईओ, आहारेइ अभिक्खणं।
अरए य तवोकम्मे, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥१५॥

—उत्तराध्ययन अध्ययन १७

जो दूध-दहीरूप विगय बार-बार खाता है एवं तपस्या में अरुचि रखता है, वह पापीसाधु कहलाता है।

२. जो पव्वइत्ताण महव्वयाइं,
सम्मं च नो फासयई पमाया।
अणिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे,
न मूलओ छिंदइ बंधणं से।३९॥

जो साधु बनकर महाव्रतों को अच्छी तरह नहीं पालता, इन्द्रियों को वश नहीं करता तथा रसों में गृद्ध रहता है, वह मूल से कर्म बन्धनों को नहीं छेद सकता।

आउत्तया जस्स न अत्थि कावि,
इरियाइ भासाइ तहेसणाए।
आयाणनिक्खेव-दुगंछणाए,
न वीरजायं अणुजाइ कम्मं ॥४०॥

जिसकी ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेप और उत्सर्गसमिति में किंचित् मात्र यतना नहीं है, वह मुनि वीरमार्ग का अनुसरण नहीं कर सकता।

पुल्ले व मुट्ठी जह से असारे,
अयंतिए कूडकहावणे वा।
राढामणी वेरुलियप्पगासे,
अमहग्घए होइ हु जाणएसु ॥४२॥

वेषधारी मुनि पोली मुट्ठी एवं खोटी मोहर की तरह निस्सार होता है। वह वैडूर्य रत्नवत् प्रकाश करनेवाली काचमणी के समान होता है जो जानकारों के सामने कीमतहीन हो जाता है अर्थात् उसकी ठगाई प्रकट हो जाती है।

जे लक्खणं सुविणं पउंजमाणे,
निमित्त - कोऊहलसंपगाढे ।
कुहेडविज्जासवदारजीवी,
न गच्छइ सरणं तंमि काले ॥४५॥

जो साधु लक्षण और स्वप्नों का शुभाशुभ फल बताता है, निमित्त-भूकंपादि द्वारा भविष्य कहता है, कौतूहल-संतान के लिए अभिमन्त्रित जल से स्नान करवाता है, तथा इन असत्य एवं आश्चर्यकारिणी विद्याओं से अथवा हिंसादि आश्रवों से अपना जीवन बिताता है, वह कर्म भोगने के समय किसी की शरण को प्राप्त नहीं होता।

उद्देसियं कीयगडं नियागं,
न मुंचइ किंचि अणेसणिज्जं ।
अग्गी विवा सव्वभक्खी भवित्ता,
इहो चुओ गच्छइ कट्टु पावं ॥४७॥

—उत्तराध्ययन २०

जो साधु औद्देशिक, क्रीतकृत, नियतपिण्ड और अनेषणीय किंचिन्मात्र भी पदार्थ नहीं छोड़ता, वह अग्निवत् सर्वभक्षी होकर पापकर्म करके नरकादि गतियों में जाता है।

●

३६ कंदर्पादि में लीन साधुओं की गति

१. कंदप्प-कुक्कुयाइ, तह सील-सहाव-हास विगहाहिं।
विम्हावेंतो य परं, कंदप्पभावणं कुणइ ।।२६४।।

जो साधु कंदर्प-कामकथा कौत्कुच्य—भावभंगी और वाग्-विन्यास द्वारा हास्य उत्पन्न करता है तथा शील-निरर्थक चेष्टा, स्वभाव, हास्य ओर विकथाओं द्वारा दूसरों को विस्मित करता है, वह कंदर्पी-भावना का आचरण करता है अर्थात् मरकर कंदर्पी देवता (स्वर्ग का भांड) होता है।

२. मंता जोगं काउं, भूईकम्मं च जे पउंजंति।
साय-रस-इड्ढिहेउं, अभियोगं भावणं कुणइ ।।२६५।।

जो साधु साता, रस और ऋद्धि के लिए मंत्रप्रयोग एवं भूति-कर्म (मन्त्रित भस्मादिक का प्रयोग) करता है, वह आभियोगिक भावना का आचरण करता है यानी मरकर दूसरों का नौकर देवता बनकर पलों तक विवशता का दुःख सहन करता है।

३. णाणस्स केवलीणं, धम्मायरिस्स संघ-साहूणं।
माई अवन्नवाई, किव्विसियं भावणं कुणइ ।।२६६।।

जो मायावी साधु ज्ञान, केवलज्ञानी, धर्माचार्य, संघ और साधुओं की निन्दा करता है, वह किल्विषी-भावना का आचरण करता है अर्थात् मरकर किल्वषी देवता (मनुष्य लोक में हरिजन तुल्य) बनता है।

४. अणुबद्धरोसपसरो, तह य निमित्तंमि होइ पडिसेवी ।
एएहिं कारणेहि, आसुरियं भावणं कुणइ ॥२६७॥

— **उत्तराध्ययन ३६**

जो साधु निरन्तर रोष का प्रसार करता है एवं निमित्त का सेवन करता है, वह आसुरी-भावना का आचरण करता है यानी मरकर असुरकुमार देवता बनता है। (यह वर्णन स्थानांग ४।४ में भी है)

५. तवतेणे वयतेणे, रूवतेणे य जे नरे।
आयार-भावतेणे य कुव्वइ देवकिव्विसं ॥

—**दशवैकालिक ५।२।४६**

जो मुनि तपचोर, वचनचोर, रूपचोर, आचारचोर एवं भाव का चोर है, वह किल्विषी देवता में उत्पन्न होता है। जैसे-कोई पूछता है कि महाराज ! आप लोगों में एक तपस्वी साधु सुने थे, क्या वे आप ही हैं ? ऐसे पूछने पर "साधु-तपस्वी होते ही हैं" इस प्रकार कपटपूर्ण उत्तर दे, वह तपचोर कहलाता है। ऐसे ही वचनचोर आदि भी समझ लेना चाहिए।

परिशिष्ट

वक्तृत्वकला के बीज
भाग १ से ५ तक में
उद्धृत ग्रन्थों व व्यक्तियों की नामावली

१ ग्रन्थ सूची

अङ्गुत्तर निकाय
अंगिरास्मृति
अग्निपुराण
अथर्ववेद
अर्थशास्त्र
अध्यात्मसार
अध्यात्मोपनिषद्
अन्ययोगव्यवच्छेद द्वात्रिंशिका
अनुयोग द्वार
अपरोक्षानुभूति
अभिधम्मपिटक
अभिधानराजेन्द्र
अभिधानचिन्तामणि
अभिज्ञान शाकुन्तल
अमितिगति श्रावकाचार
अमृतध्वनि
अमर भारती (मासिक)
अवेस्ता
अत्रिस्मृति
अष्टांग हृदय-निदान
आगम और त्रिपिटक:एक अनुशीलन
आचाराङ्गसूत्र
आर्थिक व व्यापारिक भूगोल
आप्त-मीमांसा
आत्मानुशासन
आवश्यकनिर्युक्ति
आवश्यक मलयगिरि
आवश्यक सूत्र
आत्म-पुराण
आत्मविकास
आतुर प्रत्याख्यान
आपस्तम्बस्मृति
आवां अद्धी सुर्यश्त
औपपातिक सूत्र
इतिहास समुच्चय
ईशोपनिषद्
इस्लामधर्म
इष्टोपदेश
ईश्वरगीता
उत्तरराम चरित्र

उत्तराध्ययन सूत्र
उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति
उदान
उपदेश तरङ्गिणी
उपदेशप्रासाद
उपदेशमाला
उपदेशसुमनमाला
उपासक दशा
ऋग्वेद
ऋषिभासित
ऐतरेय ब्राह्मण
कठोपनिषद्
कथासरित्सागर
कल्याण (मासिक)
कवितावली
कात्यायन स्मृति
किशन बावनी
किरातार्जुनीय
कीर्तिकेयानुप्रेक्षा
कुमारपालचरित्र
कुमार सम्भव
कुरानशरीफ
कुरुक्षेत्र
कुवलयानन्द
कूटवेद
केनोपनिषद्
कौटिलीय अर्थशास्त्र
खुले आकाश में
गच्छाचार प्रकीर्णक
गरुड़ पुराण
गृहस्थधर्म
गीता
गीता भाष्य
गुर्जरभजनपुष्पावली
गुरुग्रन्थ साहिव
गोम्मटसार
गौतमस्मृति
गोरक्षा-शतक
घटचर्पटपंजरिका
चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र
चन्द-चरित्र
चरक संहिता
चरित्र रक्षा
चरकसूत्र
चाणक्यनीति
चाणक्यसूत्र
चित्राम की चोपी
चीनी सुभाषित
छान्दोग्य उपनिषद्
जपुजी साहिब

जागृति (मासिक)
जातक
जाबालश्रुति
जाह्नवी
जीतकल्प
जीवन-लक्ष्य
जीवन सौरभ
जीवाभिगम सूत्र
जैनभारती
जैनसिद्धान्त दीपिका
जैनसिद्धान्त बोलसंग्रह
टॉड राजस्थान इतिहास
टी. बी. हैण्डबुक
डिकेन्स
डेलीमिरर
तत्त्वामृत
तत्त्वार्थ-सूत्र
तन्दुलवैचारिकगाथा
तत्त्वानुशासन
ताओ-उपनिषद्
ताओ-तेह्-किंग
तात्त्विक त्रिशती
तिरुकुरल
तीन बात
तैत्तरीय उपनिषद्
दशाश्रुत-स्कन्ध
दशाश्रुत-स्कन्धवृत्ति
दक्षसंहिता
दर्शनपाहुड
दान-चन्द्रिका
दिगम्बर प्रतिक्रमण त्रयी
दीर्घनिकाय
दोहा-संदोह
द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका
द्रव्य-संग्रह
धन-बावनी
ध्यानाष्टक
धम्मपद
धर्मबिन्दु
धर्मयुग
धर्मसंग्रह
धर्मरत्न प्रकरण
धर्मशास्त्र का इतिहास
धर्मों की फुलवारी
तैत्तिरीय ताण्ड्य महाब्राह्मण
तोरा
थेरगाथा
दशवैकालिक सूत्र
दर्शन-शुद्धि
धर्म-सूत्र

न्याय दीप
नन्दी सूत्र
नवी
नविश्ते
नवभारत टाइम्स (दैनिक)
नवनीत (मासिक)
नवीन राष्ट्र एटलस
नारद पुराण
नारद नीति
नारद परिब्राजकोपनिषद्
निर्णयसिन्धु
नियमसार
निरुक्त
निशीथ चूर्णि
निशीथ भाष्य
निरालम्बोपनिषद्
नीतिवाक्यामृत
नैषधीय चरित्र
पंचतंत्र
पंचास्तिकाय
पंजाबकेशरी
पद्मपुराण
पहेलवी टेक्सट्स्
पब्लियस साइरस
पद्मानन्द पंचविंशति
प्रवचन सार
प्रवचन सारोद्धार
प्रवचन डायरी
प्रश्नव्याकरण सूत्र
प्रशमरति
प्रज्ञापना सूत्र
पातंजल योगदर्शन
पारस्कर स्मृति
प्रास्ताविक श्लोकशतकम्
पुरानी बाइबिल
पुरुषार्थ सिद्धिच्युपाय
पुराण
पूर्व मीमांसा
बृहत्कल्प भाष्य
ब्रह्मग्रन्थावली
ब्रह्मानन्द गीता
बृहदारण्यकोपनिषद्
बृहस्पतिस्मृति
बाइबिल
बुखारी
वीरपश्त्
बुद्ध-चरित्र
बेंदीदाद
बौद्ध-साधक
बंगश्री

भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक
भक्ति-सूत्र
भगवती-सूत्र
भर्तृहरि नीतिशतक
,, वैराग्य शतक
,, शृंगार शतक
भविष्य-पुराण
भावप्रकाश
भाषा श्लोकसागर
भामिनीविलास
भाल्लवीय श्रुति
भूदान पत्रिका
भोजप्रबन्ध
मज्झिमनिकाय
मन्थन
महाभारत
महानिद्देस पालि
महानिशीथ भाष्य
महानिर्वाण तन्त्र
मनुस्मृति
मनोनुशासनम्
मत्स्यपुराण
महाप्रत्याख्यान
मरकूस
मिलाप
मुण्डकोपनिषद्
मुस्लिम
मेडम द स्नाल
मेगजीन डाइजेस्ट
मोहमुद्गर
यश्न्
यश्त्
यशस्तिलकचम्पू
यजुर्वेद
याज्ञवल्क्य स्मृति
यूहन्ना
योगवाशिष्ठ
योगदृष्टि समुच्चय
योगशास्त्र
योगबिन्दु
रघुवंश
रश्मिमाला
राजप्रश्नीय सूत्र
रामचरित मानस
रामसतसई
रामायण
रीड मेगजीन
लूका
व्यवहार चूलिका
व्यवहार-भाष्य

व्यवहार-सूत्र
व्यासस्मृति
व्यास-संहिता
वृहत्पाराशर संहिता
वृहद् द्रव्यसंग्रह
वाल्मीकि रामायण
वशिष्ठ-स्मृति
विचित्रा (मासिक)
विवेकचूड़ामणि
विदुर नीति
विनयपिटक
विवेक विलास
विशेषावश्यक भाष्य
विशेषावश्यक चूर्णि
विश्वकोष
विज्ञान के नए आविष्कार
विसुद्धिमग्गो
विष्णुस्मृति
विश्वमित्र (दैनिक)
वीतराग स्तोत्र
वैद्यक ग्रंथ
वैद्यक-शास्त्र
वैद्य रसराजसमुच्चय
वैशेषिक दर्शन
वैदिक धर्म क्या कहता है ?
वैदिक-विचार विमर्शन
शतपथ ब्राह्मण
श्वेताश्वेतारोपनिषद्
शंकरप्रश्नोत्तरी
शंख स्मृति
शार्ङ्गधर
शान्त सुधारस
शान्तिगीता
श्राद्ध विधि
शास्त्रवार्तासमुच्चय
श्रावकप्रतिक्रमण
शिशुपालवध
शिवपुराण
शिव-संहिता
श्रीमद्भागवत
शील की नवबाड़
शुकबोध
शुक्ल युजर्वेद
षट्प्राभृत
स्कन्ध पुराण
स्थानांग सूत्र
सभा तंरग
सचित्र-विश्व कोष
सत्यार्थप्रकाश
समयसार

समवायांग सूत्र
सम्बोधसत्तरि
सप्तव्यसन सन्धान काव्य
सरिता
सर्जना
सवैया शतक
स्वप्न शास्त्र
स्वर-साधना
समाधिशतक
सन्मति तर्कप्रकरण
स्टडीज इन डिसीट
सरल मनोविज्ञान
संयुत्तनिकाय
सामायिक सूत्र
सामवेद
सावधानी रो समुद्र
सिद्धान्त कौमुदी
सिन्दूर प्रकरण
सुखमणि संहिता
सुत्तनिपात
सुभाषितावलि
सुभाषितरत्न खण्ड-मंजूषा
सुभाषित रत्नभाण्डागार
सुभाषित संचय
सुत्तपाहुड
सुबोध पद्माकर
सुभाषित रत्न सन्दोह
सुश्रुत शरीर-स्थान
सूत्रकृतांग सूत्र
सूक्तरत्नावलि
सूक्तमुक्तावलि
सौर परिवार
हउश् मज्दा
हदीश शरीफ
हरिभद्रीयआवश्यक
हनुमान नाटक
हृदय प्रदीप
हृषिकेश
हितोपदेश
हिंगुलप्रकरण
हिन्दुस्तान (दैनिक व साप्ताहिक)
हिन्दसमाचार
क्षेमेन्द्र
त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र
ज्ञाता-सूत्र
ज्ञानार्णव
ज्ञान-सार
ज्ञानप्रकाश

□□

व्यक्ति-नामावली २

अफलातून
अबुमुर्ताज
अबीदाउद
अबूबकर केतानी
अल्फान्सीकर
अरविन्द घोष
अरस्तू
आचार्य उमाशंकर
आचार्य श्रीतुलसी
आचार्य रजनीश
आरकिंग
आरजू
आस्निऔमले
ओडोर पारकर
इपिक्टेट्स
इब्राहिम लिंकन
उमास्वाति
एच, मोर
एञ्जिलो
एनीविसेन्ट

एमर्सन
एडीसन
एविड
एलाव्हीलर
एलोसियस
कविराज हरनामदास
कबीर
कन्फ्युसियस
कण्डोर सेट
कांगफ्युत्सी
कार्लाइल
कार्लमार्क्स
कामवेल
क्विकक्
कालूगणी
कुन्दकुन्दाचार्य
कूपर
केटो
कैनेथवालसर
कैम्पिस

कैथराल
कोल्टन
खलील जिब्रान
ग्वाल कवि
गांधी
गिबन
गुरु गोरखनाथ
गुरु नानक
गेटे
ग्रेविल
ग्रेनविल
गोल्डस्मिथ
गोल्डो जी
गौतम बुद्ध
जगन्नाथ कवि
जयचन्द
जयशंकर प्रसाद
जयाचार्य
जवाहरलाल नेहरु
जार्ज चेपमैन

जान मिल्टन	डाड्रिज	नेपोलियन
जामी	डिकेन्स	प्लुटार्क
जॉनसन	डिजरायली	प्लेटो
जाविदान ए. खिरद	डी० जेरोल्ड	पटोरिया
जीनपाली	डी० एल० मूडी	पद्माकर
जुगल कवि	डेलकार्नेगी	परसराम
जुन्नेद	तिरमजी	पीटर वैरो
जुन्नून	तुलसीदास	पीपाकवि
जूर्वट	थामस केम्पी	पेस्कल
जेंगविल	थामस फूलर	प्रेमचन्द
जे. फरीश	थेल्स	पेरोसेल्स
जे. नोफेन	थैंकरे	पोप
जे. पी. सी. बर्नार्ड	थोरो	फुलर
जे. पी. हालेण्ड	दादू	फ्रैंकलिन
जौक	दीपकवि	बर्टन
टप्पर	धनमुनि	बनारसीदास
टालस्टाय	धूमकेतु	बर्नार्डशा
टामस कैम्पिस	नकुलेश्वर	बलवर
टालमेज	नजिन	ब्रह्मदत्त कवि
टी. एल. वास्वानी	नलिन	ब्रह्मानन्द
ड. ल. जार्ज	नाथजी	बालजक
डाइट रॉट	निकोलस	बावरी साहिब
डॉ. हरदयालमाथुर	निपट निरंजन	बिल्हण कवि
ड्रॉ. एलेग्जी केरेल	निर्मला हरवंशसिंह	बीचर
डॉ. ग्यास जे रोल्ड	नीत्से	बुल्लेशाह

बूलकोट
बेकन
बेताल कवि
बैल
बो. बो.
बोधा
भगवतीचरण वर्मा
भिक्षुगणी
भूधर दास
महात्मा भगवानदीन
मदन द० रियू
महर्षि रमण
मार्कटेन
माण्टेन
माघकवि
मिल्टन
मेरीकोन ए-डी
मुहम्मद-विन-वशीर
मेरी ब्राउन
मेसेंजर
मैकिन्तोस
मैथिलीशरण गुप्त
मोलियर
यशोविजय जी
यूसूफ अस्वात
रज्जबदास
रडयार्ड कियलिंग
रहीम
रविया
रवि दिवाकर
रस्किन
रवीन्द्रनाथ टैगोर
रामकृष्ण परमहंस
रामचरण कवि
रामतीर्थ
रामरतन शर्मा
रिस्टर
रिशर
रूसो
रोम्यांरोला
रोशे
रीशफूको
लाफान्टेन
लावेल
लांगफेलो
लीटन
लीनलिज
लुकमान हकीम
लूथर
लेलिन
लोकमान्य तिलक
क्लेर
व्यावली
वृन्द कवि
वायरन
वायर्स
वारटल
वाल्टेयर
वाशिंगटन इर्विन
विजयधर्मसूरि
विनोबा भावे
विलकाक्स
विलियमपिट
विलियमपेन
विवेकानन्द
शंकराचार्य
शापेनहावर
शिलर
शिवानन्द
शुभचन्द्राचार्य
शेक्सपियर
शेखसादी
स्टैनिलस
स्टील
स्पेंसर

सत्यदेवनारायण सिन्हा
सन्त आगस्तीन
संत ज्ञानेश्वर
संत तुकाराम
सन्त निहालसिंह
सद्गुरुचरण अवस्थी
समर्थगुरु रामदास
सायरस
सिंगुरिनी
स्विट
सिसरो
सुकरात
सुन्दरदास
सूरत कवि
सूरदास
सेलहास्ट
सैनेका
सेमुअल जानसन
सोमदेव सूरि
हजरत अली
हजरत मुहम्मद
हरिभद्र सूरि
हलवर्ट
हयहया
ह्यूम
हाफिज
हावेल
हालीवर्टन
हार्टले
हे एन. भांग
हेनरी वार्ड वीचर
हैजलिट
हैली वर्टन
होमर
होरेश बाल पोल
त्रायण्ट

लेखक की महत्वपूर्ण रचनाएं

प्रकाशित

१. एक आदर्श आत्मा	०-४०	**हरकचन्द इन्द्रचन्द नौलखा** माधोगंज, लश्कर ग्वालियर (म० प्र०)
२. चमकते चांद	०-४०	**रतीराम रामस्वरूप जैन** पो० कैथलमण्डी (हरियाणा)
३. चरित्र-प्रकाश	२-५०	**श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सभा** बालोतरा (राजस्थान)
४. भजनों की भेंट	०-६०	,, ,,
५. लोक प्रकाश	१-२५	,, ,,
६. चौदह नियम	०-२०	**आदर्श साहित्य संघ** पो० चूरु (राजस्थान)
७. मोक्ष प्रकाश		,, ,,
८. जैन-जीवन	०-६५	**श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सभा** टोहाना (हरियाणा)

९. प्रश्न प्रकाश	०-८०	**श्री जैन श्वे० तेरापन्थी महासभा** ३, पोर्चगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता-१
१०. मनोनिग्रह के दो मार्ग	१-२५	**मदनचन्द सम्पतराय बोरड़** दुकान नं० ४०, धानमण्डी, श्रीगंगानगर (राजस्थान)
११. सच्चा धन	०-३०	**श्री दलीपचन्द** **द्वारा : ला० दयाराम बृजलाल जैन**
१२. सोलह सतियां (द्वि. सं.)	२-००	टोहाना मण्डी (हरियाणा)
सोलह सतियां (तृ. सं.)		**श्री चांदमल मानिकचन्द चौरड़िया** पो० छापर, (चूरू, राजस्थान)
१३. ज्ञान के गीत (चौथा संस्करण)	१-००	**लाला दयाराम मंगतराम जैन** टोहानामण्डी (हरियाणा)
१४. ज्ञान-प्रकाश	१-००	**श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सभा** पो० भीनासर (राजस्थान)
१५. जीवन प्रकाश (उर्दू)		**श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सभा** नाभा (पंजाब)
१६. सच्चा धन (उर्दू)	०-३०	,, ,,
१७. तेरापन्थ एटले शुं?	०-६२	**नेमीचन्द नगीनचन्द जवेरी** 'चन्द्र महल' १३०, शेखमैमन स्ट्रीट, बम्बई-२
१८. धर्म एटले शुं ?	०-७५	
१९. परीक्षक बनो !	०-७५	

२०. वक्तृत्वकला के बीज
(भाग १ से १० तक)
प्रत्येक भाग ५-५०
प्रकाशित ५ भाग
प्रेस में ५ भाग

समन्वय प्रकाशन
द्वारा : मोतीलाल पारख
पो० बाक्स नं० ४२,
अहमदाबाद-२२
एवं
संजय साहित्य संगम
दासबिल्डिग नं० ५,
बिलोचपुरा, आगरा-२

लेखक की अप्रकाशित रचनाएं

हिन्दी :
अवधान-विधि
उपदेश-द्विपञ्चाशिका
उपदेश सुमनमाला
जैनमहाभारत :
जैन रामायण
दौहा-संदोह
व्याख्यान मणिमाला
व्याख्यान रत्नमञ्जूषा
वैदिक विचार विमर्शन (बड़ा)
संक्षिप्त वैदिक विचार विमर्शन
संस्कृत बोलने का सरल तरीका

संस्कृत :
ऐक्यम्
एकाह्निक कालूशतकम्
देवगुरु धर्म द्वात्रिंशिका
प्रास्ताविकश्लोक शतकम्
भाविनी
श्रीकालू कल्याणमन्दिरम्
श्रीभिक्षु शब्दानुशासन वृत्तिद्धि-तप्रकरणम्

गुजराती :
गुर्जर व्याख्यान रत्नावलि
गुर्जर भजन पुष्पावलि

राजस्थानी :
औपदेशिक ढालें
कथा प्रबन्ध
ग्यारह छोटे व्याख्यान
छः बड़े व्याख्यान
धन बावनी
प्रास्ताविक ढालें
सवैया-शतक
सावधानी रो समुद्र

पंजाबी :
पंजाब पच्चीसी

□□

वक्तृत्व कला के बीज

कृति और कृतिकार

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथ धर्मसंघ युग-प्रधान आचार्य श्री तुलसी के नेतृत्व में आज प्रगति-शिखर पर पहुँच रहा है। मुनि श्री धनराज जी 'प्रथम' (श्री धनमुनि) इस धर्म-संघ के बहुश्रुत विद्वान, सरसकवि, लेखक कुशल संग्रहकार, मधुर-प्रवक्ता और सु-योग्य शिक्षक संत हैं। आप संघ के सर्व-प्रथम शतावधानी हैं। वि॰सं॰ २००४ माघ कृष्णा १४ रविवार को बम्बई में सर्व-प्रथम आपने शतावधान का प्रयोग कर लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया। संस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी तथा उर्दू आदि भाषाओं में आपने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया है।

प्रस्तुत कृति वक्तृत्वकला के बीज
आपकी एक्वर पर पहुँच रहा है। मुकृति
है। वक्त जी 'प्रथम' (श्री धनमुनि) इस तना
उपयोके बहुश्रुत विद्वान, सरसकवि, लेसी
भी भा संग्रहकार, मधुर-प्रवक्ता औरआ
होगा। शिक्षक संत हैं। आप संघ के श
(Encycl शतावधानी हैं। वि॰सं॰ २००४ मा
णा १४ रविवार को बम्बई में
इस महआपने शतावधान का प्रयोग
श्री धनमुनि आश्चर्यचकित कर

जन्म-वि॰सं॰ १९६७ माघ शुक्ला १, सिरसा (हरियाणा)
दीक्षा-वि॰सं॰ १९८० ज्येष्ठ शुक्ला १५, सुजानगढ़ (राज॰)
कृतियां - लगभग ६०

आवरण पृष्ठ के मुद्रक : मोहन मुद्रणालय, आगरा-२

(Domestic & International Couriers)